बोलचाल

अर्थात्

'बाल से लेकर तलवे तक के सब अंगों तथा चेष्टाओं के प्रचलित मुहावरों पर बोलचाल की भाषा में भावमयी कविताएँ'

प्रणेता

कविसम्राट् स्व० पंडित अयोध्यासिंह उपाध्याय

प्रकाशक

हिन्दी-साहित्य-कुटीर

बनारस

द्वितीय संस्करण
११०० प्रतियाँ

संवत् २०१३

मूल्य ६।)

प्रकाशक—
हिन्दी-साहित्य-कुटीर, बनारस

मूल्य, छः रुपये चार आने मात्र

मुद्रक—
खण्डेलवाल प्रेस, मैदागिन बनारस

विषय-सूची

भूमिका

———

कविता

ग्रन्थकार—

साहित्यवाचस्पति, साहित्यरत्न, कविसम्राट्

स्व० पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

"ॐ"

बोलचाल

बातचीत

पाँच साल होते हैं, एक दिन अपने 'शान्तिनिकेतन' में बैठा हुआ मैं कुछ सोच रहा था; अछूते फूल तोड़ना चाहता था; अच्छे बेल बूटे तराशने में लगा था, किन्तु अपना सा मुँह लेकर रह जाता था। समुद्र में डुबकी बहुत लोग लगाते हैं, परन्तु मोती सबके हाथ नहीं लगता। हलवा खाने के लिए मुँह चाहिए, आकाश के तारे तोड़ना सुलभ नहीं, परन्तु उमंगें छलाँगे भर रही थीं, बामन होकर चाँद को छूना चाहती थीं, जी में तरह तरह की लहरें उठती थीं, रंग लाती थीं, चमकती दमकती थीं, किन्तु थोड़ी ही देर में लोप हो जाती थीं। विचार कहता था, जो काम तुम करना चाहते हो, वह तुम्हारे मान का नहीं, बोलचाल की भाषा में कविता–पुस्तक लिख देना हँसी-खेल नहीं। इसी समय एक मक्खीचूस आ धमके। आपको कुछ चन्दा लग गया था, आप उससे अपना पिंड छुड़ाना चाहते थे। आते ही बोले; आप अपने रूई-सूत में कब तक उलझे रहेंगे, कुछ मेरी भी सुनिये। मैंने कहा, क्या सुनूँ, आप बड़े आदमी हैं, आपको

कौड़ियों को दाँत से न पकड़ना चाहिए। यह सुनते ही वे अपना दुखड़ा सुनाने लगे, नाक में दम कर दिया, मैं ऊब उठा, और अचानक कह पड़ा—

"छोड़ देगा कौड़ियों का ही बना।
यह तुम्हारा कौड़ियालापन तुम्हें॥"

वे बिगड़ खड़े हुए; बोले, वाह साहब! मैं कौड़ियाला हूँ। कौड़ियाला तो साँप होता है, क्या मैं साँप हूँ। अच्छा साँप तो साँप ही सही, कौड़ियाला ही सही, साँप का यहाँ क्या काम! कौड़ियाले को अपने पास कौन रहने देगा, अच्छा लीजिये, मैं जाता हूँ, देखूँ तो कैसे मुझसे चंदा लिया जाता है, मैं एक कौड़ी न दूँगा। मैंने समझा-बुझाकर उनको सीधा किया। वे चले गये, परन्तु मेरा काम बना गये, इस समय साँझ फूल रही थी, मैंने सोचा, इस फूलती साँझ ने ही मुझे एक अछूता फूल दे दिया। मैंने पद्य को यों पूरा किया—

"कौड़ियों को हो पकड़ते दाँत से।
चाहिए ऐसा न जाना बन तुम्हें॥
छोड़ देगा कौड़ियों का ही बना।
यह तुम्हारा कौड़ियालापन तुम्हें॥"

पद्य पूरा होने पर जी में आया, राह खुल गयी, नमूना मिल गया, अब आगे बढ़ना चाहिए, यदि ऐसी ही भाषा हो और मुहावरे की चाशनी भी चढ़ती रहे, तो फिर क्या पूछना, 'आम के आम और गुठली के दाम'। निदान जी उमड़ पड़ा; और मैं जी-जान से इस काम में लग गया। मैंने सोचा, यदि सात आठ

सौ पद्य भी इस नमूने के बन जावेंगे, तो चाहे कुछ और न हो, चाहे वे किसी काम के न हों, पर मैं जो चाहता हूँ वह हो जावेगा और बोलचाल की भाषा में लिखे गये कुछ खड़ी बोली के पद्य जनता के सामने उपस्थित हो जावेंगे। जब हिन्दी साहित्य पर आँख डाली तो उसमें मुहावरे की कोई पुस्तक न दिखलाई पड़ी। खड़ी बोली की कविता के फलने-फूलने के समय किसी ऐसी पुस्तक का न होना भी मुझे बहुत खटका। मुहावरों की जैसी छीछालेदर हो रही है, जैसी उसकी टाँग तोड़ी जा रही है, जैसी उनके बारे में मनमानी की जाती है, वह भी कम खलनेवाली बात नहीं। इसलिए मैंने सोचा कि मुहावरों पर ही एक पुस्तक लिखूँ। ऐसा होने पर जो नमूना मेरे सामने है, उसके अनुसार काम भी होगा, और संभव है कि हिन्दी साहित्य की कुछ सेवा भी हो जावे। अपने इस काम के लिए मैंने बाल से तलवे तक जितने अंग हैं, उन तमाम अंगों के बहुत से मुहावरे चुने और अपना काम आरम्भ किया। काम पूरा होने में लगभग चार साल लग गये, और जहाँ सात आठ सौ पद्यों में ग्रन्थ को पूरा होना चाहिए था, वहाँ लगभग पैंतीस सौ पद्यों में वह समाप्त हुआ। यह ग्रन्थ बोलचाल की भाषा में लिखा गया है इस लिए मैंने इसका नाम "बोलचाल" ही रखा है।

बोलचाल की भाषा

बोलचाल की भाषा के बारे में कुछ लिखना टेढ़ी खीर है। जितने मुँह उतनी बात सुनी जाती है। यदि यह बात सत्य न हो तो भी इसमें सन्देह नहीं कि इस विषय में एक मत नहीं है। बोलचाल की भाषा की परिभाषा भिन्न-भिन्न है। अथवा यों

कहिये कि इस विषय में मान्य लोगों के सिद्धान्त एक-से नहीं हैं। बोलचाल की भाषा से वह भाषा अभिप्रेत है, जो बोली जाती है, अथवा जिसे सर्वसाधारण बोलते हैं। यदि इस कसौटी पर कसें तो वर्तमान हिन्दी गद्य पद्य की अधिकांश रचना ऐसी भाषा में की गयी मिलेगी जिसे बोलचाल की भाषा नहीं कह सकते; उर्दू के विषय में भी यही कहा जा सकता है। यह विचार आधुनिक नहीं चिरकाल से चला आता है। जिस समय हिन्दी और उर्दू का नामकरण हुआ, और इन दोनों ने लिखित गद्य भाषा का रूप धारण किया, उसके कुछ समय उपरान्त ही इस विचार का भी सूत्रपात हुआ। कविवर लल्लूलाल, पण्डितप्रवर सूरत मिश्र, राजा लक्ष्मणसिंह, राजा शिवप्रसाद और बाबू हरिश्चन्द्र की हिन्दी की शैली भिन्न-भिन्न है। प्रत्येक ने हिन्दी के स्वरूप की कल्पना अपनी अपनी रुचि के अनुसार की है, किन्तु प्रत्येक का आदर्श बोलचाल ही था। आज दिन पश्चिमोत्तर-प्रान्त, राजस्थान, बिहार और मध्यदेश में हिन्दी की विजयवैजयन्ती फहरा रही है, फिर भी वह 'अनेक रूप रूपाय' है। जो लिखता है वह बोलचाल की ही भाषा लिखता है परन्तु फिर भी प्रणाली में भिन्नता है। श्रीमान् पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी ने सितम्बर सन् १९२४ की 'सरस्वती' में एक लेख लिखा है उसमें एक स्थान पर आप लिखते हैं—

"यह कविता बोलचाल की हिन्दी में है—

"यदपि सतत मैंने युक्तियाँ कीं अनेक।
तदपि अहह तूने शान्ति पाई न नेक॥
उड़कर तुझको मैं ले कहाँ चित्त जाऊँ।
दुखद जलन तेरी हाय कैसे मिटाऊँ॥"

किन्तु क्या यह बोलचाल की हिन्दी है ? मेरा विचार है कि किसी प्रान्त में अब तक सर्वसाधारण यदपि, सतत, युक्तियाँ, अहह, दुखद नहीं बोलते। ऐसी अवस्था में जिस पद्य में ये शब्द आये हैं उसको बोलचाल की भाषा का पद्य नहीं कह सकते, सरल हिन्दी का पद्य भले ही कह लें। बोलचाल की हिन्दी, सरल हिन्दी और ठेठ हिन्दी में अन्तर है। क्या अन्तर है इसका मैं निरूपण करूँगा। सरल हिन्दी और ठेठ हिन्दी का मतलब समझ लेने से ही बोलचाल की हिन्दी का स्वरूप अवगत होगा। संभव है कि जो विचार मैं प्रकट करना चाहता हूँ वह सर्वसम्मत न हो, उसमें भी मीन-मेख हो, परन्तु इससे क्या ? अपना विचार प्रकट करके ही मैं दूसरे सज्जनों को मीमांसा का अवसर दे सकता हूँ। मीमांसा होने पर ही तथ्य बात ज्ञात होगी।

ठेठ हिन्दी

"ठेठ हिन्दी का ठाट" की भूमिका में ठेठ हिन्दी की परिभाषा मैंने यह निश्चित् की है—

"जैसा शिक्षित लोग आपस में बोलते चालते हैं भाषा वैसी ही हो, गँवारी न होने पावे। उसमें दूसरी भाषा अरबी, फारसी, तुर्की, अँगरेजी इत्यादि का कोई शब्द शुद्ध रूप या अपभ्रंश रूप में न हो। भाषा अपभ्रंश संस्कृत शब्दों से बनी हो, और यदि कोई संस्कृत शब्द उसमें आवे भी तो वही जो अत्यन्त प्रचलित हो, और जिसको एक साधारण जन भी बोलता हो।"

इस बिषय में श्रीमान् डाक्टर जी० ए० ग्रियर्सन साहब क्या लिखते हैं, वह भी देखने योग्य है। "अधखिला फूल" की प्राप्ति-स्वीकार करते हुए आप आपने १७ जुलाई सन् १९०५ के पत्र में लिखते हैं—

* "ठेठ हिन्दी क्या है ?

ठेठ हिन्दी संस्कृत की पौत्री है, हम यह कह सकते हैं कि संस्कृत की पुत्री प्राकृत और प्राकृत की पुत्री ठेठ हिन्दी है।

अन्य भाषाओं की तरह हिन्दी भी दूसरी भाषाओं से शब्द ग्रहण करती है। जब वह किसी विशेष विचार को प्रकट करना चाहती है, और देखती है कि उसके पास उपयुक्त शब्द नहीं हैं, उस समय वह प्रायः आवश्यक शब्द संस्कृत से उधार लेती है।

प्रत्येक ठेठ शब्द अर्थात् प्रत्येक वह शब्द जो कि प्राकृत-प्रसूत है, तद्भव कहलाता है। संस्कृत से उधार लिया हुआ प्रत्येक शब्द जो कि प्राकृत से उत्पन्न नहीं है, और इस कारण ठेठ नहीं है, तत्सम कहलाता है। यदि तद्भव शब्द न मिलते हों तो तत्सम शब्द के प्रयोग करने में कोई आपत्ति नहीं, 'पाप' तत्सम है। ठीक-ठीक इस अर्थ का द्योतक कोई

---

* What is Theth Hindi?

Theth Hindi is a grand-daughter of Sanskrit. We may say that the daughter of Sanskrit is Prakrit, and the daughter of Prakrit is Theth Hindi.

Like any other language Hindi borrows words from other languages when it has no word to represent the meaning of an idea which it wishes to express. It usually borrows such words from Sanskrit.

Every Theth word, i. e. every word which is a daughter of Praktit, is called *Tadbhava* (तद्भव). Every word borrowed from Sanskrit, and which is not a daughter of Prakrit, and which is therefore not Theth, is called *Tatsama* (तत्सम).

There is no objection to using *tatsama* words, provided there is no *tadbhava* word available. Thus *pap* (पाप) is a

तद्भव शब्द नहीं है। अतएव यथास्थान पाप का प्रयोग किया जा सकता है। किन्तु जहाँ एक ही अर्थ के दो शब्द हैं, एक तद्भव (अर्थात् ठेठ) दूसरा तत्सम, वहाँ पर तद्भव शब्द का ही प्रयोग होना चाहिए। 'हाथ' के लिए तद्भव शब्द 'हाथ' और तत्सम शब्द 'हस्त' है, अतएव 'हस्त' के स्थान पर 'हाथ' का प्रयोग होना ही संगत है।

यह स्मरण रखना चाहिए कि प्रत्येक तत्सम शब्द उधार लिया हुआ है। यह उधार हिन्दी को अपनी दादी से लेना पड़ता है। यदि मैं अपने सम्बन्धियों तथा मित्रों से प्रायः ऋण लेने की आदत डालूँ तो मैं विनष्ट हो जाऊँगा। इसी प्रकार यदि हिन्दी उस अवस्था में भी जब कि उसके लिए ऋण लेना नितान्त आवश्यक नहीं है, ऋण लेने का स्वभाव डालती रही तो वह भी विनष्ट हो जावेगी। इस कारण मैं बलपूर्वक यह सम्मति

---

tatsama, and as there is no *tadbhava* word which exactly means the same as पाप; पाप may be used. But when there are two words, one *tadbhava* (i. e *theth*), and the other *tatsama*, the *tadbhava* word should be used. For instance for 'hand' we have *tadbhava* 'hath (हाथ), and *tatsama* 'hast' (हस्त). Then, as these two words mean the same thing, *hath* should always be used and not *hast*.

It should be remembered that every *tatsama* word is a *borrowed* one. It is borrowed from the grand-mother of Hindi. If I make a practice of borrowing often from my relations and friends I will be ruined. So if Hindi makes a practice of borrowing frequently from its relations when it is not absolutely necessary to do so Hindi will be ruined. For this reason I am strongly of opinion that Hindi writers

देता हूँ कि हिन्दी के लेखक जहाँ तक संभव हो ठेठ शब्दों (अर्थात् तद्भव शब्दों) का प्रयोग करें, क्योंकि वे हिन्दी के स्वाभाविक अंग अथवा अंशभूत साधन हैं। उधार लिये हुए संस्कृत (तत्सम) शब्दों का जितना ही कम प्रयोग हो उतना ही अच्छा। मैं यह देखकर प्रसन्न हूँ कि आपने यह कर दिखाया कि कितनी सफलता के साथ ऐसा किया जा सकता है। मैं यह प्रकट कर देना चाहता हूँ कि शब्दों के प्रयोग करने की कसौटी यह है कि हम देखें कि यह शब्द तद्भव है, न यह कि तत्सम—कारण इसका यह है कि बहुत से तद्भव शब्द ऐसे हैं जो कि ज्यों के त्यों वैसे ही हैं, जैसे कि संस्कृत में हैं। जैसे—

संस्कृत	प्राकृत	तद्भव (ठेठ हिन्दी)
वनं	वणं	वन

---

should employ *theth* (i. e *tadbhava*) words as much as possible, because they are part of the nature (सार) of Hindi, and should employ borrowed Sanskrit (तत्सम)words as little as possible. I am glad to see that you have shown how successfully this can be done.

It should be remarked that the test of employing a word should always be this :—

Is it *tadbhava ?*

The test should *not* be

Is it *tatsama ?*

The reason for this is that there are a great many *tadbhava* words which are the same as the corresponding Sanskrit ones. Thus :—

Sansktit	वनं
Prakrit	वणं
Tadbhava (Theth Hindi)	वन

यहाँ तत्सम शब्द भी वन (या बन) है, परन्तु बन भी अच्छा ठेठ हिन्दी शब्द है, क्योंकि वन केवल संस्कृत ही नहीं है, वरन् संस्कृत से प्राकृत में होकर आया हिन्दी शब्द है। यह बिल्कुल साधारण बात है कि देवदत्त का पौत्र भी देवदत्त ही कहा जावे, और यही बात हिन्दी के विषय में भी कही जा सकती है।

Here the *tatsama* word would also be वन (or बन), but बन is also good Theth Hindi, because बन is not only Sanskrit, but is also a grand-daughter of Sanskrit. It is quite common that Devadatt's grandson should also be called Devadatt, and so also it is the case in Hindi.

Here are some other forms.

Sanskrit	Prakrit	Tadbhava (Theth Hindi)	Tatsama.
जङ्गलः	जंगलो	जंगल	जङ्गल (or जंगल)
विलासः	विलासो	विलास	विलास (or बिलास)
सारः	सारो	सार	सार
एकः	एक्को	एक	एक
समरः	समरो	समर	समर
गुणः	गुणो	गुन	गुण (or गुन)

So also may be others.

It is therefore necessary to know Prakrit, and I would strongly recommend every person who wishes to improve Hindi should study prakrit, which is the mother of Hindi. If you know the mother, you can describe the daughter.

"माय गुन गाय पिता गुन घोड़।
बहुत नहीं तो थोड़हि थोड़॥"

नीचे कुछ अन्य रूप भी दिये जाते हैं ।

संस्कृत	प्राकृत	तद्भव (ठेठ हिन्दी)	तत्सम
जङ्गलः	जंगलो	जंगल	जङ्गल या जंगल
विलासः	विलासो	विलास	विलास या बिलास
सारः	सारो	सार	सार
एकः	एक्को	एक	एक
समरः	समरो	समर	समर
गुणः	गुणो	गुन	गुण या गुन

इसी तरह से और भी बहुत से शब्द हैं । अतएव प्राकृत का जानना आवश्यक है, और मैं प्रत्येक मनुष्य को जो कि हिन्दी की उन्नति करना चाहता है यह सम्मति भी दूँगा कि वह प्राकृत का अध्ययन करे, क्योंकि वह हिन्दी की माता है । यदि आप जननी को जानते हैं तो लड़की को अच्छी तरह समझ सकते हैं ।

"माय गुन गाय पिता गुन घोड़ ।
बहुत नहीं तो थोड़हि थोड़ ॥"

इस लेख को पढ़कर आप यह समझ गये होंगे कि मैंने जो ठेठ हिन्दी की परिभाषा लिखी है, लगभग उसके विषय में वही विचार डाक्टर साहब के भी हैं । भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने 'हिन्दी भाषा' नाम की एक पुस्तक लिखी है, उसमें उन्होंने बारह प्रकार की हिन्दी भाषा लिखी है, उसका उदाहरण भी दिया है । उसके कुछ शीर्षक ये हैं—

१—जिसमें संस्कृत के बहुत शब्द हैं,
२—जिसमें संस्कृत के शब्द थोड़े हैं,
३—जो शुद्ध हिन्दी है,

४—जिसमें किसी भाषा के शब्द मिलने का नियम नहीं है,
५—जिसमें फारसी शब्द विशेष हैं, इत्यादि।
इनके उदाहरण नीचे दिये जाते हैं।

नम्बर—१

'अहा! यह कैसी अपूर्व और विचित्र वर्षाऋतु साम्प्रत प्राप्त हुई है। अनवर्त आकाश मेघाच्छन्न रहता है, और चतुर्दिक् कुज्झटिका-पात से नेत्र की गति स्तम्भित हो गयी है, प्रतिक्षण अभ्र में चंचला पुंश्चली स्त्री की भाँति नर्तन करती है।'

नम्बर—२

'सब विदेशी लोग घर फिर आये, और व्यापारियों ने नौका लादना छोड़ दिया, पुल टूट गये, बाँध खुल गये, पंक से पृथ्वी भर गयी, पहाड़ी नदियों ने अपने बल दिखाये, बहुत वृक्ष समेत कूल तोड़ गिराये। सर्प बिलों से बाहर निकले, नदियों ने मर्यादा भंग कर दी, और स्वतन्त्र स्त्रियों की भाँति उमड़ चलीं।'

नम्बर—३

'पर मेरे प्रीतम अब तक घर न आये, क्या उस देस में बरसात नहीं होती, या किसी सौत के फन्द में पड़ गये। कहाँ तो वह प्यार की बातें, कहाँ एक संग ऐसा भूल जाना कि चिट्ठी भी न भिजवाना। हा! मैं कहाँ जाऊँ, कैसी करूँ, मेरी तो ऐसी कोई मुँहबोली सहेली भी नहीं कि उससे दुखड़ा रो सुनाऊँ, कुछ इधर उधर की बातों से हो जी बहलाऊँ।'

नम्बर—४

'ऐसी तो अँधेरी रात उसमें अकेली रहना, कोई हाल पूछने वाला भी पास नहीं, रह-रह कर जी घबड़ाता है, कोई खबर लेने भी नहीं आता, कौन और इस विपत्ति में सहाय होकर जान बचाता।'

नम्बर—५

खुदा इस आफ़त से जी बचाये, प्यारे का मुँह जल्द दिखाये, कि जान में जान आये। फिर वही ऐश की घड़ियाँ आवें, शबोरोज़ दिलवर की सुहबत रहे, रंजोग़म दूर हो, दिल मसरूर हो।'

अन्त में आप लिखते हैं—

"हम इस स्थान पर वाद नहीं किया चाहते, कि कौन भाषा उत्तम है, और वही लिखनी चाहिये। पर हाँ मुझसे कोई अनुमति पूछे तो मैं यह कहूँगा कि नम्बर २ और ३ लिखने के योग्य हैं।"

नमूने जो ऊपर दिये गये हैं, उनके देखने से ज्ञात होगा कि नम्बर २ सरल हिन्दी है जिसमें कि थोड़े संस्कृत शब्द हैं अर्थात् जिसमें तत्सम शब्द कम हैं, और नम्बर ३ ठेठ हिन्दी है जिसमें बिलकुल तद्भव शब्द हैं, और इन्हीं दोनों को उक्त महोदय ने लिखने योग्य बतलाया है। कहना नहीं होगा कि शुद्ध शब्द और ठेठ शब्द का एक ही अर्थ है और ऐसी अवस्था में भारतेन्दुजी ने भी एक प्रकार से ठेठ हिन्दी की परिभाषा शब्द-विन्यास द्वारा वही की है जो मैं ऊपर कर आया हूँ।

ठेठ हिन्दी और बोलचाल की भाषा

अब प्रश्न यह होगा कि क्या ठेठ हिन्दी बोलचाल की भाषा कही जा सकती है? मेरा विचार है, नहीं, कारण बतलाता हूँ, सुनिये। जिन प्रान्तों की भाषा आजकल हिन्दी कही जाती है, उन सब प्रान्तों में सैकड़ों फ़ारसी, अरबी, तुर्की, अँगरेज़ी इत्यादि के कुछ ऐसे शब्द हैं, जिनको सर्वसाधारण बोलते हैं, और जिनको एक-एक बच्चा समझता है। अतएव हिन्दी भाषा के बहुत से तद्भव शब्दों के समान वे भी व्यापक और प्रचलित हैं, ऐसी

अवस्था में उनको हिन्दी भाषा का शब्द न समझना, और उनका प्रयोग हिन्दी लिखने में न करना युक्तिमूलक नहीं। ऐसे प्रचलित अथवा व्यवहृत शब्दों के स्थान पर हम कोई संस्कृत का पर्यायवाची शब्द लिख सकते हैं; परन्तु वह सर्वसाधारण को बोधगम्य न होगा, कुछ शिक्षित लोग उसको भले ही समझ लें, अतएव यह कार्य भाषा की दुरुहता का हेतु होगा। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे शब्द भी हमको मिलेंगे, जिनके यथार्थ पर्यायवाची शब्द हमारे पास हैं ही नहीं। हाँ, कई शब्दों द्वारा हम उनका भाव अलबत्ता प्रकट कर सकते हैं, किन्तु यह व्यवहार तो प्रथम व्यवहार से भी अनुपयोगी होगा। अतएव ऐसे शब्दों से बचना अथवा उनके प्रयोग में आनाकानी करना हिन्दी भाषा के स्वरूप को जटिल बनाना और उसे संकुचित और संकीर्ण करना होगा।

नीचे एक वाक्य लिखता हूँ। आप उसके द्वारा मेरे कथन की मीमांसा कीजिये, उसकी कसौटी पर मेरे कथन को कसिये, उस समय आपको ज्ञात होगा कि मेरा कथन कहाँ तक युक्तिसंगत है।

"आज मैं कचहरी से आ रहा था, एक चपरासी मुझे राह में मिला, उसने कहा आप से तहसीलदार साहब नाराज़ हैं, आपने अपनी मालगुज़ारी अबतक नहीं जमा की, इस लिए वे बन बिगड़ रहे थे। आप चले जाइये तो शायद मान जावें, नहीं तो समन ज़रूर काट देंगे।"

इस वाक्य में राह, नाराज़, शायद और ज़रूर के स्थान पर मार्ग, अप्रसन्न, स्यात् और अवश्य हम लिख सकते हैं, परन्तु भाषा सर्व-साधारण को बोधगम्य न होगी। कचहरी, चपरासी, तहसीलदार साहब, मालगुज़ारी, जमा, समन का पर्य्यायवाची कोई उपयुक्त शब्द हमारे पास नहीं है। हाँ, गढ़ा हुआ शब्द अथवा वाक्य उनके स्थान पर लिखा जा सकता है, किन्तु उसका परिणाम

असुविधा, कष्ट-कल्पना और भाषा की महाजटिलता छोड़ और कुछ न होगा, वरन् वाक्य का समझना ही असंभव हो जायगा।

हम नित्य, अलबत्ता, लात जूता, नर्म, गर्म या रेल, तार, डाक, लालटेन इत्यादि शब्द बोलते हैं, जिनको सभी समझ लेते हैं, फिर उनके प्रयोग में क्यों संकोच किया जावे। जब ये सब शब्द हिन्दी के तद्भव शब्द के समान ही व्यापक और प्रचलित हैं, तो हिन्दी लिखने में उनका यथास्थान प्रयोग अवश्य होना चाहिए, इससे सुविधा तो होहीगी, हिन्दी का विस्तार भी होगा। जिस ठेठ हिन्दी में अन्य भाषाओं का प्रचलित शब्द भी तद्भव शब्दों के साथ स्वतन्त्रतापूर्वक व्यवहृत होता है, उसीको बोल-चाल की भाषा कहा जा सकता है। इसका नमूना बाबू हरिश्चन्द्र को नम्बर ४ की भाषा है, किन्तु उन्होंने उसको लिखने योग्य नहीं माना, यह उनकी स्वतंत्र सम्मति है।

बाबू साहब ने नं० ४ की भाषा को लिखने योग्य क्यों नहीं माना, इसका एक कारण है। जिस समय का यह लेख है उस समय कुछ ऐसा प्रवाह बह रहा था, कि हिन्दी के कुछ धुरन्धर लेखक एक ओर तो फ़ारसी, अरबी इत्यादि के शब्दों का 'बायकाट', कर रहे थे और दूसरी ओर उर्दू के प्रसिद्ध लेखक हिन्दी को फ़ारसी, अरबी और तुर्की शब्दों से भर रहे थे, कुछ लोगों का मध्यपथ था; परन्तु उनकी संख्या थोड़ी थी। हिन्दी लेखकों में राजा लक्ष्मणसिंह और बाबू हरिश्चन्द्र स्वयं और उनके दूसरे सहयोगी प्रथम पथ के पथिक थे। दूसरा मार्ग सभी उर्दू लेखकों का था, तीसरी राह पर राजा शिवप्रसाद और उन्हीं के विचार के दो एक सज्जन चल रहे थे। अतएव अनुमान यह होता है कि बाबू साहब को अपना पक्ष पुष्ट करने के लिए उक्त विचार प्रकट

करना पड़ा था, किन्तु उनका आचरण सर्वथा इसीके अनुसार नहीं था। उन्होंने इस प्रकार की हिन्दी भी लिखी और स्वतंत्रता से लिखी है। नम्बर १ की हिन्दी को भी उन्होंने लिखने योग्य नहीं बतलाया है, किन्तु उनकी अधिकांश रचना इसी भाषा में है। मेरे कथन का अभिप्राय यह है कि नं० ४ की भाषा को लिखने योग्य न बतलाना एक ऐसा साधारण अमनोनिवेश है जिसको प्रमाणकोटि में नहीं ग्रहण किया जा सकता।

हिन्दुस्तानी भाषा की उत्पत्ति

जिस समय हिन्दी उर्दू का झगड़ा चल रहा था और एक ओर वह संस्कृत-गर्भित हो रही थी, और दूसरी ओर फ़ारसी, अरबी शब्दों से लबरेज़, उस समय एक तीसरी भाषा की उत्पत्ति हुई, उसका नाम हिन्दुस्तानी है। हिन्दुस्तानी भाषा का जन्मदाता मैं उन लोगों को कह सकता हूँ, जो उक्त दोनों विचारों के विरोधी थे और जो लिखित भाषा को बोलचाल की हिन्दी के अनुकूल अथवा निकटवर्ती रखना चाहते थे। राजा शिवप्रसाद इसी विचार के थे यह मैं ऊपर लिख चुका हूँ। उनके अतिरिक्त काशीपत्रिका के संचालकगण और कुछ दूसरे लोगों का भी यही सिद्धान्त था! कुछ इन लोगों की भाषाओं के नमूने देखिये--

"हम पहले भाग के आरम्भ में लिख आये हैं कि क्या ऐसे भी मनुष्य हैं, जो अपने बापदादा और पुरुखाओं का हाल न सुनना चाहें और उनके समय में लोगों का चालचलन, व्यवहार क्या था, बनज व्यापार कैसा था, राजदरबार में किस ढब से बरता जाता था, और देश की क्या दशा थी, इन सब बातों के जानने की इच्छा न करें।

—राजा शिवप्रसाद (इतिहास तिमिरनाशक ३ भाग पृष्ठ १)

"फ्रांस में एक पादरी साहेब गाडीनाट नामी रहते थे, जिनका नाम वहाँ वालों ने मक्खीचूस रक्खा था। उनके पास कैसा ही मुफ्लिस मुसीबत का मारा आदमी क्यों न जाय, वह एक कौड़ी भी न देते थे। अपने अंगूर के बागों का उमदा इन्तिजाम करके उन्होंने बहुत सी दौलत जमा की। रीमस् शहर के बाशिन्दे जहाँ पादरी साहब रहते थे उनसे नफ़रत करते और हमेशा उनके साथ हिकारत से पेश आते थे।

—हिन्दी भाषा में प्रकाशित काशीपत्रिका के एक लेख से (पृष्ठ ४४)।

ये दोनों अवतरण हिन्दुस्तानी भाषा के हैं, किन्तु फिर भी इनमें भिन्नता है। राजा शिवप्रसाद के लेख में संस्कृत तत्सम शब्द आये हैं, किन्तु काशीपत्रिका के लेख में कहीं नहीं आये। राजा साहब के लेख में फ़ारसी, अरबी शब्द आये हैं, परन्तु कम, आवश्यकता के अनुसार। काशीपत्रिका के लेख में वे अधिकता से आये हैं। फिर भी अन्य उर्दू लेखकों की भाषा से इसमें सरलता और सादगी है। कुछ अवतरण प्रचलित हिन्दी और उर्दू के भी देखिये, उनसे आप अनुमान कर सकते हैं कि हिन्दुस्तानी भाषा में और उनमें क्या अन्तर है।

"कवि की दृष्टि उल्लास से भरकर पृथ्वी से स्वर्ग और स्वर्ग से पृथ्वी तक घूमती है, और जैसे-जैसे कल्पना अलक्ष्य को लक्ष्य करती है, वैसे-वैसे कवि उन्हें रूप देता है, और जिनका अस्तित्व तक नहीं उन्हें वह नाम रूप देकर संसार में ला देता है। —कालिदास और भवभूति, (पृष्ठ १२१)

"शाहा ने देहली के कारोबार के लिए अलफ़ाज़ ख़ास मुस्तेमल थे, मसलन पानी को आबहयात खाने को ख़ासः सोने को सुख़फ़रमाना, शाहजादों के पानी को आबे ख़ास्सः और इसी तरह हजारों इस्तिलाही अलफ़ाज़ थे।"

"इन बातों पर और ख़सूसन उनके शेरों पर तहज़ीब आँख दिखाती

है, मगर क्या कीजिये एशिया की शायरी कहती है कि यह मेरी सफ़ाई ज़बान और तर्रारी का नमक है, पस मुवर्रिख़ अगर ख़ुसूसियत ज़बान को न ज़ाहिर करे तो अपने फ़र्ज़ में क़ासिर है या बेख़बर।"

—आबहयात (पृष्ठ १३९-१४०)

आपने अन्तर देख लिया, दिन दिन अन्तर बढ़ता जाता है। आजकल दोनों भाषाएँ और दुरूह हो गयी हैं। ज्यों ज्यों वे दुरूह हो रही हैं, बोलचाल की भाषा से दूर पड़ती जा रही हैं। जो नमूने हिन्दी उर्दू के ऊपर दिखलाये गये हैं, उनको देख कर आप समझ सके होंगे कि इन दोनों से हिन्दुस्तानी भाषा बोलचाल के कितना समीप है। इस लिए आजकल हिन्दुस्तानी भाषा में लिखने-पढ़ने की फिर पुकार मच रही है। दो उद्देश से,—एक तो यह कि हिन्दी भाषा को राष्ट्रीय भाषा बनाना है. लोगों का विचार है कि जब तक बोलचाल की भाषा में हिन्दी न लिखी जावेगी उस समय तक वह राष्ट्रीय भाषा न हो सकेगी। दूसरे यह कि हिन्दी उर्दू का विभेद जो दिन दिन बढ़ता जाता है, उसे दूर करना है, जिसमें वह वैमनस्य नष्ट हो सके जो दोनों भाषाओं का लिखित रूप विभिन्न होने के कारण प्रतिदिन बढ़ रहा है। एक और बात है। वह यह कि जो भाषा बोलचाल की भाषा से बिलकुल दूर हो जाती है, वह काल पाकर लोप हो जाती है और उसका स्थान वह भाषा ग्रहण कर लेती है, जो बोलचाल की अधिक समीपवर्तिनी होती है। क्यों ऐसा होता है? इसका उत्तर बाबू दिनेश चन्द्र सेन बी० ए० ने अपने बंगभाषा और साहित्य संज्ञक ग्रन्थ (पृ० १४-१५) में दिया है। आप लोगों के अवलोकन के लिए उसका अनुवाद नीचे दिया जाता है—

"लिखित भाषा और कथित भाषा में कुछ व्यवधान होता है, किन्तु

इस व्यवधान की सीमा है। उसका अतिक्रम होने से लिखित भाषा मर जाती है, और उसके स्थान पर कथित भाषा कुछ विशुद्ध होकर लिखित भाषा में परिणत हो जाती है। लिखित भाषा उत्तरोत्तर उन्नत होकर शिक्षित सम्प्रदाय के क्षुद्र गण्डीर में सीमाबद्ध होती है, और क्रमशः वाक्य पल्लवित करने की इच्छा और शब्दों की श्रीवृद्धि की चेष्टा से लिखित भाषा जन साधारण की अनधिगम्य हो पड़ती है। उस समय भाषा-विप्लव आवश्यक हो जाता है। जब संस्कृत के साथ कथित भाषा का इसी प्रकार प्रभेद हुआ, तब कथित पालिभाषा कुछ विशुद्ध हो कर लिखित भाषा बन गयी। जब फिर प्राकृत के साथ कथित भाषा का प्रभेद अधिक हो गया तो वर्त्तमान गौड़ी भाषा कुछ परिष्कृत हो कर लिखित भाषा में परिणत हुई। व्याकरण शिशु और अज्ञ लोगों की वाणी का शासन करता है, किन्तु इसी लिए वह चिरप्रवाहशील भाषा की गति को स्थिर नहीं कर सकता। व्याकरण युग युग में भाषा का पदांक स्वरूप बनकर पड़ा रह जाता है। भाषा जिस पथ से चल पड़ती है, व्याकरण उसका साक्षीमात्र है। विलुप्त माहेश व्याकरण के उपरान्त पाणिनि, उनके पश्चात् वररुचि, पुरन्दर, यास्क, और इन लोगों के बाद रूपसिद्धि, लंकेश्वर, शाकल्य, भरत, कोहल, भामह, वसन्तराज, मार्कण्डेय, मौद्गलायन, शिलावंश इत्यादि ने व्याकरण की रचना की है। पूर्ववर्ती काल में जो भाषा का दोष कहकर कीर्तित हुआ, परवर्ती काल में व्याकरण ने उसी को भाषा का नियम कहकर स्वीकृत किया। इसी लिए पाणिनि का नियम अग्राह्य करके भी महावंश और ललित-विस्तर शुद्ध परिगणित हुए, और वररुचि का नियम अस्वीकार करके भी चन्दबरदाई की रचना निन्दनीय नहीं हुई। समय के विषय में जिस प्रकार प्रातः, संध्या, रात्रि—भाषा के सम्बन्ध में उसी प्रकार संस्कृत, प्राकृत, बंगला वा हिन्दी—पूर्ववर्ती अवस्था के रूपान्तर मात्र हैं।"

हिन्दी भाषा के लिए अभी यह समय उपस्थित नहीं है, परन्तु

दिन दिन वह बोलचाल से दूर पड़कर उस समय के निकट पहुँच रही है, यह कुछ लोगों का विचार है। अतएव इस दृष्टि से भी कुछ लोग उसको सरल बनाकर उसका उद्धार करना चाहते हैं। और ऐसे ही विचारवालों की सृष्टि हिन्दुस्तानी भाषा है।

प्रचलित हिन्दी की दुरूहता

इस अवसर पर यह प्रश्न किया जा सकता है कि हिन्दी भाषा के उत्तरोत्तर दुरूह और अधिक संस्कृतगर्भित होने का कारण क्या है? क्या वह स्वयं प्रवृत्त होकर ऐसी बनायी जा रही है, या स्वभावतया ऐसा बन रही है, अथवा उर्दू की स्पर्द्धा के कारण किम्वा उससे हिन्दी की भिन्नता प्रतिपादन के लिए यह प्रणाली गृहीत हुई है? मेरा विचार है कि हिन्दी स्वभावतया कुछ आवश्यकताओं और कुछ सामयिक प्रान्तीय भाषाओं के सहयोग से वर्त्तमान रूप में परिणत हो रही है। इस समय जो सर्वत्र प्रचलित हिन्दी भाषा है और जो पूर्ण व्यापक है वह पश्चिमोत्तर प्रान्त, मध्यहिन्द, बिहार, पंजाब, सिंध और राजस्थान के हिन्दी शिक्षितों में समान रूप से समझी और लिखी पढ़ी जाती है। जितने हिन्दी के दैनिक, मासिक, साप्ताहिक, अर्द्धसाप्ताहिक, पाक्षिक अथवा त्रैमासिक पत्र आज कल किसी प्रान्त से निकलते हैं उन सबों की भाषा यही प्रचलित हिन्दी है। अधिकांश ग्रन्थ इसी भाषा में निकल रहे हैं। अनेक पारिभाषिक शब्द, हिन्दुओं का धार्मिक भाव, उनका संस्कृत-प्रेम, भाव प्रकट करने की सुविधा, उसका अभ्यास और प्रचार, सामयिक रुचि, और नाना विचार-प्रवाह इस क्षेत्र में कार्य कर रहे हैं, और उच्च हिन्दी भाषा अथवा संस्कृतगर्भित हिन्दी को प्रश्रय दे रहे हैं।

हिन्दी ही के लिए नहीं, सभी प्रान्तिक भाषाओं के लिए यह बात कही जा सकती है। सभी प्रान्त आजकल संस्कृत शब्दों के व्यवहार में अग्रसर हैं, और इसका बहुत बड़ा प्रभाव एक दूसरे पर पड़ रहा है। कुछ उदाहरण देखिये—

बंगला—"इतिहासे वर्णित समयेर मध्ये भारत शासनेर न्याय सुबृहत् ओ सुमहान कार्य अन्य कोन राज्यशक्तिर हस्ते समर्पित हयनाइ।"

मराठी—"ज्ञात कालांतील कोणत्याही संस्थानच्या किंवा साम्राज्याच्या इतिहासांत घडून न आलेली अपूर्व कामगिरी आमच्या हातून निर्विघ्न पर्णा तड़ीस जाण्यास।"

गुजराती—"कोई पण वखतना राज्यकर्त्ता तथा प्रजाने सौंपवा माँ आवेलाँ महाभारत काम पूरा करवाने जे डहापण अने परस्पर नी लागणी नी जरूर छे ते परम कृपालु परमात्मा नी कृपा थी मजबूत बने एवी छेवटे मारी प्रार्थना छे।"

नैपाली—"त्यो सर्व-रक्षक भगवान लाइ सम्झेर आपस्को प्रेमभाव लाइ रक्षा गरून, कारण यो हो कि इनै बाट यौटा यस्तो सुन्दर काम फत्ते गर्नु परे कोछ, जस्तो बुद्ध समय को कुनै राज्य या साम्राज्य का राजार प्रजाले अफ्र सम्म गरिआयाका छन।"

तैलंगी—"ए कालमुनंदुनु जरगनि मा गोप्प, गंभीर मैनदुवंटि वो पुनु राज्य मेलुवारु कुन्नुवारि प्रजलकुन्नु बुंडु, योक गोप्य गंभीर मैन पनिनि प्रसिद्धमुगा चेयुटकु कावलसिनवलयुनु तेलिवियुन्नु देबुडु मा किन्नु गाका।"

मलयालम्—"मनुष्यन् स्वभावेन ऐकमत्य ते आवश्य प्पे टुन्नु जीवत् अद्वितीय परमात्मा विरटे अंशमा कुन्नु कारणं परमात्मा विनान वृथावित्"

उड़िया—"बरु महारण्य दुर्गम बनेरे कुटि बनाइ रहइ।
लवण विहीने कुत्सित अन्नकुबरु भोजन करइ।

वरू भल पट पिन्धिवा कुनाहिं पाइ सहे दुःखतर ।
किन्तु के वो प्रभो कराउतु नाँहि परसेवा कष्टकर ॥

सिंधी—"पर जे कदी घटि जी त्रिकुतेन उन प्रान्त लाइका हानि न आहे बल्कि लाभुइ आहे । छोत उन खेपहिं जे साधारणु लिपिश्रजे वदिले हिक सर्वांग सुन्दर ए सर्वप्रिय लिपि प्राप्त थी पोंदी ।"

पंजाबी—"राणीं आइके पास खसम दे बैठोदिया मन धर अनुराग ।
मि.र तो सिर उठा चन्द्रविच वेख रैह्याँ हैं नदी तड़ाग ॥
साइन्स नूँ मन विच विचार के लड़ रैह्याँ हैं खूब अकलें ।
तीमी पास मंजे ते बैठी वेख रही हैं चूर शकलें ॥"

कनाड़ी—"आदेर ई तरद हीन स्थिति यन्तु सुधारि सुबुदु नम्म मुख्य-वाद कर्तव्य बागिदे । तम्म मनस्सि तल्लिजनि सिद् विचार गलन्नु वेरे व्यक्तिग्र मेले प्रकटि सुबुदु भाषेय मुख्योद्देश बागिदे ।"

तामिल—"दर्शनम् समयम् मतम् एगड्ड इम्यूगड्ड् शोहलुम् ओरूलै पुणर्तुमवै । दर्शनमेन्वदर्कुप्यो दुबाहक् काचियेन् बदुप्येरु लाग्रिनुम् पोलवे पेरियोरसेय्यरि विनाल अरिन्दविषयमेन् बदुपट्टि ।" —देवनागर

लगभग भारतवर्ष में बोली जानेवाली समस्त प्रधान भाषाओं का नमूना मैंने आपके सामने उपस्थित कर दिया, आप देखेंगे कि सभी भाषाओं में संस्कृत शब्दों का प्रयोग अधिकता से हो रहा है। जो तामिल, कनाड़ी और मलयालम् स्वतंत्र भाषाएँ हैं, अर्थात् आर्य भाषा से प्रसूत नहीं हैं. उनमें भी संस्कृत शब्दों की प्रचुरता है। कारण वही है जिसको मैंने ऊपर बतलाया है। उन भाषाओं को कोई स्पर्द्धा उर्दू से नहीं है, फिर वे क्यों संस्कृतगर्भित हैं? दूसरा कोई कारण नहीं, उक्त कारण ही कारण है। जब आर्य सभ्यता का चित्रण होगा, धार्मिक सिद्धान्तों का निरूपण किया जावेगा, उनके कार्यकलाप का उद्धरण होगा, उस समय अवश्य भाषा संस्कृत-

गर्भित होगी, क्योंकि संस्कृत भाषा ही वह उद्गमस्थान है, जहाँ से कि इन विचारों और भावों का स्रोत प्रवाहित होता है। इसके अतिरिक्त आज भी हिन्दुओं में संस्कृत भाषा का प्रेम है। प्रत्येक पठित हिन्दुओं में से अधिकांश कुछ न कुछ संस्कृत का ज्ञान रखते हैं, अतएव अव र आने पर संस्कृत के प्रवचनों, वाक्यों और आदर्श ग्रन्थों के श्लोकों द्वारा वह अपनी रचनाओं को अवश्य सुसज्जित और अलंकृत करते हैं। अनेक अवस्थाओं में वे संस्कृत के प्रमाणभूत वाक्यों और श्लोकों के उद्धृत करने के लिए भी बाध्य होते हैं, क्योंकि मान्य ग्रन्थों के उद्धृत वाक्य ही उनके लेखों को प्रामाणिक बनाते हैं। अतएव इन दशाओं में भी भाषा बिना संस्कृतगर्भित हुए नहीं रहती। गद्य लिखने में शैली की रक्षा, भाषा-सौन्दर्य, वाक्यविन्यास-पटुता और उसकी रोचकता भी कम वांछनीय नहीं होती और ये सब हेतु इतने सबल हैं कि प्रान्तिक समस्त भाषाएँ संस्कृतगर्भित हैं, और इसी सूत्र से हिन्दी भी संस्कृतगर्भित है। ये ही कारण हैं कि उर्दू भाषा भी फ़ारसी और अरबी से भरी है, और भरी रहेगी, क्योंकि वह मुसल्मानों की मुख्य भाषा है और मुसल्मानों का धार्मिक और सामाजिक संबंध उक्त दोनों भाषाओं से वैसा ही है जैसा कि हिन्दुओं का संस्कृत से। आप हिन्दी भाषा के किसी अवतरण को उठाकर प्रान्तिक भाषाओं के ऊपर के अवतरणों से मिलाइये तो उनमें बहुत कुछ साम्य मिलेगा, किन्तु उर्दू के किसी अवतरण से मिलाइयेगा तो शब्दविन्यास के विषय में दोनों में बड़ा अन्तर मिलेगा। कारण इसके स्पष्ट हैं।

जब प्रान्तिक भाषाओं और संस्कृतगर्भित हिन्दी के साम्य पर विचार किया जाता है तो यही सूचित होता है कि ऐसी ही हिन्दी का प्रचार यदि हो सकता है तो समस्त प्रान्तों में हो सकता

है, क्योंकि हिन्दी के तद्भव शब्दों की अपेक्षा उसके तत्सम शब्द वहाँ आसानी से समझे जा सकते हैं। अनेक सज्जन इस विचार के हैं भी। मैंने 'प्रियप्रवास' को जो ऐसी हिन्दी में लिखा उसका कारण यही विचार है। इसका प्रमाण भी मुझको मिला। जितना प्रचार 'प्रियप्रवास' का अन्य प्रान्तों में हुआ, मेरे किसी ग्रन्थ का नहीं हुआ। इसी कारण 'प्रियप्रवास' की शैली का समर्थन भी हुआ। कुछ प्रमाण लीजिये। माडर्नरिव्यू-सम्पादक एक बंग विद्वान् हैं। वे प्रियप्रवास की अलोचना करते हुए लिखते हैं—

"हम आपकी शैली का अनुमोदन करते हैं, सरल न होने पर भी उसके विषय के लिए यही शैली योग्य है।"

हिन्दी भाषा के प्रसिद्ध कवि पण्डित लोचनप्रसाद पाण्डेय अपने ६–५–१५ के पत्र में लिखते हैं—

"अभी २६, २७ दिनों तक बाहर प्रवास में था, १०-१२ दिनों तक वामण्डा (उड़ीसा) के विद्या-रसिक महाराज का अतिथि था। वहाँ राजा साहब एवं उनके यहाँ के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध साहित्यसेवीगण, पुरी से आये हुए कई एक संस्कृत के धुरन्धर पण्डित—सबोंने प्रियप्रवास की कविता सुनकर आपकी लेखनी की मुक्त कंठ से प्रशंसा की। विशेष विशेष स्थान पर तो वे बहुत ही मुग्ध हुए। कुछ अंश जो "संस्कृत कवितामय कहे जा सकते हैं, उन्हें खूब रुचे।"

इन बातों पर दृष्टि डालने से यह नहीं स्वीकार किया जा सकता कि हिन्दी भाषा के राष्ट्रीय बनाने के लिए उसका सरल स्वरूप होना ही चाहिए। तथापि अधिकांश लोग इसी विचार के हैं। हाँ, किन्तु उनका विचार कार्य रूप में परिणत नहीं हुआ। हिन्दी का व्यापक रूप संस्कृतगर्भित भाषा ही है। मेरा विचार

है कि उल्लिखित कारणों और प्रान्तिक भाषाओं के साहचर्य से यह रूप रहेगा, और स्थायी होगा।

सरल हिन्दी भाषा

प्रचलित हिन्दी भाषा के विषय में अब तक जो कहा गया उसके सत्य होने पर भी यह स्वीकार करना पड़ेगा कि सर्वसाधारण, बालक और स्त्रियों के बोध का विचार करके उसका एक सरल रूप होना भी आवश्यक है। अब भी सरल रूप प्रचलित है। आजकल जो उपन्यास लिखे जा रहे हैं, उनमें से अधिकांश की भाषा सरल हिन्दी है। जो पत्र और पत्रिका अथवा पुस्तकें बालक-बालिकाओं और स्त्रियों के लिए इन दिनों निकल रहीं अथवा लिखी जा रही हैं, उनमें भी अधिकतर सरल हिन्दी का ही प्रयोग होता है। प्रत्येक भाषा में दोनों प्रकार की भाषा में लिखे गये ग्रन्थ पाये जाते हैं। वाल्मीकि-रामायण और महाभारत, अष्टादश पुराणों में श्रीमद्भागवत एवं शेष सप्तदश पुराणों की भाषा में बड़ा अन्तर है। लघुत्रयी और वृहत्त्रयी की भाषा में भी ऐसी ही भिन्नता है। उर्दू और फ़ारसी के ग्रन्थों में भी यही बात पाई जाती है। उर्दू के शायरों में दबीर और अनीस इसके उदाहरण हैं; फ़ारसी में फ़िरदौसी और हाफ़िज के कलामों में ऐसा ही विभेद है।

मनुष्य की स्वाभाविक रुचि भी ऐसी ही है, किसी को सरलता प्रिय होती है किसी को जटिलता। कोई सीधी-सादी बातें कहता है, छोटे-छोटे वाक्यों में अपना विचार प्रकट करता है, कोई लच्छेदार बातें नमक मिर्च लगाकर कहना पसंद करता है। किसी का ममत्व गूढ़ और दुर्बोध शब्दों का प्रयोग विद्वत्ता प्रकट करने के लिए करता है तो दूसरे की सहृदयता सहज-बोध

कोमल शब्दों में अपना भाव प्रकट करने के लिए बाध्य होती है। इसके अतिरिक्त लेखन-क्षमता, भाषाधिकार, अभ्यास, विचार-सरणि की अपक्वता और आवश्यकता भी यथावसर आड़े आती है और भाषा की दुरूहता और सरलता का कारण होती है। हिन्दी विद्वानों की दूरदर्शिता से हिन्दी में दोनों प्रणाली चिर-काल से गृहीत हैं। भारतेन्दुजी ने उच्च हिन्दी तो लिखी ही है, सरल हिन्दी भी लिखी है। राजा लक्ष्मणसिंह ने अपनी भाषा में फ़ारसी, अरबी के शब्दों का क्वचित् व्यवहार करने का ध्यान रखकर भी, सरल हिन्दी लिखने में सफलता पाई है और बड़ी ही मनोहर भाषा लिखी है। यही बात हिन्दी भाषा के अन्य प्राचीन प्रतिष्ठित गद्य-लेखकों के विषय में भी कही जा सकती है।

प्रयोजन यह कि दोनों प्रकार की हिन्दी का प्रचार पहले से होता आया है। अब भी यह मार्ग बन्द नहीं है और न बन्द होना चाहिए। सरल हिन्दी लिखने में फ़ारसी और अरबी के सर्वसाधारण में प्रचलित शब्दों का व्यवहार स्वच्छन्दता से होना चाहिए; ऐसे ही अँगरेज़ी अथवा अन्य भाषा के प्रचलित शब्दों का भी। इस प्रकार की भाषा ही, यदि उसमें संस्कृत के अप्रचलित शब्द सम्मिलित न हों, हिन्दी उर्दू का सम्मिलन केन्द्र हो सकती है। जो भाषा केवल हिन्दी के तद्भव शब्दों द्वारा लिखित होगी, वह ठेठ हिन्दी होगी; किन्तु समय का प्रवाह उसके अनुकूल नहीं है। यह भाषा शुद्ध हिन्दी का आदर्श उपस्थित करने के लिए लिखी जा सकती है, परन्तु सर्वसाधारण अथवा बोलचाल की भाषा वह नहीं हो सकती और न उसके व्यापक अथवा प्रचलित भाषा के रूप में गृहीत होने की आशा है। इस भाषा में एक ग्रन्थ "रानी केतकी की कहानी" इन्शाअल्लाह खाँ

की लिखी हुई है, और "ठेठ हिन्दी का ठाट"* एवं "अधखिलाफूल" नाम के दो ग्रन्थ मेरे लिखे हैं। इनका आदर्श न गृहीत हुआ न आगे गृहीत होने की आशा है; क्योंकि जनसाधारण में जो विभिन्न भाषाओं के शब्द प्रचलित हो कर हिन्दी भाषा के तद्भव शब्दों के समान ही व्यापक हैं, उनका त्याग नहीं हो सकता। आवश्यकताओं के कारण जो अन्य भाषाओं के शब्द जन-साधारण के अभ्यस्त हैं, जिह्वाग्रवर्ती हैं, किसी भाव अथवा वस्तु के यथार्थ बोध के साधन हैं, उनसे उन्हें विरत करने की चेष्टा जिस प्रकार सुविधाओं के शिर पर पदाघात करना और असंभवता से युद्ध करने के लिए प्रस्तुत होना है, उसी प्रकार बोलचाल की भाषा में से उन शब्दों के बहिष्कार का प्रयत्न करना निष्फल प्रयास छोड़ और कुछ न होगा।

हिन्दी भाषा का वर्गीकरण

जो कुछ अब तक लिखा गया है, उससे आशा है यह स्पष्ट हो गया कि बोलचाल की हिन्दी, सरल हिन्दी, और ठेठ हिन्दी क्या है। इसी प्रकार यह भी ज्ञात हो गया कि उच्च हिन्दी अथवा वर्त्तमान व्यापक हिन्दी किसे कहते हैं। उनका वर्गीकरण इस प्रकार होगा—

१—ठेठ हिन्दी अर्थात् वह हिन्दी भाषा जो केवल तद्भव शब्दों द्वारा लिखी गयी हो और जिसमें संस्कृत के अप्रचलित तत्सम शब्द और अन्य भाषा के कोई शब्द न हों।

* जहाँ से यह ग्रंथ प्रकाशित है वहीं से ये दोनों पुस्तकें तथा "प्रियप्रवास" भी छपा है।

२—बोलचाल की भाषा अर्थात् वह ठेठ हिन्दी जिसमें अन्य भाषा के वे शब्द भी हों, जो कि सर्वसाधारण के बोलचाल में हों, और जो हिन्दी के तद्भव शब्दों के समान हो व्यापक हों।

३—सरल हिन्दी भाषा अर्थात् वह ठेठ हिन्दी अथवा बोलचाल की हिन्दी जिसमें कुछ थोड़े से अप्रचलित संस्कृत तत्सम शब्द भी सम्मिलित हों और जो एक प्रकार से सर्व-साधारण को बोधगम्य हो।

४—उच्च हिन्दी अथवा संस्कृत-गर्भित हिन्दी अर्थात् वह सरल हिन्दी भाषा जिसमें संस्कृत शब्दों की अधिकता और तद्भव शब्दों से तत्सम शब्दों का बाहुल्य हो।

पूर्व उल्लिखित बाबू हरिश्चन्द्र की नम्बर १ की भाषा पहिले प्रकार की, नम्बर ४ की भाषा दूसरे प्रकार की, नम्बर २ की भाषा तीसरे प्रकार की और नम्बर ३ की भाषा चौथे प्रकार की हिन्दी का उदाहरण है।

बोलचाल की अथवा हिन्दुस्तानी भाषा के बहुत अच्छे उदा-हरण आजकल की 'रीडरों' में मिलते हैं। कुछ उदाहरण लीजिये—

"यह सुनकर कि रानी केकयी उदास बैठी हैं, राजा दशरथ को बड़ी चिन्ता हुई, वह उसी दम रानी के पास गये। देखा कि रानी धरती पर पड़ी हुई तड़प रही हैं, अच्छे अच्छे कपड़े और गहने उतार कर फेंक दिये हैं, और उनकी जगह पुराने धुराने कपड़े पहन रक्खे हैं।"

"पिघली हुई चर्बी और सोडे का पानी एक बड़े बर्तन में फेंटा जाता

है, इसके बाद उसको दो या तीन दिन तक इतना औटते हैं कि सोडे से चर्वी की सूरत बदल जाती है और साबुन बन जाता है, लेकिन यह न समझना कि साबुन बन कर तैयार हो गया।"—'बाल बाटिका'

अपने आबेहयात में हजरत आज़ाद ने एक स्थान पर बहुत ही अच्छी बोलचाल की हिन्दी लिखी है, कुछ पंक्तियाँ उसकी भी देखिये—

"बरसात का समा बाँधते हैं तो कहते हैं—सामने से काली घटा झूमकर उठी, अब्र धूआँधार है, बिजली कौंदती चली आती है, सियाही में सारस और बगुलों की सफेद-सफेद कतारें बहारें दिखा रही हैं। जब बादल कड़कता है, और बिजली चमकती है, तो परिन्दे कभी दबक कर टहनियों में छिप जाते हैं, कभी दीवारों से लग जाते हैं, मोर जुदा चिघाड़ते हैं, पपीहे अलग पुकारते हैं, मुहब्बत का मतवाला चमेली के झुरमुट में आता है, तो ठंढी-ठंढी हवा लहक कर फुहार भी पड़ने लगती है, मस्त होकर वह वहीं बैठ जाता है।"

'रीडर' की भाषा ऐसी है कि उसको हिन्दीवाले हिन्दी और उर्दूवाले उर्दू कह सकते हैं, आबेहयात के अवतरण की भाषा भी ऐसी ही है। इसमें भी कोई सन्देह नहीं कि यह बोलचाल की भाषा है, ऊपर जो कसौटी भाषा के कसने की मैंने बतलाई है उससे भी इस प्रकार की भाषा ही बोलचाल की भाषा सिद्ध होती है, अतएव मेरा विचार इसी प्रकार की भाषा को बोलचाल की भाषा स्वीकार करता है। परिवर्तनों में बड़ी क्षमता है; मनुष्य का विचार बलवान है, ये दोनों जिस कार्य के करने में लग जाते हैं उसको करके छोड़ते हैं। समय क्या करावेगा यह नहीं कहा जा सकता, किन्तु आजकल इस भाषा की ओर विशेष प्रवृत्ति है। सरल हिन्दी भाषा में और इसमें थोड़ा ही अन्तर है, दोनों में ही

तद्भव शब्द अधिक हैं, ऐसी अवस्था में इस भाषा का प्रबल हो जाना असंभव नहीं। उच्च हिन्दी के विषय में अपना विचार मैं पहिले लिख आया हूँ। चाहे जो हो, किन्तु जब तक हिन्दी भाषा का अस्तित्व रहेगा उस समय तक उच्च हिन्दी का भी लोप न होगा। दोनों ही प्रकार की भाषा कार्यक्षेत्र में अपना कार्य करती रहेंगी, उच्च हिन्दी भाषा में मैं प्रियप्रवास की रचना कर चुका था। उक्त बातों पर दृष्टि डाल कर मेरी यह कामना हुई कि मैं बोलचाल की हिन्दी में भी एक कविता ग्रन्थ लिखूँ, इस भाषा में कोई साहित्य ग्रन्थ मुझे दिखलाई भी नहीं पड़ा; अतएव "बोलचाल" नामक ग्रन्थ लिखने की मैंने चेष्टा की। अपने विचारानुसार मैंने बोलचाल की हिन्दी ही में इस ग्रन्थ को लिखा है। मुझे सफलता कहाँ तक हुई है, यह नहीं कह सकता, इसको समय अथवा कोई भाषा-मर्मज्ञ बतलावेगा।

कविता की भाषा

मैं ऊपर लिख आया हूँ कि मैंने 'बोलचाल' की भाषा में कविता की है; यहाँ यह प्रश्न उपस्थित हो सकता है कि क्या बोलचाल की भाषा में कविता की जा सकती है? और यदि की जा सकती है तो उसमें पद्य की साहित्यिक विशेषताएँ गृहीत होंगी या नहीं? और यदि गृहीत होंगी तो वह बोलचाल की भाषा कहला सकेगी या क्या? इन बातों की मीमांसा करने के पहिले मैं विचार करूँगा कि कविता किसे कहते हैं? कविता का लक्षण क्या है? कवि-कृति को ही कविता या काव्य कहते हैं। कविता और काव्य दोनों अन्योन्याश्रित शब्द हैं। यदि यह कहा जावे कि कविता-समूह का नाम काव्य है तो भी कोई आपत्ति नहीं। कविता अथवा

कविता-समूह दोनों की परिभाषा लगभग एक है। कवि शब्द से ही दोनों की उत्पत्ति है। 'कुङ्' धातु से जिसका अर्थ 'शब्द' है, 'कवि' शब्द बनता है। यहाँ शब्द से रमणीय अथवा रमणीयार्थ-वाचक शब्द अपेक्षित है। रसगंगाधरकार कहते हैं—"रमणीयार्थ-प्रतिपादक-शब्दः काव्यम्", साहित्यदर्पणकार की काव्यपरिभाषा यह है—"वाक्यं रसात्मकं काव्यम्"। एक दूसरे विद्वान् की सम्मति यह है—"लोकोत्तरानन्ददाता प्रबन्धो काव्यनामभाक्", साहित्यदर्पणकार ने रमणीयता का यह अर्थ किया है, —"रमणीयता च लोकोत्तराह्लादजनकज्ञानगोचरता"। वेबस्टर साहब कहते हैं—"उपयुक्त भाषा में सुन्दर और उच्च-विचारों का समावेश ही कविता है।"* चेम्बर्स साहब का यह कथन है—"मधुर शब्दों में कल्पना और भावप्रसूत विचारों को प्रकट करने की कला को कविता कहते हैं †।"

इन वाक्यों से क्या पाया जाता है; यही न कि जिस वाक्य के शब्द रसात्मक, रमणीय, उपयुक्त, सुन्दर, मधुर और आनन्द-दायक हों; वही कविता है। इसलिए कविता के शब्दों का इन गुणों से युक्त होना आवश्यक है। यह व्यापक विचार है और इसमें वास्तवता है। बोलचाल की भाषा में और लिखित भाषा में प्रायः अन्तर होता है। चाहे यह गद्य हो या पद्य। पद्य में यह अन्तर और अधिक हो जाता है। "कोमल कान्त पदावली" दोनों

---

* Poetry is the embodiment in appropriate language of beautiful or high thought.

† Poetry is the art of expressing in melodious words the thoughts which are the creations of feeling and imagination.

ही का धर्म है, किन्तु कविता का विशेष। "बंगभाषा व साहित्य" के रचयिता लिखते हैं—

"बोध होता है, आदिम हिन्दू जो भाषा बोलते थे, वेद में ठीक वैसी ही भाषा व्यवहृत हुई थी, किन्तु इसके बाद भाषा के श्रीवृद्धिसाधन की चेष्टा और व्याकरण का सूत्रपात्र होने से कविता और लिखित भाषा स्वतन्त्र हो पड़ी। यही कारण है कि वाल्मीकि-रामायण की भाषा कथित भाषा नहीं मानी जा सकती। जब कालिदास 'बालेन्दु-वक्र-पलाश-पर्ण' का वर्णन करते थे, अथवा जयदेव 'मदनमहीपतिकनकदण्ड रुचि केशर-कुसुम' लिखते थे तो उन लोगों ने उस भाषा का प्रयोग नहीं किया, यह स्पष्ट है। अब भी बंगभाषा के कितने कविमुख से 'विद्युत्' अथवा 'मेघेर डाक' कह कर लेखनी द्वारा इरम्मद और 'जीमूत मन्द्र' की सृष्टि करते हैं। इसीलिए मैं कहता हूँ कि लिखित और कथित भाषा में एक प्रकार का प्रभेद है, और यह सर्वदा रहेगा।" —बंगभाषा व साहित्य, पृष्ठ १४

"बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वं" वाक्य द्वारा जिस महाकवि बाण का गौरव गान किया गया है वे अपनी कमनीया 'कादम्बरी' को अभी समाप्त नहीं कर पाये थे कि कालकवलित होने का समय सामने आया। कवि को मर्मव्यथा हुई। उनकी कामनावेलि म्लान हो गयी, पल्लवित आशा-लता के समूल उन्मूलित होने का उपक्रम हुआ। वे खिन्न हुए। अपने शास्त्र-पारंगत चिरंजीवी कुमारों को स्मरण किया। जिस समय वे सेवा में सादर उपस्थित हुए, वे विह्वल हृदय से बोले—"आत्मा वै जायते पुत्रः" की सार्थकता करनी होगी। मेरी कामना ही नहीं अधूरी 'कादम्बरी' पूरी करनी होगी। श्रद्धालु संतानों ने आज्ञा स्वीकार की। अतएव परीक्षा का समय उपस्थित हुआ। परीक्षक ने सामने के एक सूखे पेड़ को

दिखलाकर योग्य पुत्रों से कहा इसका वर्णन करो; बड़े पुत्र ने कहा– "शुष्कोवृक्षस्तिष्ठत्यग्रे", दूसरे पुत्र ने कहा–"नीरस-तरुरिह विलसति पुरतः।" उस मरणासन्न दशा में भी वृद्ध के अधर पर एक संतोषमयी आनन्दरेखा आविर्भूत हुई। उन्होंने दूसरे पुत्र को ग्रन्थ समाप्त करने की आज्ञा दी। आप देखें, प्रथम पुत्र के कथन की भाषा बिलकुल बोलचाल की भाषा है, किन्तु उसे अस्वीकार किया गया और कथन की उस दूसरी भाषा को स्वीकार किया गया, जो बोलचाल से बहुत दूर है। कारण वही "कोमल-कान्त पदावली" है, कादम्बरी गद्य ग्रन्थ है। उसकी भाषा का यह प्रसंग है। पद्य की भाषा के लिए तो यह सांगोपांग सार्थक है।

'प्रवासी' बंग-भाषा का एक प्रसिद्ध मासिक पत्र है। उसका अग्रहायण सन् १३१६ की संख्या में 'काव्य और कविता' नामक एक लेख है (पृष्ठ ६१७, ६१८)। उसमें अँगरेजी भाषा के ख्यातनामा महाकवि टेनीसन के विषय में एक कथानक है। एक दिन मार्किन कवि लाङ्फेलो उनसे मिलने आये। टेनीसन ने उनके मनोरंजन की चेष्टा की। एक घण्टे तक बात-चीत की; किन्तु अश्लील और असुन्दर भाषा में; लाङ्फेलो अति मार्जित रुचि के मनुष्य थे। उन्होंने मुख से कुछ नहीं कहा, किन्तु अत्यन्त विरक्ति के साथ विदा ग्रहण की। इस बात को जब उभय पक्ष के किसी बन्धु ने टेनीसन को बतलाया, तब टेनीसन ने लाङ्फेलो को एक पत्र लिखा और क्षमा-प्रार्थना की; वह पत्र अब भी मौजूद है। उसमें उन्होंने लिखा कि ललित शब्द चयन करते-करते और शब्दार्थों का सूक्ष्म तारतम्य विचार करके कविता लिखते-लिखते मैं थक गया था। इसलिए वैचित्र्य और मन बहलाने के लिए मैं आपसे अमार्जित (ग्रामीण) भाषा में बात-

चीत करने को बाध्य हुआ। यह प्रसंग भी यही बतलाता है कि कविता के लिए ललित-शब्द-चयन आवश्यक है।

कवीन्द्र रवीन्द्र की 'विचित्र-प्रबन्ध' नामक एक पुस्तक है। उसके पृष्ठ २०६ में वे लिखते हैं :—

"पद्य गद्य की अपेक्षा अधिक कृत्रिम होता है, उसमें मनुष्य की सृष्टि अधिक होती है। उसमें अधिक रंग देना पड़ता है और अधिक यत्न भी करना पड़ता है। हम लोगों के हृदय में जिस विश्वकर्मा का निवास है, जो हमारे अन्तर के निभृतसृजनकक्ष में बैठकर, नाना गठन, नाना विन्यास, नाना प्रयास, नाना प्रकाश-प्रसारण-चेष्टा में सर्वथा संलग्न है, पद्य में उन्हीं के निपुण हस्त का कारुकार्य (कारीगरी) अधिक होता है। यही उनका प्रधान गौरव है। अकृत्रिम भाषा, जल-कल्लोल की, अकृत्रिम भाषा पल्लवमर्मर की होती है, किन्तु जहाँ मन है, वहाँ बहुयत्नरचित कृत्रिम भाषा पाई जावेगी।"

यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि कविता की भाषा क्यों कृत्रिम हो जाती है, क्यों उसके लिए "कोमल कान्त-पदावली" की आवश्यकता होती है? क्या सर्वसाधारण की बोलचाल में कविता नहीं हो सकती? 'बंगभाषा व साहित्यकार' लिखते हैं कि "बोध होता है, आदिम हिन्दू जो भाषा बोलते थे, वेद में ठीक वैसी ही भाषा व्यवहृत हुई थी।" यदि यह सत्य है तो अब अकृत्रिम भाषा में रचना क्यों नहीं होती? इसका उत्तर उनके लेख ही में मौजूद है। और कारण भी इसके ऊपर बतलाये जा चुके हैं, तथापि इस विषय में विशेष लिखना उचित नहीं जान पड़ता है।

बोलचाल की भाषा में कविता

कविता वास्तव में हृदय का उच्छ्वास अथवा आनन्दांगुलि-विलोड़ित हृत्तन्त्री के मधुरनाद का शाब्दिक विकास है। यह स्वाभाविकता है कि जिस समय मनुष्य के हृदय में आनन्द-उद्रेक होता है उस समय अनेक अवस्थाओं में केवल वह कण्ठध्वनि द्वारा ही उस आनन्द का प्रदर्शन करता है। किसी-किसी अवस्था में उसके मुख से कुछ निरर्थक शब्द निकलते हैं, और वह उन्हींके द्वारा अपने हृदयोल्लास की परितृप्ति करता है। कभी वह सार्थक शब्दों को कहने लगता है, और उनको इस प्रकार मिलाता है कि उसमें गति उत्पन्न हो जाती है, और वे छन्द का स्वरूप धारण कर लेते हैं—बालकों को, उन बालकों को, जो खेल-कूद में मग्न अथवा उछल-कूद में तल्लीन होते हैं, हम इस प्रकार का वाक्य-विन्यास करते देखते हैं, जिसका स्वरूप सर्वथा कविता का-सा होता है। उसमें शब्दानुप्रास और अन्त्यानुप्रास तक पाया जाता है। गोचारण के समय हृदय पर सामयिक ऋतुपरिवर्तन-जनित विकासों, तरुपल्लव के सौंदर्य्यों, खग कुल के कलित कलोलों, श्यामल तृणावरणशोभित-प्रान्तरों, कुसुमचय के मुग्धकर माधुर्य और वर्षाकालीन जलदजाल का लावण्य देखकर मूर्खों के मुख से भी आमोद-सिक्त ऐसे वाक्य सुने जाते हैं, जो स्वाभाविक होने पर भी हृदय हरण करते हैं, और जिनमें एक प्रकार का संगठन होता है। ऐसे अवसरों पर किसी सुबोध विद्वान् अथवा भावुक के हृदय से जो इस प्रकार के वाक्य निकलेंगे अवश्य वे सुन्दर, सुगठित और अधिक मनोहर होंगे, यह निश्चित है। छन्दों अथवा कविता का आदिम सूत्रपात इसी प्रकार से हुआ ज्ञात होता है।

यह भी नहीं कहा जा सकता कि केवल चित्त के आनन्द-उद्रिक्त होने पर ही ऐसा होता है; चित्त के क्षुब्ध, आकुल, सकरुण अथवा इसी प्रकार की किसी दूसरी दशा के वश होने पर भी मुख से ऐसे शब्द निकल सकते हैं, और वे किसी छन्द या कविता में परिणत हो सकते हैं। वाल्मीकि-रामायण का यह प्रसिद्ध श्लोक—

"मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः ।
यत्क्रौंचमिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ॥"

ऐसी अवस्थाओं में से एक अवस्था का ही परिणाम है, यह बात सर्वजन-विदित है। यदि इस प्रकार के वाक्य, विशेष अवस्थाओं में मुख से निकल सकते हैं तो वे अवश्य बोलचाल की ही भाषा में निकल सकते हैं, और इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि बोलचाल की भाषा में कविता नहीं हो सकती। वैदिक मंत्रों की रचना आदिम काल की है, अर्थात् उस समय की है जब न तो कविता का सूत्र-पात हुआ था और न छन्द का; और इसलिए उनके सर्वसाधारण के बोलचाल में रचित होने का अनुमान किया जाता है। वैदिक ऋषियों के पास भी मानव-हृदय ही था। वह भी सांसारिक विचित्र अद्भुत और मनोमुग्धकर पदार्थों अथवा भव-विभूतियों को अवलोकन कर उसी प्रकार प्रभावित हो सकता था, जिस प्रकार आज भी मानव-हृदय होता है। अतएव वैदिक मंत्रों की रचनाओं का स्वाभाविक और अकृत्रिम होना युक्तिसंगत है। सम्भव है कि कुछ कालोपरान्त अधिक मंत्रों के आविर्भाव होने के समय कुछ भाषा परिमार्जित हो गयी हो, और छन्दोगति भी निश्चित हो गयी हो, किन्तु आदिम मन्त्रों के विषय में यह नहीं कहा जा सकता। अब भी बोलचाल की भाषा में रची गयी सुन्दर रचनाएँ मिलती हैं। प्रान्तिक अनेक भाषाएँ ऐसी हैं जिनमें

कोई साहित्य नहीं है। किन्तु उनमें रची गयी बोलचाल की सुंदर कविताएँ मौजूद हैं। ये अत्यन्त स्वाभाविक होने पर भी मनोमुग्ध-कारिणी हैं। अनेक प्रचलित गीत इसी प्रकार के हैं। अनेक कविताएँ भी ऐसी हैं। कुछ नमूने देखिये —

"हरे हरे केसवा हरु रे कलेसवा, तोरा के रटत महेसवा रे।
तोरै नाम जपत बा पुजत बा, सब से प्रथम गनेसवा रे॥
जल बरसैला धान सरसैला, सुख उपजैला मघवा रे।
प्रागदास प्रहलदवा के कारन, रखवा ह्वै गैलैं बघवा रे॥" —*प्रागदास*

× × × ×

बनिया क सखरज ठकुर क हीन। बयद क पूत ब्याध नहिं चीन॥
पंडित चुपचुप बेसवा मइल। कहै घाघ पाँचो घर गइल॥ —*घाघ*

× × × ×

जातबा मीत डगर बन्द गुसैंया होइ जाय।
राह चहुँ ओर सेंती भूलभुलैयाँ होइ जाय॥ —*मौलवी मूसा*

× × × ×

भौं चूमि लेइला केहू सुन्दर जे पाइला।
हम ऊ हई जे ओठे पै तरवार खाइला॥ —*तेगअली*

× × × ×

मुखवा निहारै तनमन तो पै वारै गोरी आठो छन रहैला हजूर।
अपने हथन तोर बरवा सँवारे बलबिरवा तो भयल बा मजूर॥
दुखवा के बतिया नगिचवौ न आवै गोइयाँ हँसी खुसी रहैला हमेस।
बजुवा सरकि कर कँगना भयल सुनि प्यारे क गवनवाँ बिदेस॥१॥

तलवा भरैले कँवल कुम्हलैले हँस रोवै बिरह बियोग।
रोवत बाड़ीं सरवन कै माता के काँवर ढोइहैं मोर॥

रसवा के भेजलीं भँवरवा के सँगवाँ रसवा ले ऐले हा थोर।
एतनई रसवा में केकरा के बँटबों सगरी नगरी हित मोर ॥२॥-*बलबीर*

बलिया हिन्दी प्रचारिणी स्वागतसमिति के सभापति पण्डित बलदेव उपाध्याय एम० ए० अपने अभिभाषण (पृष्ठ २२) में इन बिरहों के विषय में लिखते हैं—

"वे बिरहे, जो हृदय में उमंग आने पर आपही आप अपठित मनुष्य के मुख से निकल पड़ते हैं, और जिनके निवासस्थान जनसाधारण के उत्साह-पूर्ण हृदय हैं, भोजपुरी के माधुर्य के उत्कृष्ट उदाहरण हैं।"

"आप बिरहे की इस प्रशंसा से न तो घबड़ाइये और न इसके सुनने से ही नाक-भौं सिकोड़िये। इसी देश में क्यों, अन्य पश्चिमी देशों में भी इसी प्रकार के साहित्य का प्रचुर प्रचार है। अँगरेजी भाषा में इस चलती जीती जागती कविता को "बेलेड पोइट्री" के नाम से पुकारते हैं। वहाँ साहित्यिक लोगों ने इसके समुचित संरक्षण के लिए अत्यन्त प्रयत्न किया है।"

मई सन् १९२३ की 'सरस्वती' में 'हिन्दी-साहित्य का आदिकाल' शीर्षक एक लेख है। उसमें एक स्थान पर (पृष्ठ ४७१) यह विचार प्रकट किया गया है—

"इस साहित्य की पहिली विशेषता यह है कि यह सर्वसाधारण की भाषा में निर्मित होता है, अनादि काल से मनुष्यों की एक भाषा है, जो सर्वथा जीवित रहती है, उसका स्थान विद्वानों के कोष में नहीं, सर्वसाधारण की अक्षय निधि में है, विद्वानों के कोष में भाषा स्थिर हो जाती है, परन्तु सर्वसाधारण की अक्षय निधि में भाषा चिर नवीन बनी रहती है।"

स्वाभाविक अथवा सर्वसाधारण की भाषा के विषय में उल्लिखित अवतरणों में जो विचार प्रकट किये गये हैं, उससे उसका महत्व प्रकट होता है। जो कविताएँ ऊपर चलती भाषा की उद्धृत की गयी हैं, उनकी सजीवता और सरसता एवं उनका

प्रवाह देखिये, वे कितनी प्रसादमयी और हृदयहारिणी हैं; यह आपने स्वयं अनुभव भी किया होगा। क्या इनमें भाव नहीं है ? क्या इनमें वह आकर्षणी शक्ति नहीं है जो बलात् सहृदय-हृदय को अपनी ओर आकर्षित कर लेती है ? क्या इनका प्रसादगुण प्रासादिक नहीं ? यदि है तो क्यों है ? जो कविता स्वाभाविक हृदयोद्गार है क्या वास्तविक कविता वही नहीं है ? हृदय पर प्रभाव डाल-डाल कर स्वतः प्रवृत्त न होने पर उसको बलात् प्रवृत्त करके जो कविता की जाती है वह भी कोई कविता है ? वह तो कहने-सुनने को ही कविता होती है। कारण का गुण कार्य में होता है, जो कविता स्वाभाविक हृदय-उल्लास से प्रसूत होती है, आनन्द-उद्रेक का परिणाम होती है, उमंगमय मानस का मुकुर होती है, क्या वह चित्त को उल्लासित, आनन्द-उद्रिक्त और उमंगित न करेगी ? जिस समय हृदय किसी रस से प्लावित होता है, उस समय वह उस रसका निर्झर बन जाता है। जितना ही सबल रसप्लावन होगा उतना ही सबल उसका आविर्भाव और प्रभाव होगा। ऐसे हृदय को तरल-तरंगायित सुधा-सरोवर, उत्ताल-तरंग-माला-संकुल-जलधि, मन्द-मलयानिल-आन्दोलित कल्पतरु, प्रबल प्रभंजन-प्रकंपित-सरिता-प्रवाह, मार्तण्ड-प्रखर-प्रताप-तप्त-मरुस्थल, वात्या-विताड़ित-उद्यान, विकचकुसुमचय-विलसित-नन्दन-कानन, निबिड़-घनाच्छन्न-गगन, दावादग्ध-विपिन, महाभयंकर स्मशान, सब कुछ कह सकते हैं। हृदय का कल्लोल, उसका भावस्फुरण, उसका रस-प्रवाह, उसकी विमुग्धता, उसकी तल्लीनता, उसकी भावुकता, उसका उच्छ्वास, उसका विलास, जितनी सुन्दरता, सहृदयता और सर-सता से प्रस्फुटित होगा, उतना ही दूसरों के हृदयों पर प्रभाव डालने में समर्थ होगा। शब्दसमूह जितने रससिक्त होंगे, भाव-

प्रकाश की शक्ति जितनी ही उच्च होगी, प्रतिभा जितनी ही उदात्त होगी, उतनी ही अधिक कार्यकारिणी और विमोहक होगी। समस्त मनुष्यों के हृदय का उपादान एक है। प्रकृति भिन्न होने पर भी बहुत-सी बातों में समान होती हैं। यही कारण है कि एक का प्रफुल्ल हृदय दूसरे के हृदय को प्रफुल्ल करता है, और एक का विदीर्ण होता चित्त दूसरे के चित्त को विदीर्ण कर देता है। करुण-रस-स्रावित-हृदय-प्रसूत कविता का किसीके हृदय में करुण-रस का संचार कर देना, और वीर-रस-सिक्त-मानस-संभूत रचना का दूसरों के मानस में वीर-रस का उद्रेक करना, स्वाभाविक है। यही बात अन्य रसों के विषय में भी कही जा सकती है। ऐसी दशा में भाषा का प्रश्न गौण हो जाता है, कहा भी है—

"उक्ति-विसेसो कब्बो भासा या होइ, सा होइ।"

"बात अनूठी चाहिये भासा कोई होय॥"

यह देखा भी जाता है कि जहाँ भाव की रमणीयता मिल जाती है वहाँ शब्द पर उतना ध्यान नहीं दिया जाता। संतों की वाणियों का समादर भाव-प्राधान्य के कारण ही होता है। क्योंकि शब्द-संपत्ति उनमें प्रायः अल्प होती है।

बोलचाल की कविता में साहित्यिक विशेषता

अब तक जो कुछ मैं लिख आया, उससे यह स्पष्ट हो गया कि बोलचाल की भाषा में सरस और मनोमोहक रचना हो सकती है। उदाहृत पद्यों के पठन से भी यह बात सिद्ध होती है। जो कारण मैंने बतलाये हैं उन्होंने भी इस विचार को पुष्ट किया है। इतना होने पर भी यह स्वीकार करना पड़ेगा कि जिस रचना में अनुप्रास है और जो छन्दोबद्ध है वह यथातथ्य बोलचाल की भाषा

नहीं है, उसमें कुछ न कुछ कृत्रिमता अवश्य है। कारण इसका यह है कि छन्दोगति की रक्षा के लिए प्रथम तो बोलचाल के अनुसार उसमें व्याकरण-नियमानुकूल शब्द-संस्थान प्रायः नहीं होता। दूसरे अनुप्रास उसकी स्वच्छन्द गति और स्वाभाविकता में बाधा डाले बिना नहीं रहता। साधारण बोलचाल में भी जब हम बात गढ़ने लगते हैं, अथवा उसमें नमक-मिर्च लगाते हैं तो वह सीधी-सादी बात नहीं रह जाती, उसमें भी कुछ कवित्व आ जाता है। बात कब गढ़ी जाती है या उसमें नमक-मिर्च कब लगाया जाता है, जब उसको हृदयग्राही बनाना होता है, अथवा उसके द्वारा किसीके मन को मुग्ध करना होता है। उस समय भी हम ऐसा करते हैं, जब हम यह चाहते हैं कि किसीका चित्त हमारी ओर आकर्षित हो, और हम उसको अपनी बातों में फाँस सकें। लोगों पर प्रभाव डालने, अपना मतलब गाँठने, चाल चलने, और इसी प्रकार के और कामों के लिए भी ऐसा किया जाता है। कविता का कार्य भी तो यही है। फिर यदि कविता के शब्द चुने, सुन्दर और अधिक तुले हुए एवं संगठित होवें तो आश्चर्य क्या है! भाव को सुन्दरता, स्वाभाविकता, हृदयग्राहिता के साथ प्रकट करने और उक्ति को प्रभावमयी बनाने के लिए भी रसानुकूल शब्दयोजना की आवश्यकता होती है। अतएव भाषा की कृत्रिमता अनिवार्य हो जाती है।

एक पुरुष ने अपनी साधारण बोलचाल में कहा,—'का न पूरी खइहों'। दूसरे ने उत्तर दिया,—'मैं न पूरी खइहों'; उत्तर ने सुननेवालों की दृष्टि को उत्तर देनेवाले की ओर आकर्षित कर दिया। कुछ उनको कौतूहल भी हुआ। वे उत्तर सुनकर प्रसन्न भी हुए। उत्तर-दाता को उन्होंने एक विशेष बुद्धिवाला पुरुष भी समझा, क्योंकि

उस कथन में सुन्दरता थी, उसमें एक प्रकार का विनोद था। पहले पुरुष की बात बिलकुल साधारण है, किन्तु दूसरे पुरुष की बात में कुछ विलक्षणता है। दोनों बातें साधारण बोलचाल की हैं, किन्तु दूसरी में कुछ कृत्रिमता है। वह गढ़कर कही गयी है, और इस लिए उसकी ओर लोगों की दृष्टि भी आकर्षित हुई। 'कानपूरी' के मेल का 'मैनपूरी' शब्द (क्योंकि दोनों एक-एक नगर-वाचक हैं) दूसरे वाक्य को फड़का देता है; और वाक्य मुद्रालंकार का रूप धारण कर लेता है। उसमें एक चमत्कार आ जाता है, और यही चमत्कार दूसरे वाक्य की विशेषता का कारण होता है। यदि 'मैं न पूरी' खइहों, के स्थान पर 'पूरी मैं न खइहों' अथवा 'मैं पूरी न खइहों' कहा जावे तो चमत्कार न रहेगा और वाक्य साधारण हो जावेगा। जब साधारण चमत्कार से एक सीधा-सादा वाक्य विलक्षण बन जाता है, तो कविता के विशेष चमत्कारों के विषय में कुछ लिखना बाहुल्य मात्र है। इन चमत्कारों के कारण भी कविता की भाषा बोलचाल की भाषा से विलक्षण हो जाती है और कवि के अनेक सदुद्देशों की पूर्ति का उत्तम साधन एवं उसकी प्रतिभा-प्रकटीकरण का सुन्दर हेतु भी बनती है।

'मधुर कोमल कान्त पदावली' स्वयं आकर्षक होती है। मीठे वचन की महिमा अविदित नहीं। मधुरता कहाँ वांछनीय नहीं है, सब जगह उसकी पूछ है, प्रत्येक पुरुष उसका कामुक है। वीणा का वादन, कोकिल का कलरव, सुधा का स्वाद, कुसुमकुल का विकास, मृदंग की ध्वनि, बालक का भाषण, कामिनि-कुल का आलाप, मधुर होने के ही कारण हृदयग्राही और प्रिय होता है। फिर शब्दों के लिए उसकी आवश्यकता क्यों न होगी! सुन्दर भाव जब मधुर कोमल कान्त पदावली के साथ होता है तो मणिकाञ्चन-

योग हो जाता है। यह कितना मार्मिक कथन है कि–"है माणिक बहु मोल को हेम जटित छबि छाय।" कवि के हृदय में जब भाव-स्फूर्ति होती है, जब बादलों की भाँति उसके मानस-गगन में मनो-मुग्धकर विचार उमड़ने लगते हैं, जब आनन्दोच्छ्वास से जलधि की उत्ताल-तरंगों के समान तरंगित उमंगों से, रसों के उच्छलित प्रवाह से, उसका उर परिपूर्ण हो जाता है; उस समय के उसके अन्तःकरण का वर्णन असम्भव है। वह मूक का रसास्वाद है, वह अनुभवजन्य है, कवि स्वयं उसको यथातथ्य अंकित नहीं कर सकता। न वचन में ही इतनी शक्ति है और न लेखनी में इतनी क्षमता। दोनों ही अपूर्ण हैं। वचन शब्दसापेक्ष है। लेखनी जड़ है। अपनी असमर्थता पर कवि स्वयं चकित होता है, तथापि वह अपना हृदय सामने रखता है, जितना दिखला सकता है दिखाता है। इस कार्य में उसको पदावली का ही सहारा होता है, वह जितनी ही कोमल कान्त और मधुर होती है उतनी ही उसको कोमल कान्त मधुर भावों के प्रकाश करने में सहायता देती है। उसके द्वारा यदि वह सुधासरोवर में प्रवेश नहीं करा पाता तो उसका दर्शन तो अवश्य करा देता है। यदि आकाश के मयंक को अंक में नहीं उतार देता, तो उसका परिचय अवश्य करा देता है। अथवा उसकी विमुग्ध-कारी छटा अवश्य दिखला देता है। इस समय वह उपयुक्त रसों के लिए नाना उपयुक्त शब्दों को चुनता है; और अपने मानस का चित्रपट सामने करता है। शब्द ही कवि के सर्वस्व हैं, यदि उनको वह छील-छाल न सके, उनमें काट-छाँट न कर सके, उनको ठीक-ठीक न बैठाल सके, उनको अपने रंगों में न रँग सके, तो वह कविकर्म कर ही नहीं सकता। इसलिए कवि का पथ प्रचलित बोलचाल से भिन्न हो जाना स्वाभाविक है। इस

भिन्नता की भी सीमा है। जो सहृदय कवि है, वह इस सीमा को जानता है, उसका उल्लंघन वह नहीं करता; विशेष अवस्था की बात और है।

हम आप प्रायः देखते हैं कि एक साधारण और अपढ़ मनुष्य के भी प्रेम-सम्भाषण, अनुनय-विनय, अमोद-प्रमोद, हँसी-खेल, राग-रंग, और कलह कोलाहल के शब्दों में अन्तर होता है। प्यार की बातों में जो लोच, जो मधुरता होती है, वह लड़ाई-झगड़ों की बातों में नहीं होती। एक के सब शब्द सरस और मनोहर होते हैं और दूसरे के उग्र, तीव्र और उद्वेजक। किसी स्त्री का करुण-क्रन्दन यदि हृदय हिला देता है, उसके शब्द पत्थर का हृदय भी विदीर्ण करते हैं, तो एक करालवदना बाला का वाक्यसमूह अग्नि-स्फूल्लिंग वर्षण करता है, और परम शान्त हृदय में भी क्रोधाग्नि प्रज्ज्वलित कर देता है। यदि किसी महात्मा का शान्तिमय उपदेश श्रोताओं के हृदय में पुण्यसलिला भगवती भागीरथी की धारा प्रवाहित करता है, तो एक दुर्जन का कटु भाषण रोम-रोम को विषाक्त बना देता है। यह सब शब्द का ही चमत्कार है। शब्द हृत्तन्त्री के निनाद हैं। हृत्तन्त्री रसानुगामिनी और मानसिक-भाव-वश-वर्त्तिनी होती है। इन्हीं कर्मों को कवि भी अपने शब्दों द्वारा करता है। अन्तर केवल इतना ही होता है कि वह कुछ संयत, कुछ नियमबद्ध, कुछ अधिक हृदयवान् और कुछ विशेष वाक्य-विन्यास पटु होता है। क्योंकि उसका कार्यक्षेत्र विस्तृत, उदात्त और अधिक भावप्रवण होता है। इतनी ही मात्रा में उसकी भाषा भी सर्व-साधारण की भाषा से भिन्न होती है; उसे भिन्न होना भी चाहिये। कोकिल और काक दोनों ही बोलते हैं, किन्तु कोकिल के आदृत होने का कारण उसकी कलित काकली ही है। एक का प्रभाव

कतिपय व्यक्तियों तक परिमित है, किन्तु दूसरे का प्रभाव समाज और देशव्यापी होता है। एक यदि पुष्करिणी का निर्माण कर देता है तो दूसरा भूतल में मंदाकिनी प्रवाहित करता है। दोनों का दो देश है, अतएव दोनों के कार्यकलाप की भिन्नता नैसर्गिक है।

कोमल कान्त पदावली की व्यापकता की सीमा

एक विषय और विचारणीय है। वह यह कि कोमल कान्त पदावली की अर्थव्यापकता कहाँ तक है। क्या कवि प्रत्येक अवसर पर मधुर कोमल कान्त पदावली से ही काम लेता है! क्या उसको कतिपय रसों में परुष पदावली की आवश्यकता नहीं होती! यदि होती है तो कोमल कान्त पदावली की व्यापकता की सीमा क्या है? हिन्दी कविता में तीन वृत्तियाँ गृहीत हैं—उपनागरिका, परुषा और कोमला। इनको वैदर्भी, गौड़ी और पांचाली भी कहते हैं। साहित्य-दर्पणकार ने एक वृत्ति लाटी और मानी है। संस्कृत के कतिपय और आचार्यों ने भी इस वृत्ति को स्वीकार किया है। साहित्यदर्पण में एक स्थान पर चारों का लक्षण यह लिखा है—

> "गौड़ी डम्बरबद्धा स्याद्वैदर्भी ललितक्रमा।
> पाञ्चाली मिश्रभावेन लाटी तु मृदुभिः पदैः॥"

जिसमें आडम्बर हो उसे गौड़ी, जिसमें ललित पद हों उसे वैदर्भी, जिसमें दोनों का मेल हो उसे पांचाली और जिसमें कोमल पद हों उसे लाटी कहते हैं। स्वयं साहित्यदर्पणकार ने गौड़ी का लक्षण यह लिखा है—

> "ओजः प्रकाशकैर्वर्णैर्बद्ध आडम्बरः पुनः।
> समास-बहुला गौड़ी... ... ..."

ओजवाली कठिन वर्णों से युक्त अधिक समासों से भरी रचना को गौड़ी कहते हैं। इसीलिए इसका नाम परुषा भी है। शृङ्गार, करुण और हास्य रस की कविता के लिए उपनागरिका; रौद्र, वीर, भयानक रस के लिए परुषा और शान्त, अद्भुत एवं बीभत्स रस के लिए कोमला उपयुक्त बतलायी गयी है। परुषा नाम ही बतलाता है कि उसमें परुष शब्द होने चाहिएँ। यह बात कोमल कान्त पदावली के विरुद्ध है। यह अवश्य है कि कोमल कान्त पदावली अत्यन्त हृदयग्राहिणी होती है। उसके पठन-पाठन में सुविधा होती है। न तो अधिक मुख को बनाना पड़ता है और न जिह्वा बार-बार मरोड़नी पड़ती है। वह श्रुतिकटु भी नहीं होती, किन्तु इससे यह बात सिद्ध नहीं होती कि कविता के लिए परुष शब्दों की आवश्यकता नहीं। यह बात स्वीकार करने पर भी कोमल कान्त पदावली की उपेक्षा नहीं होती। मैं ऊपर कह आया हूँ कि साधारण जन की भाषा भी अवसर पर रसानुकूल हो जाती है—उनके हृदय में जिस काल जिस रस का आविर्भाव होता है तदनुकूल ही उनका वाग्विलास होता है। ऐसी अवस्था में यह कहा जा सकता है कि जैसे प्रायः उनकी व्यावहारिक भाषा परिवर्तित होकर रसानुकूल भाषा का स्वरूप ग्रहण करती है, उसी प्रकार उसी अनुपात से रस-विशेष की भाषा को भी कविता में परिमार्जित होना पड़ता है। जब भाषा परिमार्जित हुई तो अवश्य उसमें अधिक कर्कशता, उच्छृङ्खलता, कटुता, अनियमबद्धता, न रह जावेगी। अतएव यदि वह बहुत कोमल नहीं तो बोलचाल की भाषा से कान्त अवश्य होगी। कान्त ही नहीं, एक प्रकार से उसमें साहित्यिक विशेषता भी आ जावेगी, और इस प्रकार प्रतिकूल रसों में भी कान्त पदावली की सार्थकता होगी। कुछ अँगरेजी विद्वानों की सम्मति भी देखिये—

अल्फ्रेड लायल कहते हैं—"किसी युग के प्रधान भावों और उच्च आदर्शों को प्रभावोत्पादक रीति से प्रकट कर देना कविता है।"*

मिल्टन कहते हैं—"कविता सरल हो, बोधगम्य हो और भावपूर्ण हो।" †

मेकॉले कहते हैं—"शब्दों के प्रयोग की ऐसी रीति की कल्पना को कविता कहते हैं, जिससे कल्पना के ऊपर एक प्रकार के चमत्कार का प्रादुर्भाव होता है।" ‡

शेली कहते हैं—"कविता सर्वश्रेष्ठ और दृढ़तम मस्तिष्कों के श्रेष्ठ एवं सुखमय अवसरों की रचना का समूह है।" +

मेथ्यू आरनल्ड कहते हैं—"कविता मनुष्य की वह विकाशपूर्ण वाणी है जिसमें वह सत्य के अति निकट पहुँच जाता है।" ×

ड्राइडन कहते हैं—"कविता अर्थपूर्ण संगीत है" *

—कालिदास और भवभूति (मनोरमा पृष्ठ २३)

---

* Poetry is the most intense expression of the dominant emotions and the higher ideals of the age.

† Poetry ought to be simple, sensuous and impassioned.

‡ "By poetry" wrote Macaulay in his essay on Milton, "we mean the art of employing words in such a manner as to produce an illusion on the imagination."

+ Poetry is the record of the best and happiest moments of the happiest and best minds."—Shelley.

X "Nothing less than the most perfect speech of man, that in which he comes nearest to being able to utter the truth."

* " Poetry is articulate music."—Dryden

उल्लिखित वाक्यों में सुन्दर अथवा मधुर शब्द नहीं आया है, जिससे साधारणतया यह ज्ञात होता है कि इस विषय में मीमांसक-गण भी चुप हैं, किन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। अल्फ्रेड लायल की प्रभावोत्पादक रीति (the most intense expression), मिल्टन का सरल और भावपूर्ण (Simple and sensuous) शब्द, मेकॉले का चमत्कार का प्रादुर्भाव (to produce an illusion) शेली का श्रेष्ठ एवं सुखमय अवसरों की रचना (the record of the best and happiest moments), मेथ्यू आर्नल्ड की विकाशपूर्ण वाणी (the most perfect speech) और ड्राइडन के अर्थपूर्ण संगीत (articulate music) का संकेत क्या है ? वे हमारी दृष्टि किधर खींच रहे हैं, क्या यह भी बतलाना होगा ! उन लोगों के वाक्य यह स्पष्ट कह रहे हैं कि कविता की भाषा में विशेषता होनी चाहिए। और यह विशेषता इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं है कि कवि की रचना कवित्वमय हो। कोई रचना उस समय तक कवित्वमय नहीं हो सकती जब तक कि शब्द-विन्यास विलक्षण और सुन्दर न हो। विलक्षण और सुन्दर शब्द-विन्यास की आवश्यकता सब रसों के लिए है। यह दूसरी बात है कि वीर, रौद्र और भयानक रसों में वे ओजस्वी और कुछ अकोमल हों। बंगाल के प्रसिद्ध विद्वान् स्वर्गीय द्विजेन्द्र लाल राय कहते हैं :—

"कविता का राज्य सौन्दर्य है, वह सौन्दर्य बहिर्जगत् में भी है और अन्तर्जगत् में भी। जो कवि केवल बाहर के सौन्दर्य का ही वर्णन सुन्दर रूप से करते हैं वे कवि हैं, किन्तु जो कविजन मनुष्य के मन के सौन्दर्य का भी सुन्दर रूप से वर्णन करते हैं, वे बहुत बड़े कवि या महाकवि हैं।"

—कालिदास और भवभूति (पृष्ठ १२६)

देश-सम्मानित श्रीयुत् बाबू अरविन्द घोष कविकुल-गुरु कालिदास के विषय में यह लिखते हैं :—

"कालिदास को संस्कृत कविता-रूपी आकाश का पूर्ण चन्द्र कहना चाहिए। उन्होंने अपनी कविता में चुन-चुन कर सरल, पर सरस और प्रसंगानुरूप शब्दों की ऐसी योजना की है, जैसी कि आज तक और किसी कवि की कविता में नहीं पायी जाती। उनके वर्णन का ढंग बड़ा ही सुन्दर और हृदयस्पर्शी है।"

× × × ×

"आँख, कान, नाक, मुँह आदि ज्ञानेन्द्रियों की तृप्ति के विषय तथा कल्पना और प्रवृत्ति, ये ही बातें काव्य-रचना में मुख्य उपादान हैं। कालिदास ने इन सामग्रियों से एक आदर्श सौन्दर्य की सृष्टि की है। कालिदास के काव्यों में स्वर्गीय सौन्दर्य की आभा झलकती है। वहाँ सभी विषय सौन्दर्य के शासन में रखे गये हैं।"

—कालिदास और शेक्सपीयर (पृ० २२७, २३०)

जब हृदय किसी रस से परिमित परिमाण में प्लावित होता है, तभी उस रस की कविता मर्मस्पर्शिनी और प्रभावमयी होती है; किन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं है, कि भयानक, वीर और रौद्र रस की कविता के शब्दों को भी भयंकर उत्कट और उग्र होना चाहिए। शब्दविन्यास अवश्य इस प्रकार का होना चाहिए जो इन रसों के भाव का व्यञ्जक हो; क्योंकि भाव प्रकट करने के लिए व्यञ्जना ही प्रधान वस्तु है। प्रायः देखा जाता है कि जहाँ चेष्टा करके परुष शब्द का प्रयोग रसोद्रेक के लिए किया गया है, वहाँ परुषता ही हाथ रही, रस-व्यञ्जना नाम को भी नहीं हुई। इसके विपरीत उपयुक्त तुले हुये शब्दों में ऐसी रस-व्यञ्जना होती देखी जाती है, जिसमें भाव का चित्र सा खिँच जाता है। रसानुकूल,

और भाव के अनुसार शब्द-चित्र आवश्यक है, शब्द-रचना और वाक्य-विन्यास प्रयोजनीय है, कठोर और कर्णकटु शब्द नहीं। भयानक रस के घोर दर्शन भूतादि विभावों से अभिभूत-हृदय भयभीत-पुरुष में जो आकुलता और उद्वेग आदि संचारीभाव और विवर्णता आदि अनुभाव उत्पन्न होते हैं, कवि-हृदय में वे सब नहीं होते। न उसके नेत्र के सामने भयंकर विभाव ही होते हैं, किन्तु उसको इनका अनुभव होता है। वह अनुभव के अनुकूल ही अपनी लेखनी की परिचालना करता है और अपने शब्दों द्वारा अपने अनुभव पाठकों के सम्मुख उपस्थित करता है। पाठक कविकृति को पढ़ता है या किसी को सुनाता है, तो दोनों के सामने न तो वे विभाव ही होते हैं, और न उनमें तत्सम्बन्धी अनुभाव और संचारीभाव का ही प्राकट्य होता है। तथापि कवि के हृदय के समान ही उसका हृदय भी प्रत्येक बात का अनुभव करता है और कवि की शब्द-चातुरी और भावनिरूपण-शक्ति के अनुसार ही वह उसकी प्रशंसा करता मुग्ध और आनन्दित होता है। कवि की रचना न तो उसको भयभीत करती है, न विवर्ण बनाती है, न आकुलता प्रदान करती है; वरंच इन बातों का उसे अनुभव कराती है और उसके चित्त को अपनी ओर खींच लेती है। अनुभव करने में कवि-हृदय जितना किसी रस से अभिभूत होता है उतना ही वह दूसरे के हृदय को उस रस से प्लावित करता है—और यही कविकर्म है।

कैसे शब्दों से कवि अपना यह कार्य करता है इसको वह स्वयं जानता है, और अपने विचार के अनुसार कार्य करता है। जो बात भयानक रस के लिए कही गयी है, वही वीर और रौद्र रस के लिए भी कही जा सकती है। यदि कवि पर स्वयं कोई ऐसी

आपदा आ पड़ती है कि जिससे उसको किसी ऐसे ही रस का सामना करना पड़ता है, तो उस समय भी वह अपने ही पथ का पथिक रहता है। यदि अपनी अवस्था का उसे वर्णन करना पड़ता है, तो भी उसे वह वैसी ही भाषा में वर्णन करता है, जिसे कवि की भाषा कहते हैं। वह अपना हृदय और मर्मस्थान खोल कर दिखलाता है, किन्तु इस दिखलाने में भी उसका कवि-कर्म स्फुटित होता है। वह भयंकरता में भी सरसता की सृष्टि करता है, ओजस्विता में भी माधुर्य का रंग देता है और रौद्र में भी मनोहरता का आह्वान करता है। वह अपने हृदय के क्षतों को दिखलाता है, किन्तु साथ ही देखनेवालों के हृदय के क्षतों की मरहम-पट्टी भी करता है। वह मर्मपीड़ा का चित्र खींचता है, औरों को भी मर्माहत बनाता है, किन्तु उस मार्मिकता से भी काम लेता है जो उसकी मर्मज्ञता का सम्बल है। प्रयोजन यह कि ऐसे रसों में भी, जिनमें परुष शब्दों के प्रयोग की आवश्यकता होती है, वह ऐसे ही मार्ग पर चलता है जो उसे सुन्दर शब्द-योजना से अलग नहीं करता। वह परुषता में कोमलता का समावेश करता है, श्रुतिकटु शब्दों के स्थान पर भी श्रुतिमधुर शब्द रखता है और असरस प्रयोगों के साथ भी सरसता का आविर्भाव करता है। वह असंयत को संयत, अमनोहर को मनोहर, जटिल को सरल और अललित को ललित बनाता है। वह कीच में कमल खिलाता है, धूल में से रस निकालता है, सर्प के मस्तक में मणि पाता है और पत्थर के हृदय से सलिल बहाता है। कविवर भिखारीदास ने अपने काव्यनिर्णय में वीर रस के उदाहरण में यह सवैया लिखा है—

"क्रुद्ध दसानन बीस भुजानि सों लै कपि रीछ अनी सर बट्टत।
लच्छन तच्छन रत्त किये दृग लच्छ विपच्छन के सिर कट्टत ॥

मारु पछारु पुकारु दुहू दल रुण्ड झपट्टि दपट्टि लपट्टत।
रुण्ड लरै भट मत्थनि लुट्टत जोगिनि खप्पर ठट्टनि ठट्टत॥"

रौद्र रस के वर्णन में निम्नलिखित कवित्त लिखा है—

"देखत मदन्ध दसकन्ध अन्ध-धुन्ध दल,
बन्धु सों बलकि बोल्यौ राजा राम बरिबंड।
लच्छन बिचच्छन सँभारे रहो निज पच्छ,
देखिहौं अकेले हौं ही अरि अनी परचंड॥
आजु अघवाऊँ इन शत्रुन के स्रोनितन,
दास भनि बाढ़ी मेरे बानन तृषा अखंड।
जानि पन सक्कस तरक्कि उठ्यो सक्कस,
करक्कि उठ्यो कोदंड फरक्कि उठ्यो भुजदंड॥"

भयानक रस का यह कवित्त है—

"आयो सुनि कान्ह भूल्यो सकल हुस्यारपन,
स्यारपन कंस को न कहत सिरातु है।
ब्याल बर पूरबो चनूर द्वार ठाढे तऊ,
भभरि भगाय गये भीतर ही जातु है॥
दास ऐसी डर डरी मति है तहाऊँ ताकी,
भरभरी लागी मन थरथरी गातु है।
खर हूँ के खरकत धकधकी धरकत,
भौन को न सकुरत सरकतु जात है॥"

अब कविवर पंडित चन्द्रशेखर वाजपेयी की तीन रचनाएँ तोनों रसों की देखिये—

कवित्त—वीर रस

"बाजिन के ठट्ट औ गरट्ट गजराजन के,
गाजत तराजत सुभट्ट सरसेत मैं।
बजत निसान आसमान मैं गरद्द छाई,
बोलत बिरद्द हद्द बंदी बीर खेत मैं॥
इन्द्र ज्यों उमड़ि चढ़्यौ सेखर नरेन्द्रसिंह,
अंगन उमंग बढ़ी समर सचेत मैं।
लाली चढ़ी बदन, बहाली चढ़ी बाहन पै,
काली सी कराली करवाली हाथ लेत मैं॥

कवित्त—रौद्र रस

"काटि काटि कोटिन कृपानन के जोर घोर,
नेजे गहि रेजे लौं करेजे फारि डारिहौं॥
साजि दल प्रबल अरिन्दन के बृन्दन पै,
मारि मारि बानन बिमानन बिदारिहौं।
सेखर सराहै तो मैं नृपति नरेन्द्रसिंह,
क्यों न रुण्ड मुण्ड कै मही कौ भार टारिहौं॥
डारिहौं गिरीस के गरे में माल मुंडन की,
रुण्डित बितुण्ड झुंड सोणित मैं तारिहौं।

कवित्त—भयानक रस

जूझै कौन जूझ मैं अरूझै कौन आगे चलि,
लागे लागे डोलत डरौने दसमत्थ के।
आये रङ्गभूमि जे उमंग उमगाइ मन,
मरू कै पठाये महाबीर बल जत्थ के॥

दंड ते प्रचंड होत नहूँ खंड खंड घोर,
कसत कोदंड जोर दोरदंड गत्थ के।
बिकल बिहाल ह्वै पराने बृद्ध बाल बृन्द,
काल ते कराल देखि लाल दसरत्थ के॥

कविकुलकलस गोस्वामीजी की लेखनी का लावण्य देखिये—

माखे लखन कुटिल भइ भौंहें। रदपुट फरकत नयन रिसौंहें॥"

इस पद्य में रौद्र रस का कैसा सुन्दर रूप है। वीरवर सुमित्रानन्दन की बातें सुनिये—

सुनहु भानु-कुल-पंकज-भानू। कहउँ सुभाव न कछु अभिमानू॥
जौं राउर अनुसासन पाऊँ। कंदुक इव ब्रह्मण्ड उठाऊँ॥
काँचे घट जिमि डारउँ फोरी। सकउँ मेरु मूलक इव तोरी॥
तव प्रताप महिमा भगवाना। का बापुरो पिनाक पुराना॥
कमल-नाल जिमि चाप चढ़ावउँ। सत जोजन प्रमान लेइ धावउँ॥
तोरउँ छत्रक दण्ड जिमि, तव प्रताप बलनाथ।
जौं न करउँ प्रभु-पद-सपथ, कर न धरौं धनु-भाथ॥"

एक चित्र और अवलोकन कीजिये—

"तेहि अवसर सुनि सिव-धनु-भंगा। आएउ भृगु-कुल-कमल-पतंगा॥
गौर सरीर भूति भलि भ्राजा। भाल बिसाल त्रिपुंड बिराजा॥
सीस जटा ससि बदन सुहावा। रिस-बस कछुक अरुन होइ आवा॥
भृकुटी कुटिल नयन रिस राते। सहजहिं चितवत मनहुँ रिसाते॥
वृषभ-कंध उर बाहु बिसाला। चारु जनेउ माल मृगछाला॥
कटि मुनि बसन तून दुइ बाँधे। धनु सर कर कुठार कल काँधे॥
संत बेस करनी कठिन, बरनि न जाय सरूप।
धरि मुनि तनु जनु बीर रस, आयेउ जहँ सब भूप॥
देखत भृगुपति भेस कराला। उठे सकल भय बिकल भुआला॥

आप देखें; इन तीनों प्रकार की कविताओं में गोस्वामीजी की कविता कितनी ओजस्विनी है। उन्होंने भी वीर, भयानक और रौद्र रस का ही वर्णन किया है, किन्तु कितने सुन्दर शब्दों में और कितनी सफलता के साथ। जिस रस का उनका जो पद्य है, उस पद्य से वह रस टपका पड़ता है। भिखारीदास जी ने परुष शब्दों का अधिक प्रयोग करके और शब्दों को गढ़ कर तथा विकृत बनाकर उनमें वीर रस अथवा रौद्र रस लाने की चेष्टा की है, किन्तु तादृश सफलता उनको नहीं मिली। शब्दों का कठोर और उद्वेजक उच्चारण एक प्रकार से उनकी कविता में अप्रीति उत्पन्न करता है। परन्तु उनसे अधिक अपने कार्य में वाजपेयीजी को सफलता मिली है। वे उतने कठोर शब्दों का प्रयोग नहीं करते, शब्दों को अधिक कल्पित रूप नहीं देते, उनको श्रुतिकटु भी नहीं बनाते और फिर भी अपने कार्य में सफल होते हैं।

गोस्वामीजी की रचना उक्त दोनों सुकवियों से सुन्दर है। कारण क्या है! यही कि वे रुचिर शब्दों में भाव प्रकट करते हैं और वर्णित रस का सच्चा चित्र सामने उपस्थित करते हैं। जिसको भावचित्रण की क्षमता है, वह बिना कटु और कठोर शब्दों का प्रयोग किये भी रौद्र रस अथवा वीर रस का सच्चा स्वरूप दिखला सकता है, और यही कविकर्म है। दूसरी बात यह कि इनमें से चाहे किसी कवि की कृति को हम ले लें, दास-जी के ही पद्य को ले लें, तो भी उसमें कविता का सौन्दर्य पाया जावेगा, उसमें रचना-चातुर मिलेगी, शब्दों की काट-छाँट चक्षु-गोचर होगी और यह देखा जावेगा कि रस का आविर्भाव करने की चेष्टा के साथ ही सुन्दर शब्द-योजना पर भी ध्यान रखा

गया है। जो यह बतलाती है कि प्रत्येक रस के लिए कान्त पदावली और रुचिर शब्द की आवश्यकता होती है। परुषा वृत्ति में भी परुषता पर मनोरमता और कान्तता का रंग चढ़ा होता है। कतिपय संस्कृत पद्यों को भी देखिये—

गौड़ी अथवा परुषा का उदाहरण साहित्यदर्पण में निम्नलिखित पद्य है—

"मन्थायस्तार्णवाम्भः प्लुतकुहरचलन्मंदरध्वानधीरः।
कोणाघातेषु गर्जत्प्रलयघनघटान्योन्यसंघट्टचण्डः॥
कृष्णाक्रोधाग्रदूतः कुरुकुलनिधनोत्पातनिर्घातवातः।
केनास्मत्सिंहनाद प्रतिरसितसखो दुन्दुभिस्ताडितोयम्॥"

इस पद्य में भी परुष शब्द के साथ ही सुन्दर शब्दों का विन्यास हुआ है। कवि-रचना-चातुरी तो प्रत्येक चरण में परिलक्षित है। कविवर कालिदास और विभूतिवान भवभूति की ऐसी रचनाओं में और अधिक कोमल कान्त पदावली मिलती है, तथापि रौद्र, भयानक, अथवा वीर रस का सुन्दर चित्र अंकित होता है। इन्दुमती के स्वयंवर में आये हुए राजाओं का युद्ध अज के साथ वर्णन करते हुए कवि-कुल-गुरु कालिदास लिखते हैं—

"संग्रामस्तुमुलस्तस्य पाश्चात्यैरश्वसाधनैः।
शार्ङ्गकूजितविज्ञेयप्रतियोधे रजस्यभूत्॥
पत्तिः पदातिं रथिनं रथेशस्तुरंगसादी तुरगाधिरूढम्।
यन्ता गजस्याभ्यपतद्गजस्थं तुल्यप्रतिद्वन्द्वि बभूव युद्धम्॥"—*कालिदास*

× × × ×

किरति कलितकिञ्चित्कोपरज्यन्मुखश्रीरविरतगुणगुञ्जत्कोटिना कार्मुकेण।
समरशिरसि चञ्चत्पञ्चचूडश्चमूनामुपरि शरतुषारं कोप्ययं वीरपोतः॥ १॥

मुनिजनशिशुरेकः सर्वतः सैन्यकाये नव इव रघुवंशस्याप्रसिद्धःप्ररोहः ।
दलितकरिकपोलग्रंथिटङ्कारघोरज्ज्वलितशरसहस्रः कौतुकं मे करोति ॥ २ ॥

आगर्जद्गिरिकुंजकुंजरघटानिस्तीर्णकर्णज्वरं,
ज्यानिर्घोषममन्ददुंदुभिरवैराध्मातमुज्जृम्भयन् ।
वेल्लद्भैरवरुण्डमुण्डनिकरैर्वीरो विधत्ते भुवँ-
स्तृष्यत्कालकरालवक्त्रविघसव्याकीर्णमाणामिव ॥ ३ ॥ —*भवभूति*

कैसा सुन्दर युद्ध का वर्णन है! जैसा ही सुन्दर शब्द-विन्यास है वैसा ही ओज और माधुर्य है, और वैसी ही चारु-रचना-चातुरी है। इन पद्यों के अवलोकन करने के बाद प्रत्येक सहृदय स्वयं मीमांसा कर सकता है कि वीर, रौद्र और भयानक रसों में भी सुन्दर शब्द-योजना कितनी अपेक्षित है। और ऐसी अवस्था में यही मीमांसित होता है कि कोमल कान्त पदावली की आवश्यकता सब रसों में होती है। यह दूसरी बात है कि किसी रस में कुछ ऐसे शब्द भी आवें जो उस रस के अनुकूल हों। फिर भी उसमें कविकर्म होता है, कविता की छाप फिर भी उसपर लगी होती है। सौन्दर्य की अपेक्षा कहाँ नहीं।

बोलचाल की भाषा और कवितागत विशेषता

कवि-लेखनी की विशेषता उसकी कविता में ही निहित होती है। कविता का शब्दविन्यास इतना परिमित होता है कि यदि उसका अनुवाद करके उसको बोलचाल का रूप दे देवें तो भी उसका वह सौन्दर्य न रह जावेगा। गीतगोविन्द के इन सरस पद्यों का अनुवाद स्वयं संस्कृति में ही उतना सुन्दर न हो सकेगा।

कुसुमविशिखशरतल्पमनल्पविलासकलाकमनीयं ।
व्रतमिव तव परिरम्भसुखाय करोति कुसुमशयनीयं ॥

वहति च वलितविलोचनजलधरमाननकमलमुदारं ।
विधुमिव विकटविधुन्तुददन्तदलनगलितामृतधारं ॥

साहित्यदर्पणकार का भी एक पद्य देखिये—

"लताकुंजं गुञ्जन्मदवदलिपुंजं चपलयन् ।
समालिंगन्नंगं द्रुततरमनंगं प्रबलयन् ॥
मरुन्मंदं मंदं दलितमरविन्दं तरलयन् ।
रजोवृन्दं विन्दन् किरति मकरन्दं दिशि दिशि ॥"

यह वैदर्भी वृत्ति की कविता है। उक्त ग्रन्थ के भाषातिलक में इसका अनुवाद यह है—"*गुंजार करते हुए मत्त भ्रमर-पुंजों से युक्त लताकुंज को चञ्चल करता हुआ, देह का आलिंगन करके अति शीघ्र अनंग को बढ़ाता हुआ, विकसित कमल को धीरे-धीरे कंपित करता हुआ और पुष्परज को धारण किये हुए मन्द-मन्द चलता हुआ यह मलय समीर प्रत्येक दिशा में पुष्प-रस का प्रसार करता है।*"

आप देखें हिन्दी के इस अनुवाद में पद्य की शतांश उत्तमता नहीं है, यद्यपि लगभग उन्हीं शब्दों में यह अनुदित है। इन्हीं बातों पर दृष्टि रखकर एक अँगरेज विद्वान् कहता है—

"यदि मिल्टन और शेक्सपियर की कविता के उत्तम से उत्तम अंश को कम से कम परिवर्तन के साथ गद्य रूप में रख दें, तो यह प्रयत्न उन ओसकण के एकत्र करने के समान होगा जो घास के ऊपर मुक्ता से दीख पड़ते हैं, किन्तु हाथ में आते ही पानी हो जाते हैं। उनका सार-तत्व तो वही रहता है, किन्तु वह पूर्व सौन्दर्य, प्रतिभा और स्वरूप अदृश्य हो जाता है।"*

मनोरमा (वर्ष १, संख्या ७, पृ० २७)

* By taking the finest passages of Milton and Shakespeare, and merely putting them into prose with the least possible variation of words themselves, attempt would be like gathering up dew-drops which appear like jewels and pearls on the grass. but run into water in the hand

महाकवि कालिदास और साहित्यदर्पणकार के निम्नलिखित श्लोकों के सौंदर्य और शब्दविन्यास को भी देखिये—

"नवपलाशपलाशवनं पुरः स्फुटपरागपरागतपंकजम् ।
मृदुलतान्तलतान्तमलोकयत् स सुरभिं सुरभिं सुमनोभरैः ॥
मंजुलमणिमंजीरे कलगम्भीरे विहारसरसीतीरे ।
विरसासि केलिकीरे किमालि धीरे च गंधसारसमीरे ॥"

इन दोनों श्लोकों में जो सौन्दर्य अथवा कोमल कान्त पदावली किम्वा शब्दालंकार का आनन्द है वह बोलचाल की भाषा में नहीं प्राप्त हो सकता। साहित्यदर्पणकार का दूसरा श्लोक इस भाषाधिकार के साथ लिखा गया है कि वह संस्कृत, प्राकृत, शौरसेनी, प्राच्य-अवन्ती, नागर और अपभ्रंश भाषाओं में एक समान ही रहेगा। इससे यह बात पायी जाती है कि शब्दालंकार की दृष्टि से भी कविता की भाषा बोलचाल की भाषा नहीं रह जाती, कुछ न कुछ अन्तर उसमें अवश्य हो जाता है। गंभीर विषय और प्रौढ़ विचार प्रकट करने के समय भी भाषा गंभीर और दुरूह हो जाती है। ऐसे समय भी बोलचाल की भाषा से काम नहीं चलता। प्रसिद्ध अँगरेज कवियों में वर्डस्वर्थ बोलचाल की भाषा में कविता करने का बड़ा पक्षपाती था, उसने इस सम्बन्ध में बड़ा आन्दोलन भी किया था। उसके विषय में माधुरी वर्ष ३ खण्ड १ संख्या २ के पृष्ठ १६५ में यह लिखा है—

"अँगरेजी में कविवर वर्डस्वर्थ ने भी बोलचाल की भाषा (Natural diction) में कविता करना अपना आदर्श रखा था। लेकिन प्रिल्यूड (Prelude) नामक काव्य में जब दार्शनिक बातें उनको कहनी पड़ी तो भाषा गंभीर हो गयी, और उनकी शैली अकस्मात् बदल गयी।"

कवि-कौमुदी के वर्ष एक की मिलित संख्या ५, ६ के पृष्ठ १८० में इसी विषय में यह लिखा है—

"वर्डस्वर्थ ने कविता के लिए भाषा कैसी होनी चाहिए इस विषय पर अपने विचार प्रकट किये हैं। उन्हें अपने पहले के कुछ कवियों की कृत्रिम भाषा पसन्द न थी। वे चाहते थे कि कविता की भाषा वही रहे जिसे सर्वसाधारण अपनी दैनिक-चर्या के समय काम में लाते हैं। उनका यह भी कहना था कि गद्य तथा पद्य की भाषाओं में कोई वास्तविक भेद नहीं है और न हो सकता है। इस प्रकार के विचारों का कुछ लोगों ने घोर प्रतिवाद किया और स्वयं वर्डस्वर्थ भी अपने बताये नियमों का यथोचित पालन कई स्थानों पर नहीं कर सके।"

तुलसी ग्रंथावली तृतीय खंड के पृष्ठ २७९ में बाबू राजबहादुर लमगोड़ा एम० ए० एक स्थान पर लिखते हैं—

"कविता के उच्च कक्षा पर पहुँचते ही शब्दों में स्वयं कुछ उत्तमता आ ही जाती है। इसीलिए वर्डस्वर्थ यद्यपि सरलताप्रेमी था, तथापि जब वह कविता के किसी उच्चस्थल पर पहुँचता है तो बिना किसी बनावट के उसके शब्दों में भी उत्तमता प्रकट हो जाती है। कालरिज ने ठीक ही कहा है कि वर्डस्वर्थ ने अपनी कविता के सिद्धांतों को ऐसे शब्दों में व्यक्त किया है जो परिवर्तन की सीमा से बाहर हैं और इसीलिए सर्वत्र उन्हें नहीं निभा सका। इसमें सन्देह नहीं कि बिना किसी बनावट के भी कवि की उत्तम भाषा भावाभिव्यक्ति के समय साधारण बोलचाल से स्वयं ही पृथक् हो जाती है।

प्रस्तुत कविता की भाषा और बोलचाल

अबतक जो निरूपण किया गया है उससे इस सिद्धान्त पर उपनीत होना होता है कि कविता की भाषा बोलचाल की भाषा से कुछ भिन्न अवश्य होती है। कहीं-कहीं यह भिन्नता अधिक बढ़

जाती है। कविवर कालिदास और साहित्यदर्पणकार के उद्धृत श्लोक ऐसी ही भाषा के नमूने हैं। हिन्दी में भी इस प्रकार की रचनाएँ हुई हैं। कविवर पद्माकर का यह पद्यांश—

"गुलगुली गिलमें गलीचा हैं गुनीजन हैं,
गजक गिजा हैं और चिरागन की माला हैं।"

ऐसी ही रचना का उदाहरण है। इतना होने पर भी अनेक सहृदय कवियों ने कविता की विशेषताओं पर दृष्टि रखकर भी बोलचाल की भाषा में सुन्दर रचनाएँ की हैं। ये रचनाएँ न तो बोलचाल की भाषा से बहुत दूर पड़ गयी हैं, और न कवित्व-गुण-शून्य ही हैं। उनमें साम्य की रक्षा की गयी है, और मध्यपथ ग्रहण किया गया है। मैं भी इसी पथ का पथिक "बोलचाल" की रचना करते समय बना हूँ। मैंने "चुभते चौपदे" की भूमिका में ग्रन्थ की भाषा के विषय में यह लिखा है—"चौपदे बिलकुल बोलचाल के रंग में ढले हैं, नमक-मिर्च लगने पर बात चटपटी हो जाती है; गढ़ी और सीधी-सादी बातें भी एक-सी नहीं होतीं, चौपदे और बोल-चाल की भाषा में अगर कुछ भेद है तो इतना ही।" 'बोलचाल' के निम्नलिखित पद्यों को देखिये—

"दौड़ में सब जातियाँ आगे बढ़ीं। पेट में सबके पड़ी है खलबली॥
आज भी हम करवटें हैं ले रहे। खुल सकीं खोले न आँखें अधखुली॥
काटने से कट न दुख के दिन सके। यों पड़े कब तक रहें काँटों में हम॥
आज भी जी का नहीं काँटा कढ़ा। है खटकता आँख का काँटा न कम॥
रह गई अब न ताब रोने की। दर दुखों का कहाँ तलक मूँदें॥
कम निचोड़ी गईं नहीं आँखें। आँसुओं की कहाँ मिलें बूँदें॥
हो बुरा उन कचाइयों का जो। पत उतारे बिना नहीं रहतीं॥
जब हवा आप हो गये हम तो। क्यों न मुँह पर हवाइयाँ उड़तीं॥

जब कि नामरदी पड़ी है बाँट में। क्यों न तब मरदानगी की जड़ खने।
तब भला मरदानगी कैसे रहे। मूँछ बनवा जब मरद अमरद बने॥
है भला और क्या हमें आता। दूसरी बात और क्या होती।
हँस दिये देख सूरतें हँसती। रो दिये देख सूरतें रोती॥
किसलिए इस तरह गया पकड़ा। इस तरह क्यों अभाग आ टूटा।
जायगा छूट या न छूटेगा। आजतक तो गला नहीं छूटा॥

इन पद्यों में आप इस प्रकार की पंक्तियाँ पावेंगे, जिनमें रूपान्तर से अथवा बिना रूप बदले एक ही शब्द बार-बार आया है। जैसे—

"खुल सकीं खोले न आँखें अधखुली॥"
× × ×
"जायगा छूट या न छूटेगा।"
× × ×
"आजतक तो गला नहीं छूटा॥"
× × ×
"हँस दिये देख सूरतें हँसती।"
× × ×
"रो दिये देख सूरतें रोती॥"

यह भी बोलचाल की भाषा का ही एक रूप है। हम लोग प्रायः इस प्रकार बोलते हैं। ऐसा प्रयोग कविता को सुन्दर बना देता है, क्योंकि वह 'बोलचाल' का स्वरूप सामने खड़ा कर देता है। इसी लिए इस प्रकार का प्रयोग एक अलंकार माना गया है। इस प्रकार की रचना सब भाषाओं में पायी जाती है। फारसी में इसे "सनअते तरसीअ" कहते हैं। संस्कृत और हिन्दी भाषा में इसको पदार्थावृत्ति दीपक कहेंगे। कतिपय अन्य भाषा के पद्यों की भी ऐसी रचनाएँ देखिये—

तत्र यास्यामि यत्रासौ वर्त्तते लक्ष्मण प्रियः ।
नायोध्या तं विना योध्या सायोध्या यत्र राघवः ॥
अपि सुगुण ! ममापि त्वत्प्रसूतिः प्रसूतिः ।
स खलु निभृतधीमांस्ते पिता मे पिता च ॥
सुपुरुष ! पुरुषाणां मातृदोषो न दोषो ।
वरद ! भरतमार्तं पश्य तावद् यथावत् ॥—*महाकवि भास*

× × ×

इन दुखिया अँखियान कौं सुख सिरजौई नाहिं ।
देखत बनै न देखतै बिन देखे अकुलाहिं ॥
खरी भीर हूँ भेदि कै कितहूँ ह्वै इत आय ।
फिरै दीठि जुरि दीठि सौं सबकी दीठि बचाय ॥—*बिहारीलाल*

× × ×

मुसीबत का हर यक से अहवाल कहना ।
मुसीबत से है यह मुसीबत ज़ियादा ॥
ऐब यह है कि करो ऐब हुनर दिखलाओ ।
वर्ना याँ ऐब तो सब फ़र्दे बशर करते हैं ॥—*हाली*

× × ×

झिड़की सही अदा सही चीने जबीं सही ।
सब कुछ सही पर एक नहीं की नहीं सही ॥—*इन्शाअल्लाह*

× × ×

तफरक़ा दर रूह हैवानी बुवद । रूह वाहिद रूह इन्सानी बुवद ।
अगर नेक बूदे सरजामज़न । ज़नारा मज़न नाम बूदे नज़न ॥—*कश्चित्*

"To see God is to see as God sees."
"ईश्वर को देखना ईश्वर के देखने को देखना है"
Aud trust me not at all or all in all.
"या तो मेरा विश्वास बिलकुल न करो या बिलकुल करो"

"In trouble to be troubled."
"Is to have your trouble doubled."
"दुःख से दुःखित होना दुःख को दूना करना है"

उत्तम शब्दविन्यास पद्य का वही है जो बिलकुल बोलचाल के अनुसार हो; अर्थात् बोलने के समय वाक्य में जिस क्रम से हम शब्द विन्यास करते हैं, उसी क्रम से पद्यरचना में भी शब्दविन्यास होवे।

यह सत्य है कि छन्दोगति के कारण इस उद्देश्य में बाधा पड़ती है, किन्तु जहाँ तक संभव हो इस उद्देश्य में सफल होने का प्रयत्न करना चाहिए। उर्दू-कविता में इस बात का बड़ा ध्यान रखा जाता है, इसको उस भाषा में 'रोज़मर्रा' कहते हैं। जिस शाअर का रोज़मर्रा जितना साफ होगा वह उतना ही अच्छा शाअर समझा जावेगा। यद्यपि छन्दोगति उनको भी विवश करती है, और वे कभी-कभी इस विषय में कृतकार्य नहीं होते, तथापि सफलता लाभ करने की चेष्टा की जाती है और कविता की भाषा को रोज़मर्रा का अधिक निकटवर्ती बनाया जाता है। हिन्दी कविता में भी यह उद्योग होना चाहिए। यथास्थान शब्दविन्यास न होने से दूरान्वय दोष प्रायः आ जाता है। इस दोष से यथाशक्ति बचना चाहिए। कविता की भाषा जितनी ही बोलचाल के समीप होगी उतनी ही सुन्दर और बोधगम्य होगी।

उर्दू कविता का श्लेष और साभिप्राय प्रयोग भी माके का होता है। उर्दू कवियों को इस विषय में कमाल है। वे उक्त बातों में इतनी योग्यता दिखाते हैं कि उनके शेर को पढ़कर जी फड़क उठता है। यह ढंग उनमें फ़ारसी से आया है, किन्तु उर्दू में भी पूर्णता को पहुँच गया है। फ़ारसी का एक शेर है—

"जुल्फ़े मन ख़म शुदा दर गोश सख़ुन मी गोयद ।
मूबमू हाल परेशानिये मन मी गोयद ॥"

इसका अर्थ यह है—'*मेरी जुल्फ़ ख़म होकर कान में मेरी परेशानी का हाल पूरा-पूरा कह रही है ।*' बात साधारण है, किन्तु शब्दविन्यास में बड़ा चातुर्य है। फ़ारसी के शोअरा जुल्फ़ को परेशान बाँधते हैं। अतएव उसका किसी की परेशानी का वर्णन करना कितनी भावुकतामय उक्ति है। दुःख का अनुभवी ही दुःख-दशा का ठीक-ठीक निरूपण कर सकता है। प्रकट में यह बात न कह कर व्यंजना द्वारा किस उत्तमता से यह भाव सूचित किया गया है, इसको प्रत्येक सहृदय समझ सकता है। यही नहीं, वह परेशानी का हाल मूबमू कहती है। 'मू' बाल को कहते हैं, 'मूबमू' कहना एक फ़ारसी मुहावरा है; जिसका अर्थ पूरा-पूरा कहना अथवा ठीक-ठीक कहना या बाल बराबर भी कमी न कर कहना है। मूबमू में शब्द-श्लेष है, परन्तु इतना सुन्दर है कि उसकी बहुत कुछ प्रशंसा की जा सकती है। जुल्फ़ का मूबमू कहना बड़ा मार्मिक है, फ़ारसी में ऐसे अशआर बहुत हैं। कुछ उर्दू शेरों को भी देखिए—

"बाल चोटी के करेंगे बदनाम।
ए मुए पीछे पड़े रहते हैं ॥"

× × ×

"य तसवीरे चेहरा उतर क्यों रहा है।
खिँचे किससे हो क्या है नक़शा तुम्हारा ॥"

× × ×

पड़े हैं सूरते नक़शे क़दम न छेड़ो हमें।
हम और खाक में मिल जायेंगे उठाने से ॥

× × ×

"फ़लक ने पीस के गो कर दिया सुरमा मुझ को।
मगर हसीनों की नज़रों में हैं समाये हुए॥"

× × ×

"आँखें न जीने देंगी तेरी बेवफा मुझे।
इन खिड़कियों से झाँक रही है क़ज़ा मुझे॥"

पहिले पद्य में 'मुए' और 'पीछे पड़े रहते हैं' में श्लेष है; बाल और चोटी ने इन श्लेषों को चोटी पर पहुँचा दिया है। दूसरे पद्य के 'तसवीरे चेहरा' को देखिये, फिर 'उतर' पर उतर आइये; खिंचे और नक़शा, का नक़शा खींचिये; आपको स्वयं ज्ञात हो जावेगा कि कवि ने इस पद्य में कैसे बेल-बूटे तराशे हैं। तीसरे पद्य के पड़े हुए 'नक़शे क़दम,' पर दृष्टिपात कीजिये; उसके छेड़ने और उठाने का ध्यान कीजिये, फिर 'ख़ाक में मिल जाने' के भाव को सोचिये, और उसके धूल में मिल जाने और बरबाद हो जाने दोनों अर्थों का विचार कीजिये। उस समय यह ज्ञात हो जावेगा कि कवि ने इस शेर में कितनी सहृदयता से काम लिया है। चौथे और पाँचवें पद्य स्पष्ट हैं, परन्तु कैसी नाज़ुक-ख़्याली है, कैसी उनमें स्वाभाविकता के साथ सरसता है, कैसा उनमें प्रसादगुण है, कैसी उनमें मार्मिकता है, यह बतलाने की आवश्यकता नहीं क्योंकि—

"नहि कस्तूरिकामोदः शपथेन विभाव्यते।"

× × ×

"मिश्क आनस्त कि खुद बिगोयद न कि अत्तार गोयद।"

इन पद्यों के शब्द-संस्थान को भी देखिये; बिलकुल रोज़मर्रा है। यदि किसी स्थान पर अन्तर है तो साधारण; दृष्टि देने योग्य नहीं पद्य पढ़ने के समय उसका ज्ञान तक नहीं होता।

"बोलचाल" के पद्यों में मैंने उर्दू रचना की इन सब बातों पर विशेष दृष्टि दी है और उनमें वैसा सौन्दर्य लाने की चेष्टा की है। मैंने उर्दू-पद्य के जिन सौन्दर्यों का वर्णन किया है वे सम्पूर्ण सौन्दर्य हिन्दी अथवा संस्कृत अलंकारों के अन्तर्गत हैं। श्लेष, दीपक, मुद्रा, परिकर और परिकरांकुर अलंकारों में उनका समावेश हो सकता है। इन अलंकारों में उक्त सौन्दर्यों का अत्यन्त सूक्ष्म विवरण मिलेगा। शब्द-संस्थान का भी मैंने वैसा ही ध्यान रखा है। क्योंकि बोलचाल की भाषा के लिए इसकी अत्यन्त आवश्यकता है। यदि कहीं अन्तर पाया जावेगा तो साधारण और वह भी विवशता के कारण। छन्दोगति की रक्षा छन्दोरचना में आवश्यक हो जाती है। उसका उल्लंघन नहीं हो सकता; जो कहीं अन्तर है, अधिकांश इसी कारण से है। कहीं-कहीं अनुप्रास अथवा शब्दालंकार के कारण भी ऐसा अन्तर मिलेगा। शब्द को विशेष प्रभावमय बनाने के लिए भी ऐसा अन्तर पाया जावेगा। जब किसी शब्द पर विशेष जोर देना होता है तो बोल-चाल में भी ऐसा किया जाता है। जब हम किसी पर बिगड़ते हैं तो 'हट जाने पर' जोर देने के लिए यही कहते हैं कि "हट जाओ, हमारी आँखों के सामने से" न कि "हमारी आँखों के सामने से हट जाओ।"

तुलसी-ग्रन्थावली तृतीय खण्ड पृष्ठ २७४ में बाबू राजबहादुर लमगोड़ा, एम० ए०,

> "तासु दसा देखी सखिन पुलक गात जल नैन।
> कहु कारन निज हरख कर, पूछहिँ सब मृदु बैन॥"

इस दोहे की व्याख्या करते हुए लिखते हैं—

"जिज्ञासा (Curiosity) की प्रथम श्रेणी किस सौन्दर्य से सामने रखी गयी है, और कहु, का सरल प्रश्न कितना उपयुक्त है! महाकवि

के कथन में शब्दों का स्थान भी एक विशेष बात होती है। रस्किन (Ruskin) के कथनानुसार शब्द के परिवर्तन में आनन्द जाता रहता है। यदि 'कहु' का शब्द 'कारन' के पीछे हो जाता तो अस्वाभाविक होता। क्योंकि उस समय सरसता जाती रहती और प्रेम की सहजता (Spontaneity) को प्रकट न कर सकता।"

वे एक दूसरे स्थान पर "गिरा अनयन नयन बिनु बानी" की व्याख्या करते हुए कहते हैं—"कैसा शब्द-क्रम है कि यदि 'नयन बिनु बानी' वाले शब्द पहिले रख दिये जायँ तो वह आनन्द ही उड़ जाय जिसका वर्णन ऊपर किया गया है। वाणी से सम्बद्ध शब्द का पहिले होना इसलिए और भी उपयुक्त है कि वाणी की सहायता न करने के कारण मस्तिष्क को चिन्ता हुई। इसलिए कि पहिले उसीसे सम्बद्ध उत्तर की आवश्यकता थी।"

भाव-सौन्दर्य के कारण भी कहीं-कहीं पद्य में ऐसे शब्द आ गये हैं जो बोल-चाल की भाषा के शब्द नहीं कहे जा सकते। किन्तु इनकी संख्या अत्यन्त अल्प है। कई सौ पद्यों में कठिनता से ऐसे एक दो पद्य मिलेंगे। ऊपर लिखे पद्यों में एक स्थान पर आया है "मूँछ बनवा जब मरद अमरद बने" स्पष्ट अर्थ इसका यह है कि मूँछ बनवाकर मरद अमरद अर्थात् नपुंसक या हिजड़ा वा जनाना बन जावे। परन्तु श्लेष से व्यंजना यह है कि 'बिना मूँछ का लौंडा बन जावे,' क्योंकि फ़ारसी में बिना मूँछ-दाढ़ी के लौंडे को अमरद कहते हैं। निस्सन्देह यह 'अमरद' शब्द बोल-चाल का नहीं है, वरन् अन्य भाषा का अप्रचलित शब्द है, किन्तु कवितागत सौन्दर्य की रक्षा के लिए उसका प्रयोग एक मुख्य स्थल पर किया जाना, आशा है तर्क का हेतु न होगा। मेरा विचार है कि ऐसे कतिपय अप्रचलित संस्कृत के अथवा अन्य भाषा के शब्दों के प्रयोग से

ग्रन्थ की भाषा बोल-चाल की ही भाषा मानी जावेगी, अन्य भाषा की न कही जावेगी। मीमांसा के समय ग्रन्थ की मुख्य भाषा देखी जाती है, कतिपय प्रयुक्त शब्द नहीं। यदि इस प्रकार के कतिपय शब्दों को लेकर किसी ग्रन्थ की भाषा निश्चित की जाने लगे तो न तो अँगरेजी, अँगरेजी रह जावेगी, न फ़ारसी, अरबी; फ़ारसी, अरबी; वरन् किसी भाषा का नामकरण ही असम्भव हो जावेगा; क्योंकि वह कौन भाषा है, जिसमें कि अन्य भाषा के कुछ शब्द सम्मिलित नहीं।

अब तक जो कुछ लिखा गया है, उससे यह बात स्पष्ट हो गयी कि किसी भी भाषा में कविता क्यों न लिखी जावे, कविता की भाषा उसकी बोल-चाल की और गद्य की भाषा से कुछ भिन्न अवश्य हो जावेगी। अतएव इस ग्रन्थ की बोल-चाल की भाषा में यदि कवितागत कुछ पार्थक्य है, तो वह स्वाभाविक है, और उस प्रणाली के अन्तर्गत है जो सार्वभौम और व्यापक है। तथापि यह कहने का मैं साहस करूँगा कि ऐसे स्थल ग्रन्थ में बहुत अल्प मिलेंगे, उतना ही अल्प जिसे कि 'दाल का नमक' कहते हैं।

"कविता-वृत्त"

इस ग्रन्थ में अधिकांश दो मात्रिक वृत्तों का प्रयोग हुआ है, इनमें से एक सत्रह और दूसरा उन्नीस मात्राओं का है। सत्रह मात्राओं के वृत्त का कुल रूप २५८४ और उन्नीस मात्राओं के वृत्त का कुल रूप ६७६५ होता है। सत्रह मात्राओं का पद्य निम्नलिखित ध्वनि का है—

"बात कैसे बता सकें तेरी।
SI SS IS IS SS

हैं मुहों में लगे हुए ताले ॥
S IS S IS IS SS
बावले बन गये न बोल सके।
SIS II IS I SI IS
बाल की खाल काढ़ने वाले ॥
SI S SI SIS SS

उन्नीस मात्राओं का पद्य निम्नलिखित ध्वनि का है।

चोट जी को जब नहीं सच्ची लगी।
SI S S II IS SS IS
प्रेम धारा जब नहीं जी में बही ॥
SI SS II IS S S IS
चोचलों से नाथ रीझेगा न तब
SIS S SI SSS I II
है गई यह बात चोटी की कही"
S IS II SI SS S IS

सत्रह मात्राओं के पद्य का पहिला, दूसरा और चौथा चरण उसके कुल २५८४ रूपों में से ७० वाँ और तीसरा ६६३ वाँ रूप है। उन्नीस मात्राओं के पद्य का पहला और दूसरा चरण उसके ६७६५ रूपों में से १०४७ वाँ, तीसरा चरण ५२०४ वाँ और चौथा १०३६ वाँ रूप है। यह अन्तर लघु गुरु की असमानता के कारण हुआ है जैसा कि आपको पद्यों के चरणों के नीचे लिखे लघु। गुरु S चिह्नों के देखने से ज्ञात होगा।

हिन्दी भाषा के छन्दों के रूप अनन्त होते हैं। किसी भाषा का कोई छन्द ऐसा न होगा कि जिसका अन्तर्भाव उसमें न हो जाता हो। छन्दों के सब रूप किसी काल में व्यवहृत नहीं हुए और न

कभी हो सकते हैं। यह भी स्मरण रखना चाहिए कि छन्दों के सभी रूपों में गति अथवा ध्वनि नहीं होती। अनेक रूप ऐसे होते हैं, जो गद्य की भाँति पढ़े जा सकते हैं। पद्यता उनमें नाम को नहीं होती। सत्रह मात्रा के निम्नलिखित रूपों को देखिये—

न मेरी बातें मानोगे क्या ?
× × ×

क्या, मेरी बातें मानोगे न ?
× × ×

क्या मेरी बातें न मानोगे ?
× × ×

क्या न मानोगे मेरी बातें ?

कुछ रूप ऐसे होते हैं जिनकी ध्वनि समान होती है। ऊपर के पद्य इसके प्रमाण हैं। उन्नीस मात्राओं के निम्नलिखित पद्यों को भी देखिये; चारों चरणों के चार रूप हैं किन्तु ध्वनि एक है—

"सब जगह जिसकी दिखाती है झलक।
। । । । । । । S । S S S । । ।
ज्ञान उसको जो न वे अब तक सके॥
S। । । S S । S । । । । । S
तो हुए बूढ़े बने पक्के नहीं।
S । S S S । S S S । S
धूप में ही बाल उनके हैं पके॥"
S। S, S S। । । S S । S

कुछ रूप ऐसे होते हैं जिनकी ध्वनि में भिन्नता होती है और यही भिन्न-भिन्न छंदों का सूत्रपात करते हैं। सत्रह मात्रा का एक छन्द 'छन्दःप्रभाकर' में लिखा गया है, उसका नाम 'राम' है।

ग्रन्थकार लिखते हैं कि प्रस्तार द्वारा यह छन्द नया रचा गया है। उन्होंने इस छन्द में ६ और ८ मात्रा पर विश्राम अथवा यति मानी है। उसकी गति या ध्वनि यह है—

"सुनिये हमारी, विनय मुरारी"

'छन्दोमंजरीकार' ने उपजाति नाम का एक छन्द माना है, उसके दूसरे और चौथे चरण की कला उन्होंने सत्रह मानी है। उसकी गति या ध्वनि यह है—

"हरे बिहारी, तुम हो दयाला"

'छन्दःप्रभाकर' में उन्नीस मात्राओं के चार छन्द लिखे गये हैं— पीयूषवर्ष, सुमेरू, नरहरी और दिंडी। चारों की ध्वनि क्रमशः निम्नलिखित हैं—

पीयूषवर्ष—"सुमिर मन रघुबीर, सुख पैहै जहाँ।"
× × ×

सुमेरू— "सिया के नाथ को नित, सीख नावो।"
× × ×

नरहरी—"हरि सुनत भक्त की बानी, दुख भरी।"
× × ×

दिंडी— "कथा बोलूँ हे मधुर सुधा धारा॥"

बरवा भी उन्नीस मात्राओं का होता है—

यथा — "आवति खिन अँगनैयाँ खिन चलि जाति।
उठि उठि गिनति तरैया, कटति न राति॥"

ऊपर मैंने जिन सत्रह या उन्नीस मात्राओं के छन्दों की चर्चा की है, जिनमें कि बोलचाल नामक ग्रन्थ आद्योपान्त लिखा गया है। उनकी गति या ध्वनि हिन्दी भाषा के किसी सत्रह या उन्नीस

मात्राओं के प्रचलित छन्द की गति या ध्वनि से नहीं मिलती; तथापि प्रस्तार द्वारा उनका रूप मुझको ज्ञात हो गया है। अतएव उनका नामकरण करके मैं उन्हें हिन्दी-भाषा का ही छन्द कह सकता था। उर्दू अथवा फ़ारसी का प्रत्येक छन्द प्रस्तार द्वारा हिन्दी-भाषा का छन्द सिद्ध किया जा सकता है। उक्त दोनों छन्दों की बात ही क्या! परन्तु वास्तव बात यह है कि मैंने उर्दू बह्र का अनुसरण कर उनको लिखा है, अतएव मुझको यह स्वीकार करना पड़ता है कि मैंने इन दोनों बह्रों को उर्दू से लिया है। उर्दू में ये दोनों बह्र प्रचलित हैं और इनमें बहुत-सी उत्तमोत्तम उर्दू कविताएँ लिखी गयी हैं; प्रमाण के लिए निम्नलिखित पद्यों को देखिये—

१७ मात्रा—"तुम मेरे पास होते हो गोया।
जब कोई दूसरा नहीं होता॥"—*मोमिन*

× × ×

"बेखुदी ले गई कहाँ हमको।
देर से इन्तिज़ार है अपना॥"—*आसी*

× × ×

१९ मात्रा—"दिल के आईने में है तसवीरे यार।
जब ज़रा गर्दन झुकाई देख ली॥"—*मीर हसन*

× × ×

"सुबह गुज़री शाम होने आई मीर।
तू न चेता औ बहुत दिन कम रहा॥"—*मीर*

"हिन्दी में उर्दू बह्रों को किस नियम के साथ ग्रहण करना चाहिए" इस विषय पर मैं कुछ लिखना चाहता हूँ। अतएव इस उद्देश्य से भी मैं उनको उर्दू का बह्र ही मानकर आगे बढ़ता हूँ।

हिन्दी में उर्दू बह्र

अमीर खुसरो विक्रमी चौदहवें शतक में हुए हैं। पहले-पहल हिन्दी की कविता उर्दू बह्र में इन्हीं के समय में लिखी गयी है। नीचे लिखे पद्य इसके प्रमाण हैं—

"सखी पिया को जो मैं न देखूँ
तो कैसे काटूँ अँधेरी रतियाँ।
किसे पड़ी है जो जा सुनावे
पियारे पी को हमारी बतियाँ॥"

यह बह्र मुतक़ारिब मुसम्मन मक़बूज़असलम है—'फ़ऊल फ़ेलुन् फ़ऊल फ़ेलुन्, फ़ऊल फ़ेलुन् फ़ऊल फ़ेलुन्'—इसकी ध्वनि है। अर्थात् फ़ऊल फ़ेलुन् (।S। SS) चार बार आने से यह बह्र बनती है।

हज़रत अकबर फ़रमाते हैं—

"कहाँ हैं हममें अब ऐसे सालिक
कि राह ढूँढी क़दम उठाया।
जो हैं तो ऐसे ही रह गये हैं
किताब देखी क़लम उठाया॥"

कबीर साहब ने भी कभी-कभी अपनी हिन्दी रचनाओं में उर्दू बह्रों से काम लिया है। इनका समय अमीर खुसरो के १०० वर्ष बाद आता है। उनका निम्नलिखित पद्य इस बात का प्रमाण है—

"कबीरा इश्क़ का माता, दुई को दूर कर दिल से।
जो चलना राह नाज़ुक है, हमन सिर बोझ भारी क्या?"

यह हज़ज मुसम्मन सालिम है। मफ़ाईलुन् (।SSS) को चार बार लाने से इस बह्र की ध्वनि बनती है। हज़रत अकबर कहते हैं—

"हम ऐसी कुल किताबें,
क़ाबिले ज़ब्ती समझते हैं।
कि जिनको पढ़के लड़के,
बाप को ख़ब्ती समझते हैं॥"

इन दोनों कवियों के बाद हिन्दी साहित्य क्षेत्र में मलिक मुहम्मद जायसी, महात्मा सूरदास, गोस्वामी तुलसीदास और अवधी एवं ब्रजभाषा के तात्कालिक अन्य सुकवियों का पदार्पण होता है। किन्तु ये लोग हिन्दी भाषा के छन्दों से ही काम लेते हैं, इनमें से किसी एक को भी उर्दू बह्रों में कुछ लिखते नहीं देखा जाता। हाँ, विक्रमी अष्टादश शतक में आनन्दघन ने कुछ कविताएँ उर्दू बह्र में की हैं। उदाहरण यह है—

"सलोने श्याम प्यारे क्यों न आवो।
दरस प्यासी मरैं तिनको जिआवो॥"

यह हज्ज मुसद्दस महज़ूफ़ है। मफ़ाईलुन् (।ऽऽऽ) दो बार और फ़ऊलुन् (।ऽऽ) एक बार लाने से इसकी ध्वनि बनती है। इसी बह्र में एक उर्दू शेर देखिये—

"सनम सुनते हैं तेरे भी कमर है।
कहाँ है? किस तरफ़ को है? किधर है?"—जुरअत

विक्रमी उन्नीस शतक में सय्यद इन्शाअल्लाह खाँ ने 'कहानी ठेठ हिन्दी' नाम की एक लघु पुस्तिका लिखी। इस पुस्तिका में इन्होंने जो पद्य लिखे हैं, वे भी ठेठ हिन्दी में हैं, किन्तु बह्र उनकी उर्दू है; उनमें से कुछ पद्य नीचे लिखे जाते हैं—

"छा गई ठंढी साँस झाड़ों में।
पड़ गई कूक सी पहाड़ों में॥"

"अब उदयभान और रानी केतकी दोनों मिले।
आस के जो फूल कुम्हलायें हुए थे फिर खिले॥"

पहला पद्य ख़फ़ीफ़ का है। फ़ाइलातुन् (ऽ।ऽऽ) मफ़ाइलुन् (।ऽ।ऽ) फ़ेलुन् (ऽऽ) इसकी ध्वनि है। दूसरा पद्य रमल, मुसम्मन महज़ूफ़ का है। फ़ाइलातुन् (ऽ।ऽऽ) को तीन बार और फ़ाइलुन् (ऽ।ऽ) को एक बार लाने से यह बह्र बनती है। कुछ उर्दू-पद्य भी देखिये—

"जग में आकर इधर उधर देखा।
तू ही आया नज़र जिधर देखा॥"—*मीरदर्द*

× × ×

"रहिये अब ऐसी जगह चलकर जहाँ कोई न हो।
हम सख़ुन कोई न हो औ हम ज़बाँ कोई न हो॥"—*ग़ालिब*

विक्रमी बीसवीं शताब्दी में हिन्दी भाषा में उर्दू बह्रों का विशेष प्रसार हुआ है। इस प्रसार की गति आजकल बहुत द्रुत हो गयी है। इस शताब्दी के आदि में ललितकिशोरीजी ने उर्दू बह्र में बहुत-सी रचनाएँ की हैं। हिन्दी संसार में ये रचनाएँ 'रेखता' के नाम से प्रसिद्ध हैं। रास-लीलाओं में इनका बड़ा आदर है। कौआली का भी लगभग यही स्वरूप है। साधारण लोगों में इस ध्वनि का विशेष प्रचार है। * ललितकिशोरीजी का एक पद्य देखिये—

"इस रस के पावै चसके जेहि लोक-लाज खोई।
मैं बेंचती हूँ मन के माखन को लेवै कोई॥"

---

* उर्दू का दूसरा नाम रेखता है। ज्ञात होता है कि उर्दू बह्र में लिखे जाने के कारण ही इस प्रकार की कविताओं का नाम रेखता रख लिया गया है।

इस बह्र का नाम मुज़ारा मुसम्मन् अख़रब है। मफ़ऊल (ऽऽ।) फ़ाइलातुन् (ऽ।ऽऽ) दो बार आने से इस बह्र की ध्वनि बनती है। इसका स्वरूप हिन्दी के दिग्पाल छन्द से मिलता है। इस बह्र में कुछ उर्दू पद्यों को देखिये—

"शोरे जुनूँ हमारा आख़िर को रंग लाया।
जो देखने को आया हाथों में संग लाया॥" (बहरुल उरूज, २–पृष्ठ)

× × ×

"हर आन हम को तुम बिन इक इक बरस हुई है।
क्या आ गया ज़माना अय यार रफ़्ता रफ़्ता॥"—*मीर*

उक्त शताब्दी के प्रथमार्ध में भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र और श्रीमान् पण्डित प्रतापनारायण मिश्रजी ने उर्दू बह्रों में अच्छी कविताएँ की हैं। भारतेन्दुजी का विचार है कि खड़ी बोली की कविता हिन्दी में सरस और मधुर नहीं हो सकती। उन्होंने अपनी 'हिन्दी भाषा' नामक पुस्तक के पृष्ठ १० में एक स्थान पर खड़ी बोली की कविता (जिसका नामकरण आपने 'नई भाषा' किया है) दोहे में लिख कर अपनी सम्मति यों प्रकट की है—

"*नई भाषा की कविता*—

भजन करो श्रीकृष्ण का मिलकर के सब लोग।
सिद्ध होयगा काम औ छूटेगा सब सोग॥

अब देखिये यह कैसी भोड़ी कविता है। मैंने इसका कारण सोचा कि खड़ी बोली में कविता मीठी क्यों नहीं बनती! तो मुझको सबसे बड़ा कारण यह जान पड़ा कि इसमें क्रिया इत्यादि में प्रायः दीर्घ मात्रा होती है, इससे कविता अच्छी नहीं बनती।"

यह विचार होने के कारण जब आपने खड़ी बोली की कविता की है, तब अधिकांश स्थानों पर काम उर्दू बह्र से ही लिया है। कुछ रचनाएँ देखिये—

"वह अपनी नाथ दयालुता,
तुम्हें याद हो कि न याद हो।
वह जो कौल भक्तों से था किया,
तुम्हें याद हो कि न याद हो॥

वह जो गीध था, गनिका वह थी,
वह जो व्याध था मल्लाह था॥
इन्हें तुमने ऊँचों की गति दिया,
तुम्हें याद हो कि न याद हो॥"

यह कामिल मुसम्मन् सालिम है। मुतफ़ाइलुन् (।।ऽ।ऽ) को चार बार लाने से इसकी ध्वनि बनती है। इस बह्र में लिखी गयी यह उर्दू ग़ज़ल बहुत मशहूर है—

"वह जो हमसे तुमसे क़रार था
तुम्हें याद हो कि न याद हो।
हमें याद है सब ज़रा ज़रा
तुम्हें याद हो कि न याद हो॥"

बाबू साहब के पद्य का आधार यही है। श्रीमान् पण्डित प्रतापनारायण मिश्र की भी कुछ रचनाएँ देखिये—

"बिधाता ने याँ मक्खियाँ मारने को।
बनाये हैं ख़ुशरू जवाँ कैसे कैसे॥

अभी देखिये क्या दशा देश की हो।
बदलता है रंग आसमाँ कैसे कैसे॥"

यह मुतक़ारिब मुसम्मन् सालिम है। फ़ऊलुन् (।ऽऽ) चार बार आने से इस बह्र की ध्वनि बनती है। कुछ उर्दू पद्य भी देखिये—

ज़ेहन पर हैं उनके गुमाँ कैसे कैसे।
कलाम आते हैं दरमियाँ कैसे कैसे॥
न गोरे सिकन्दर न है क़ब्र दारा।
मिटे नामियों के निशाँ कैसे कैसे॥—आतिश

प्राचीन लेखकों में माननीय प्रेमघन और श्रीमान् बाबू बालमुकुन्द गुप्त की भी हिन्दी रचनाएँ उर्दू बह्रों में पायी जाती हैं। मगर अब उन लोगों की रचनाओं का उदाहरण देकर मैं इस लेख को न बढ़ाऊँगा। संभव है कि इस क्रम में अनभिज्ञता के कारण कुछ और नाम छूट गये हों, किन्तु इससे उद्देश्य-निरूपण में अन्तर न पड़ेगा। वर्तमान काल खड़ी बोली की रचनाओं के प्रसार का है। इस कारण आज कल अधिकांश लोग उर्दू बह्रों से काम लेने लगे हैं। प्रतिष्ठित लेखकों में उर्दू बह्रों में अधिकतर लिखनेवाले श्रीमान् पण्डित गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' और श्रीमान् लाला भगवानदीन हैं। मेरे विषय में एक स्थान पर अपनी 'कविता कौमुदी' में श्रीमान् पण्डित रामनरेश त्रिपाठी ने यह लिखा है—

"उर्दूवाले 'और' को 'औ' और 'पर' को 'प' लिखकर भी अपना भाव प्रकट कर सकते हैं, किन्तु हिन्दी में यह गुनाह माना जाता है। हिन्दी में शब्दों के रूप और उच्चारण में अन्तर नहीं होना चाहिए। नियमित सँकरे रास्ते से ही चलना चाहिए; किन्तु हर एक बार माल पूरा आना चाहिए। थोड़े माल से ग्राहकों का जी नहीं भर सकता। ऐसा करने के लिए हिन्दी के कुछ कवि उर्दूवालों का ही रास्ता पकड़ना चाहते हैं। वर्तमान कवियों में इस मत के पोषक पण्डित अयोध्यासिंह उपाध्याय कहे जा सकते हैं।"

मैंने खड़ी बोली की कविता में अधिकतर उर्दू बह्रों का प्रचार किया है; ज्ञात होता है कि यह देखकर पण्डितजी ने ऐसा लिखने की कृपा की है; किन्तु मेरे उद्देश्य को आप यथातथ्य प्रकट नहीं कर

सके हैं। मेरे उर्दू बह्रों में एक सज्जन ने पिंगल के दोष भी दिखलाये हैं। कुछ लोगों ने मुझसे ये प्रश्न भी किये हैं कि उर्दू बह्रें हिन्दी में किन नियमों के साथ ग्रहण की जा सकती हैं? अतएव मैं इस विषय में कुछ लिखने को बाध्य हुआ।

प्रत्येक भाषा का यह नियम है कि उसमें रस और भाव के अनुकूल कुछ छन्द अथवा वृत्त नियत होते हैं। संस्कृत में भी रसानुकूल वृत्तों की योजना है। कोमल और मधुर भावों के लिए यदि मालिनी और वसन्ततिलका आदि का प्रयोग होता है तो गंभीर और ओजमय भावों के लिए शार्दूल-विक्रीड़ित आदि से काम लिया जाता है। हिन्दी में शृङ्गार रस की सरस और मनोहर रचनाओं के लिए यदि मत्तगयन्द सार और बरवे गृहीत हैं तो वीर अथवा रौद्र रस के लिए कड़खा, त्रिभंगी और वीर छन्द काम में आता है। क्यों! इसलिए कि छन्द मनोभावों के प्रकट करने के समुचित साधन हैं। जिस छन्द द्वारा जो मनोभाव यथातथ्य प्रकट होगा उस मनोभाव के व्यक्त करने के लिए वही छन्द उपयुक्त और उत्तम समझा जावेगा। खड़ी बोली का रोज़मर्रा और बोलचाल जिस उत्तमता से प्रायः उर्दू बह्रों में लिखा जा सकता है, जितनी ओजस्विता उनमें आती है, बहुधा हिन्दी छन्दों में नहीं। जिस सुविधा से खड़ी बोली की क्रियाएँ उर्दू बह्रों में प्रायः खपती हैं, हिन्दी छन्दों में नहीं। वे उर्दू बह्रों में आकर यदि उनको सजाती हैं तो उर्दू बह्रें भी उनको सुन्दर बनाने में कम सहायक नहीं होतीं। और यही कारण है कि आजकल उर्दू बह्र का प्रचार कुछ अधिक हो गया है।

मैं ऊपर यह दिखला आया हूँ कि हिन्दी में उर्दू बह्रों का प्रचार आधुनिक नहीं है, वरन् चिरकालिक है। कारण दूसरा कुछ नहीं, उपयोगिता मात्र है। इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि हिन्दी

में उर्दू बह्रों का अधिक प्रचार करके अनधिकार चेष्टा की गयी है। मुख्यतः उस अवस्था में जब कि वे हिन्दी वृत्तों के ही अन्तर्गत हैं। हाँ, यह अवश्य विचारणीय है कि उनका व्यवहार हिन्दी में किस रूप में होना चाहिए। अब मैं इसी विषय पर प्रकाश डालूँगा।

बह्र-व्यवहार-नियम

हिन्दी छन्दों के नियम सरल, सुबोध और अल्प श्रमसाध्य हैं। अतएव इन्हीं नियमों के साथ हमको उर्दू बह्रों को भी ग्रहण करना चाहिए। उर्दू में उनका प्रचलित होना हमारे दृष्टि-आकर्षण के साधन अवश्य हैं, पर हैं वे हिन्दी वृत्तों के ही रूपान्तर। ऐसी अवस्था में वे हिन्दी छन्दों के नियम के अन्तर्गत हैं। अतएव वे हमारे लिए उन्हीं नियमों के साथ ग्राह्य हैं। इसमें तर्क-वितर्क को स्थान नहीं। अब रही यह बात कि यदि उर्दू के नियम उनसे भी सरल, सुबोध और उपयोगी हों तो वे क्यों न ग्रहण किये जावें! मैं इसको स्वीकार करता हूँ और अब इसी बात की मीमांसा में प्रवृत्त होता हूँ।

हिन्दी में सब छन्दों की मात्राएँ नियत हैं। ह्रस्व की एक मात्रा और दीर्घ की दो मात्राएँ होती हैं। अतएव मात्रा गिनने में कोई उलझन नहीं होती। ध्वनि अथवा गति के लिए उदाहरण की ध्वनि ही पर्याप्त होती है। कुछ यति और स्थान विशेष पर लघु-गुरु के नियम हैं। बस, इतना ही। किन्तु इतना ज्ञान ही इतना पूर्ण होता है कि छन्दोरचना हो जाने पर एक मात्रा की कसर नहीं पड़ती। कभी-कभी दीर्घ को ह्रस्व पढ़ना पड़ता है, परन्तु ऐसा अवसर कदाचित् ही उपस्थित होता है। अधिकांश छन्दों में ऐसी नौबत ही नहीं आती। बहुत से प्रतिष्ठित कवि यति और स्थान-विशेष पर

लघु-गुरु स्थापन के नियम को भी नहीं मानते। वे केवल उदाहरण के छन्दोगति पर ही दृष्टि रखते हैं और ऐसी अवस्था में भी निर्दोष कविता करते हैं। यति के विषय में कुछ आचार्यों की भी यही सम्मति है। छन्दोमञ्जरीकार लिखते हैं—

"श्वेतमाण्डव्य मुख्यास्तु नेच्छन्ति मुनयो यतिम् ॥"

श्वेतमाण्डव्यादि मुनि यति नहीं मानते। दीर्घ का लघु पढ़ा जाना यद्यपि प्रचलित है तथापि हिन्दी छन्दोरचना इतनी सुन्दर होती है कि ऐसा अवसर बहुत कम आता है। छन्द के प्रति चरण में ही अनेक शब्दों के तोड़ने-मरोड़ने की आवश्यकता नहीं होती। मैं रोला छन्द लेकर अपने कथन को स्पष्ट करूँगा।

छन्दःप्रभाकर में रोला का लक्षण यह लिखा है—

"रोला की चौबीस कला यति शंकर तेरा।"

अर्थ इसका यह हुआ कि रोला की चौबीस कला अर्थात् मात्राएँ होती हैं, और शंकर यानी ग्यारह और तेरह पर यति होती है। इसकी टीका में ग्रन्थकार ने यह लिखा है—"अन्त में दो गुरु अवश्य चाहिए, किंतु यह सर्वसम्मत नहीं है।" इससे यह पाया जाता है कि अन्त में दो गुरु होने का नियम सर्वमान्य नहीं है, अतएव रोला का जो लक्षण पद्य में लिखा है वही मुख्य है। लक्षण का पद्य हमें छन्दोगति भी बतलाता है। अतएव इस गति पर ध्यान रख हम यति का निर्वाह करते हुए २४ मात्रा पूरी कर दें तो रोला-छन्द बन जावेगा। हमको किसी दूसरी उलझन में नहीं फँसना होगा। श्रीयुत् बाबू जगन्नाथदास रत्नाकर बी० ए० ने नागरी-प्रचारिणी पत्रिका भाग ५ अंक १ में रोला छन्द के विषय में बहुत कुछ लिखा है। उसमें एक स्थान पर 'प्राकृत पिंगल सूत्राणि' के टीकाकार बंशीधर की यह सम्मति उन्होंने प्रकट की है :—

"रोलायाम् चतुर्विंशतिमात्राः प्रतिचरणं देया इत्यावश्यकम्। तत्र प्रकारद्वयेन संभवति, लघुद्वययुक्तैकादशगुरुदानेन यथेच्छं गुरुलघुदानेन वा।"

दूसरे स्थान पर 'छन्दोर्णव-पिंगलकार' कविवर भिखारीदास का यह विचार "*अनियम ह्वै है रोला*" लिखा है। इसके बाद बहुत मीमांसा करके यह निष्कर्ष निकाला है—

"रोला छन्द में ११ मात्राओं पर विरति होना आवश्यक नहीं है। पर यदि हो तो अच्छी बात है।"

निम्नलिखित प्रतिष्ठित कवियों के पद्यों से भी यही सिद्ध होता है कि रोला छन्द में अन्त में दो गुरु और ग्यारह मात्राओं पर यति होना आवश्यक नहीं है।

"ब्रह्म कमंडलमंडन भवखंडन सुरसरबस।"
× × ×
ऐरावतगज गिरि पवि हिमनगकंठहारकल।"
× × ×
"घहरत घंटा धुनि धमकत धौंसा करि साका।"
× × ×
"वारिधि नाते ससिकलंक मनु कमल मिटावत।"
—*भारतेंदु*

"या बन की बर बानिक या बन ही बनि आवै।"
× × ×
"साखा दल फल फूलनि हरि प्रतिबिंब बिराजै॥"
× × ×
"निकर विभाकर द्युति मेटत सुभ मनि कौस्तुभ अस।"
× × ×
"सुन्दर नन्द-कुँवर उर पर सोइ लागत उडु जस॥"
—नंददास

इन बातों के उल्लेख करने का अभिप्राय यह है कि हिन्दी-भाषा-छन्दों के नियमों को सुलभ और सुबोध बनाने की बराबर चेष्टा हुई है। बंधनों को कसने के स्थान पर ढीला किया गया है, और ऐसे मार्ग निकाले गये हैं जिनसे जटिलताओं का निराकरण हो। रोला को किसी-किसी आचार्य ने इतना मुक्त कर दिया है कि यदि २४ मात्राएँ ही छन्दोगति का ध्यान करके लिख दी जावें तो रोला छन्द बन जावेगा, और रचयिता को दूसरे बन्धनों में न पड़ना होगा। अन्य छन्दों के विषय में भी इसी प्रकार की बहुत सी बातें कही और बतलाई जा सकती हैं, परन्तु यह केवल बाहुल्य मात्र होगा। वास्तव बात यह है कि जिह्वा ही छन्दोगति की तुला है। यदि थोड़ी सावधानी के साथ छन्द के साधारण नियमों का ध्यान रखकर रचना की जावे तो दोष की संभावना बहुत ही कम रहती है। यह बात एक अभ्यस्त पुरुष के लिए है, शिक्षार्थी के लिए यह बात नहीं कही जा सकती। उसको कुछ काल तक प्रत्येक नियमों का पूरा अभ्यास करके अपनी रचना-शक्ति को बढ़ाना ही होगा, तभी उसको सफलता प्राप्त होगी। शिक्षार्थी के लिए ही अधिकतर उपयोगी नियम बनाये गये हैं, कि जिनके द्वारा गन्तव्य पथ पर वह सुगमता से चल सके। हिन्दी छन्दःशास्त्र में जहाँ एक ओर सुगमता और सहज बोध का राजमार्ग है वहीं दूसरी ओर अनुकूल नियमों और उपयोगी परिभाषाओं की चरम सीमा है।

अब आइये इसी कसौटी पर उर्दू की बह्रों को कसें। उर्दू में इस प्रणाली को "तक़तीअ" कहते हैं। दोनों भाषाओं में पद्यों की अधिकांश रचना ध्वनि अथवा छन्दोगति के अनुसार होती है; भ्रम प्रमाद मनुष्य का स्वाभाविक गुण है। भूल-चूक किससे नहीं होती कभी-कभी चिर अभ्यस्त पुरुष भी मार्गच्युत हो जाता है। शीघ्रता

से की गयी रचनाएँ अथवा चित्तवृत्ति की अननुकूलता भी प्रायः छन्दों को सदोष बना देती है। ऐसी अवस्था में प्रश्न होने पर अथवा अपने चित्त के समाधान के लिए छन्दों को नियत गण अथवा मात्राओं पर कसना पड़ता है। शिक्षा के समय अथवा किसी के बोध-वर्धन के लिए भी इसकी आवश्यकता होती है। इसी क्रिया को उर्दू में तक़तीअ और हिन्दी में जाँच अथवा परीक्षा कहते हैं। हिन्दी में यह क्रिया लघु गुरु मात्राओं और कतिपय उल्लिखित विशेष नियमों द्वारा होती है। उर्दू में 'तक़तीअ' रुक्नों द्वारा की जाती है जिसके दो मूल चिह्न 'साकिन' और 'मुतहर्रिक हैं। हिन्दी के लघु गुरु मात्राओं के विषय में हिन्दी-संसार को मुझे कुछ विशेष बतलाने की आवश्यकता नहीं, उसको पिंगल से अल्प परिचित जन भी भली भाँति समझता और जानता है। यहाँ मुझको रुक्नों और 'साकिन' 'मुतहर्रिक' दो मूल चिह्नों का वर्णन करना है, जिससे यह ज्ञात हो सके कि दोनों मार्गों में कौन विशेष सरल, बोधगम्य अथच उपयोगी है।

मैं ऊपर कह आया हूँ कि हिन्दी में छन्द का उदाहृत पद्य ही उसकी ध्वनि अथवा गति का सूचक होता है। उर्दू में यह बात नहीं है, उसमें यह काम रुक्न करते हैं। 'बाल की खाल काढ़ने वाले' यदि इसकी ध्वनि उर्दूवाले को बतानी होगी तो वह "फ़ाइलातुन्-मफ़ाइलुन् फ़ेलुन्" रुक्नों द्वारा उसको प्रकट करेगा। ऐसे ही सब बह्रों के लिए उसमें रुक्न नियत हैं; कभी एक ही रुक्न तीन चार बार आकर बह्रों की ध्वनि बतलाते हैं और कभी उनके साथ दूसरे दूसरे रुक्न भी होते हैं। जैसे अकेले 'मफ़ाईलुन्' को चार बार लाने से किसी बह्र का एक मिसरा बनता है, वैसे ही "मफ़ऊल मफ़ाईलुन्"

'मफ़ऊल मफ़ाईलुन्" से भी किसी दूसरी बह्र का एक मिसरा बन जाता है। ये ही उर्दू बह्रों की ध्वनियों के जनक हैं।

अब रहा प्रश्न 'साकिन' और 'मुतहर्रिक' का। यह उर्दू में हमारी लघु-गुरु मात्राओं का काम देते हैं, परन्तु उतने सरल और सुबोध नहीं हैं। इनमें जटिलता है। 'पद्य-परीक्षाकार' पंडित नारायणप्रसाद बेताब ने उनका वर्णन उक्त ग्रन्थ में हिन्दी पिंगल के ढंग पर किया है; अतएव उसी ग्रंथ से उनके वर्णन को मैं यहाँ अविकल उद्धृत करता हूँ—

"*साकिन*—(१) शब्द के अन्त या मध्यवर्ती स्वरहीन अक्षर (व्यंजन) को साकिन कहते हैं। उर्दू में कोई शब्द ऐसा नहीं जो साकिन से शुरू होता हो।

(२) दीर्घ स्वर दो स्वरों के योग से बनते हैं (जैसे कि अ+अ = आ) इसलिए दो स्वरों का अन्तिम स्वर 'साकिन' होता है। दीर्घ स्वर जिन व्यंजनों में मिल जायगा वह व्यंजम गुरु हो जावेगा। गुरु की दो मात्रा होती है। जैसे जा, की, बू, से, लो, इनमें अन्तिम मात्रा को 'साकिन' जानिये।

मुतहर्रिक—(१) अ, इ, उ, ऋ स्वयं मुतहर्रिक हैं।

(२) जिस व्यंजन में उक्त स्वर सम्मिलित होंगे, वह भी मुतहर्रिक होगा।

(३) जब दो साकिन समीप आ पड़ते हैं तो दूसरे को मुतहर्रिक मान लेते हैं। उदाहरण—

"किस 'बात्' पर है तेरा दिमाग़ आसमान पर।
मंज़िल गहे फ़कीरो तवंगर 'ज़मीन्' है॥"

"इस शेर में बात् का त् और ज़मीन् का न् वास्तव में साकिन हैं, पर साकिन के बाद आने से मुतहर्रिक का स्थान ले रहे हैं। तीन साकिन एकत्र हो जाते हैं तो दूसरा मुतहर्रिक और तीसरा लोप हो जाता है। जैसे दोस्त, पोस्त को 'तक़्तीअ' में दोस, पोस शुमार करेंगे।"—पद्यपरीक्षा पृष्ठ २१-२२

उदाहरण के द्वारा इस विषय को मैं और स्पष्ट करना चाहता हूँ। मिर्ज़ा ग़ालिब के इस मिसरे को देखिये—

"आगे आती थी हाल दिल पर हँसी।"

हमको इसकी 'तक़तीअ' करनी है। इसलिए पहिले देखना चाहिए कि इसके रुक्न क्या हैं ! इसके रुक्न हैं—

फ़ा इ ला तु न्—म फ़ा इ लु न्—फ़े लु न्
मस म मस म स म मस म म स मस म स

अब नियम के अनुसार हमको यह देखना है कि इसमें कितने साकिन और कितने मुतहर्रिक हैं, और उनका स्थान क्या है। उक्त रुक्नों में पहिले में 'फ़ा' व 'ला' दो दीर्घ और दूसरे व तीसरे में 'फ़ा' व 'फ़े' एक एक दीर्घ हैं। इन सबों का व्यंजनांश मुतहर्रिक और अंतिम दीर्घांश साकिन (देखो साकिन का नियम २) होगा। अतएव उनके नीचे पहिले मुतहर्रिक का छोटा रूप 'म' और बाद को साकिन का छोटा रूप 'स' लिखिये। पहिले रुक्न का इ और तु दूसरे रुक्न का इ व लु और तीसरे रुक्न का लु नियमानुसार मुतहर्रिक हैं (देखिये मुतहर्रिक का नियम १, २)। अतएव उनके नीचे भी 'म' लिखिये, तीनों रुक्नों के अन्त में स्वरहीन अथवा हलन्त न् है अतएव वह साकिन है (देखिये साकिन का नियम १)। अतएव उन पर स लिखिये। अब केवल दूसरे रुक्न का म रह गया, वह मुतहर्रिक के नियम २ के अनुसार मुतहर्रिक है। अतएव उसके नीचे म लिखिये। रुक्नों के कुल अक्षरों पर साकिन और मुतहर्रिक लिख गये। इसलिए अब यह देखना चाहिए कि रुक्नों में कुल संख्या साकिन व मुतहर्रिक की क्या है

और उनमें कितने साकिन और मुतहर्रिक हैं और उनका स्थान क्या है! गिनने पर मालूम होगा कि कुल साकिन और मुतहर्रिक १७ हैं। उनमें से १० मुतहर्रिक और ७ साकिन हैं। पहले, तीसरे, चौथे, छठे, आठवें, नवें, ग्यारहवें, बारहवें, चौदहवें और सोलहवें स्थान पर मुतहर्रिक हैं और शेष स्थानों पर साकिन। अब उक्त मिसरे पर भी साकिन मुतहर्रिक के सूक्ष्म रूप म, स, को उक्त नियमानुसार लिखिये। यदि उनके साकिन व मुतहर्रिक की संख्या रुक्नों की संख्या के बराबर हों और स्थान भी उनके वे ही हों तो समझिये मिसरा शुद्ध है अन्यथा सदोष। नियमानुसार मिसरे पर स म लिखे गये तो उसका निम्नलिखित स्वरूप हुआ—

आ	गे	आ	ती	थी	हा	ल	दि	ल	प	र	हँ	सी
मस	मस	मस	मस	मस	मस	म	म	स	म	स	म	मस

'म' व 'स' के गिनने पर ज्ञात हुआ कि उनकी कुल संख्या २० है, और अलग अलग मुतहर्रिक की संख्या ११ और साकिन की संख्या ९ है, जो कि रुक्नों की कुल संख्या और साकिन व मुतहर्रिक की अलग अलग संख्या से अधिक है। मिला कर देखिये; दोनों के साकिन मुतहर्रिक के स्थान भी नहीं मिलते। इसलिये मिसरा अशुद्ध और सदोष है।

तो क्या मिर्ज़ा ग़ालिब ऐसे उस्ताद भी मिसरा गल्त लिख गये? नहीं, यह बात नहीं है। वास्तव बात यह है कि अधिकांश उर्दू बह्रों में हिन्दी के अनेक शब्द शुद्ध रूप में नहीं आते। इसलिए 'तक़तीअ' करने के समय कुछ गुरु लघु बना दिये जाते हैं और कुछ पूरे शब्द अधूरे रखे जाते हैं, तब कहीं जाके पूरी पड़ती है और अरकान से उनका मिलान होता है, इस नियम के अनुसार मिसरे का निम्नलिखित रूप होगा—

आ ग आ ती थि हाल दिल प हँसी।

आप देखें इसमें आगे का गे, ग; थी, थि; और पर, प बन गया। जब नियमानुसार उनपर 'साकिन' 'मुतहर्रिक' लिखा गया तो निम्नलिखित रूप हुआ—

आ ग आ ती थि हा ल दि ल प हँ सी
मस म मस मस म मस म म स म स मस

यह रूप साकिन मुतहर्रिक की संख्या और स्थान दोनों की दृष्टि से रुक्नों के समान है। अतएव सिद्ध हुआ कि मिसरा शुद्ध है। एक बात और मैं यहाँ प्रकट कर देना चाहता हूँ—वह यह कि जब दो मुतहर्रिक साथ आते हैं तो उर्दू नियमानुसार वे दीर्घ होकर प्रायः गुरु का रूप धारण कर लेते हैं। अतएव दीर्घ वर्णों के समान ही उनके साकिन और मुतहर्रिक माने जाते हैं। इसी व्यवस्था के अनुसार ऊपर के 'दिल' और 'पहँ' दीर्घ माने गये और दीर्घ वर्णों के अनुसार उनके साकिन मुतहर्रिक का निर्णय किया गया।

पिंगलसार के रचयिता पृष्ठ १०० में लिखते हैं—

"हम, तुम, कब, जब, अब, इस, उस, चल इत्यादि का वास्तविक रूप उर्दू में हम्, तुम्, कब्, जब्, अब्, इस्, उस्, चल् हैं। हल् अक्षर अपने पूर्व को गुरु करके स्वयं नष्ट हो जाता है। इस कारण दोनों लघु भी एक गुरु ही हो जायेंगे।"

इसका भाव भी लगभग वही है, जो मैंने अभी बतलाया है। साकिन और मुतहर्रिक की जटिलताएँ आपने देख लीं, उनके नियमों की दुरूहता भी समझ ली। मैं समझता हूँ कुछ सज्जन ऊब भी गये होंगे, कुछ उसको ठीक-ठीक समझ भी न सके होंगे। अतएव स्पष्ट को और स्पष्ट करने एवम् हिन्दी-लघु गुरु के नियम

की सरलता और सुबोधता दिखलाने के लिए अब मैं हिन्दी पिंगल के अनुसार रुक्नों के ही सहारे उक्त मिसरे की शुद्धता की जाँच करता हूँ। हिन्दी में पिंगल के नियमानुसार कुल रुक्नों का यह स्वरूप होगा। नीचे मिसरा भी लिखा है—

फ़ा	इ	ला	तुन्	म	फ़ा	इ	लुन्	फ़े	लुन्
S	I	S	S	I	S	I	S	S	S
आ	ग	आ	ती	थि	हा	ल	दिल	पहँ	सी
							S	S	

ऊपर की क्रिया देखने से ज्ञात हो गया कि यह १७ मात्रा का छन्द है। संशोधित रूप में मिसरा बिलकुल शुद्ध है। पहले रुक्न के तुन् व दूसरे रुक्न के लुन् को दो लघु और फ़ेलुन् को चार लघु लिख कर भी ती, दिल् और प हँसी को मिलावें तो भी कोई अन्तर न पड़ेगा। क्योंकि छन्द मात्रिक रूप में ग्रहण किया गया है। आप देखें लघु गुरु प्रणाली से कितना शीघ्र और कितनी सुगमता से छन्द की जाँच हो गयी।

नियमों की अपूर्णता

अब हम उक्त नियमों की पूर्णता की जाँच करेंगे। साकिन के विषय में कहा गया है कि शब्द के अन्त और मध्य में जो हल् वर्ण होगा वह साकिन होगा। यदि शब्द के आदि में हल् वर्ण हो तो क्या होगा? इसका उत्तर यह है कि उर्दू में कोई शब्द साकिन से प्रारम्भ नहीं होता। हिन्दी का 'प्रेम' व 'स्नेह' शब्द उर्दू में 'परेम' व 'सनेह' हो जावेगा, इसलिए आदि के हल् वर्ण के विषय में कुछ कहना व्यर्थ समझा गया। उर्दू के लिए यह सिद्धान्त ठीक हो सकता

है, किन्तु हिन्दीवालों के लिए यह सिद्धान्त 'अव्याप्ति' दोष से दूषित है। यदि हम उक्त बह्र में ही यह मिसरा लिखें "प्रेम का पाँव चूमनेवाले" तो उर्दू के नियमानुसार प्रेम की तक़्तीअ नहीं हो सकती, क्योंकि आदि के हल् वर्ण के विषय में वह कोई नियम नहीं बनाता, और ऐसी अवस्था में हिन्दी के लिए उसकी अपूर्णता प्रकट है।

मुतहर्रिक के विषय में एक नियम यह है कि अ, इ, उ, ऋ ये चारों स्वर मुतहर्रिक हैं। यही नहीं, ये चारों स्वर जिस व्यंजन में मिले होंगे वे भी मुतहर्रिक होंगे। इसलिए यह सिद्ध होता है कि यदि ऐसे वर्णों का नियमानुसार यथास्थान प्रयोग न होगा तो बह्र सदोष हो जावेगी। प्रयोजन यह कि ति, तु, तृ या ऐसे ही और व्यञ्जन जिनमें इ, उ, ऋ सम्मिलित हों मुतहर्रिक हैं, अतएव यदि ऐसे व्यञ्जनों का प्रयोग साकिन के स्थान पर होगा तो रचना दोषयुक्त हो जावेगी, क्योंकि छन्द अथवा बह्र की गति वा ध्वनि में अन्तर पड़ जावेगा।

श्रीयुत बाबू जगन्नाथदास रत्नाकर की सम्मति भी कुछ इसी प्रकार की है। उन्होंने प्रथम अखिल भारतीय कविसम्मेलन के प्रधान पद से इस विषय में जो कुछ कहा है, उसके विशेषांश नीचे दिये जाते हैं—

"फ़ारसी शब्दों में कतिपय विशेष अवस्थाओं के अतिरिक्त प्रायः दो लघुवर्ण एक साथ नहीं पड़ते। इसीलिए उर्दू छन्द में, हिन्दी के दो लघुवर्ण जब एक साथ आते हैं, तो उनमें से अन्त लघु हलवत् उच्चारित होता है, जिससे उसके पूर्व का लघुवर्ण गुरु हो जाता है"

"पर जब लोग यह समझ कर कि उर्दू छन्दों के किसी गुरु के स्थान पर दो लघु लाने में कोई हानि नहीं है, इकारान्त अथवा उकारान्त शब्द भी उर्दू छन्दों में लाने लगते हैं, तो उनका बिगाड़ बढ़कर लक्षित होने लगता है"

"यद्यपि उर्दू के किसी किसी छन्द में एक गुरु के स्थान पर दो लघु अथवा दो लघुओं के स्थान पर एक गुरु रख देने से उसकी लय में कोई त्रुटि लक्षित नहीं होती। जैसे उस छन्द में जो हरिगीतिका से मिलता है, पर अधिकांश छन्दों में ऐसा लघु गुरु का परिवर्तन छन्द की गति बिगाड़ देता है"

आइये इसकी परीक्षा करें, इसको जाँचें और देखें कि वास्तव में बात क्या है! जिस मुतहर्रिक-स्थानीय व्यञ्जन में अ सम्मिलित हो उसमें कोई झगड़ा न पड़ेगा, क्योंकि उर्दू में वह प्रायः हलन्त मान लिया जाता है। ऐसे ही 'ऋ' सम्मिलित वर्ण भी बहुत थोड़े मिलेंगे, अतएव परीक्षा में ऐसे वर्णों को लेता हूँ जिनमें इ अथवा उ सम्मिलित हों। नीचे के पद्यों को देखिये।

१—कौन सुंदर रुचि न चौगूनी हुई।
× × ×
२—हैं बुरी रुचियाँ बुराई से भरी।
× × ×
३—ठीक धुनिये के धुने रूई हुई।
× × ×
४—गिटकिरी जो हो न सुंदर रुचि-भरी।
× × ×
५—राज-मुकुटों पर लगी मोती लड़ी।
× × ×
६—बीज बोते ही नहीं मरुभूमि में।
× × ×
७—है बुरा बहुतायतों में क्यों फँसे।
× × ×
८—और पहुँचाते रहें ठंढक सभी।

इन पद्यों की ध्वनि वही है जो "जब ज़रा गरदन झुकाई देख ली" की है। इसके अरकान हैं—"फ़ाइलातुन् फ़ाइलातुन् फ़ाइलुन्" अरकान पर साकिन, मुतहर्रिक लिखने से उनका निम्नलिखित रूप होगा—

फ़ा	इ	ला	तुन्	फ़ा	इ	ला	तुन्	फ़ा	इ	लुन्
मस	म	मस	मस	मस	म	मस	मस	मस	म	मस
S	I	S	I	S	I	S	II	S	I	S
१—कौ	न	सुं	दर	रुचि	न	चौ	गू	नी	हु	ई
२—हैं	बु	री	रुचि	याँ	बु	रा	ई	से	भ	री
३—ठी	क	धुनि	ये	के	धु	ने	रू	ई	हु	ई
४—गिट	कि	री	जो	हो	न	सुं	दर	रुचि	भ	री
५—रा	ज	मुकु	टो	पर	ल	गी	मो	ती	ल	ड़ी
६—बी	ज	बो	ते	ही	न	हीं	मरु	भू	मि	में
७—हैं	बु	रा	बहु	ता	य	तों	में	क्यों	फँ	से
८—औ	र	पहुँ	चा	ते	र	हैं	ठं	ढक	स	भी

ऊपर के कोष्ठक के देखने से ज्ञात होगा कि पहले, दूसरे और चौथे पद्य के रुचि की चि और तीसरे पद्य के धुनि की नि और पाँचवें पद्य के मुकु का कु छठे पद्य के मरु का रु सातवें पद्य के बहु का हु और आठवें पद्य के पहुँ का हुँ जो कि इ और उ से सम्मिलित होने के कारण मुतहर्रिक हैं, साकिन का स्थान ग्रहण करते हैं। किन्तु इससे पद्य को ध्वनि में कोई अन्तर नहीं पड़ा। पद्य में ध्वनि ही प्रधान वस्तु है। जब वही नहीं बिगड़ी, एक मात्रा की भी कसर

नहीं पड़ीं, तब साकिन और मुतहर्रिक के फेर में पड़कर हम पद्य को सदोष नहीं कह सकते। और ऐसी अवस्था में उक्त नियम की अवास्तवता और अपूर्णता स्पष्ट है। एक बात और है, और वह यह कि यदि हम चि के स्थान पर च, नि के स्थान पर न, कु, रु, हु, हुँ के स्थान पर क, र, ह, हँ लिख देवें, तो उर्दू क़ायदे से उनको हलन्त मान कर उन्हें साकिन मान लिया जावेगा; और तब पद्य निर्दोष हो जावेगा। विचारने का स्थल है कि हिन्दी के लिए यह नियम कहाँ तक उपयोगी है। हिन्दी-पिंगल के अनुसार नि व न अथवा चि व च इत्यादि की एक ही मात्रा है। अतएव वे दोनों अवस्थाओं में समान हैं। फिर उसमें किसी परिवर्तन की क्या आवश्यकता, यह बात भी ऐसी है जो हिन्दी के लिए उक्त नियम को अनुपयुक्त बतलाती है।

उर्दू के लिए उक्त नियम को उपयुक्त भले ही कहा जावे, किन्तु उर्दू के जो मान्य शोअरा हैं उनको प्रायः उक्त नियम का पालन करते नहीं देखा जाता। आप सबसे पहिले अमीर खुसरो की "ज़े हाल मिसकीं मकुन तग़ाफुल दुराय नयना बनाय बतियाँ" यह प्रसिद्ध ग़ज़ल लीजिये। इस ग़ज़ल के छः बन्दों के अन्त में बतियाँ, रतियाँ, पतियाँ, छतियाँ है। इस बह्र के अरकान हैं 'फ़ऊल-फ़ेलुन्' चार बार। अन्तिम रुक्न फ़ेलुन् है। इसके नीचे बतियाँ, इत्यादि को रखिये तो ति मुतहर्रिक साकिन का स्थान ग्रहण करती है, '(देखिये निम्नलिखित कोष्ठक)' अतएव कुल की कुल ग़ज़ल सदोष हो जाती है, किन्तु यह मानने के लिए क्या उर्दू शोअरा तैयार होंगे! इसी ग़ज़ल के तीसरे, पाँचवे, सातवें और नवें बन्द के अन्त में क्रमशः कोतह, तसकीं, आँमह और खुसरो शब्द हैं जो

कि शुद्ध हैं। अतएव 'बतियाँ' इत्यादि को भी उन्होंने शुद्ध ही समझ कर लिखा है। उनको अशुद्ध कदापि नहीं माना है। क्योंकि उससे ध्वनि में अन्तर नहीं पड़ता।

फ़े	लुन्	फ़े	लुन्	फ़े	लुन्	फ़े	लुन्	फ़े	लुन्
मस	मस	मस	मस	मस	मस	मस	मस	मस	मस
बति	याँ	को	तह्	तस	कीं	आँ	मह्	खुस	रो

निम्नलिखित पद्यों को भी देखिये—

१—घड़ियाल थे रोदबार में सुस्त।
२—बटिया है न है सड़क नमूदार। —*हाली*
३—रहिये अब ऐसी जगह चलकर जहाँ कोई न हो।
४—पड़िये गर बीमार तो कोई न हो तीमारदार।
५—तोप खसकी तो प्रोफ़ेसर पहुँचे। —*अकबर*
६—दश्त से क़ब्र वतन को पहुँचूँगा।
७—कि छठा अब तो साल आ पहुँचा। —*नासिख़*

पहले दोनों पद्य के अरकान हैं "मफ़ऊल्, मफ़ाइलुन्, फ़ऊलुन्" अतएव पहला रुक्न 'मफ़ऊल्' है जिसका दूसरा अक्षर साकिन है, परन्तु उक्त दोनों पद्यों का दूसरा अक्षर इकार युक्त होने के कारण मुतहर्रिक है, साकिन नहीं। तीसरे, चौथे पद्य के अरकान हैं— "फ़ाइलातुन्, फ़ाइलातुन्, फ़ाइलातुन्, फ़ाइलुन्" पहिला रुक्न फ़ाइलातुन् है, फ़ा का व्यंजनांश मुतहर्रिक और दीर्घांश नियमानुसार साकिन है, अतएव रहिये के हि और पड़िये के ड़ि को साकिन होना चाहिये। पर दोनों मुतहर्रिक हैं। पाँचवें और सातवें पद्यों के अरकान हैं-"फ़ाइलातुन्, मफ़ाइलुन्, फ़ेलुन्", अतएव उनका अन्तिम रुक्न 'फ़ेलुन्' है। फ़े का द्वितीयांश साकिन है, पर पाँचवें और

सातवें पद्य में उसके स्थानपर पहुँचे और पहुँचा का 'हुँ' है जो कि मुतहर्रिक हैं। छठे पद्य के अरकान वे ही हैं जो पाँचवें और सातवें के हैं। इस लिए 'मफ़ाइलुन्' के 'लुन्' का स्थान वही है जो पद्य के पहुँ का स्थान है, न् साकिन है, अतएव हुँ को भी साकिन होना चाहिये किन्तु वह मुतहर्रिक है। अतः सब पद्य सदोष हैं, जो कि बड़े-बड़े मान्य शायरों के हैं। किन्तु ध्वनि शुद्ध होने के कारण उन लोगों ने इधर दृष्टि नहीं दी है, और न देना चाहिये था, क्योंकि ध्वनि ही प्रधान वस्तु है। जब उर्दू के शोअरा ही उक्त नियम की उपेक्षा करते आये हैं तो हिन्दी में वह नियम कैसे ग्राह्य हो सकता है। मुख्य कर उस अवस्था में जब कि उसके नियम इस विषय में पूर्ण हैं। वास्तव बात यह है कि किसी शास्त्र का एक पारंगत विद्वान् नियम का पालक हो कर भी उसका परिष्कारक होता है और स्थानविशेष तथा उपयुक्त स्थलों पर समुचित स्वतंत्रता ग्रहण करने में भी संकुचित नहीं होता, चिरअभ्यस्त और अभ्यासपरायण में अन्तर होता है। प्रथम कभी-कभी स्वतंत्रता ग्रहण कर उन्मुक्त पथ का पथिक बनता है और एक आदर्श उपस्थित करता है। किन्तु द्वितीय का नियमित पथ पर सतर्क होकर चलना ही उसकी सिद्धि-प्राप्ति का साधन होता है। अनेक सहृदय ध्वनि के सहारे ही ऐसी सुन्दर और निर्दोष कविता कर जाते हैं कि जैसी पिंगल-पथ में फूँक-फूँक कर पाँव रखनेवाला भी नहीं कर सकता, एक ऐसे ही सहृदय का यह कथन है—

"शेर मी गोयम बेहज़ आबेहयात।
मन न दानम फ़ाइलातुन् फ़ाइलात॥"

हाली, अकबर और नासिख़ के उक्त पद्य कुछ ऐसे ही भावों के परिणाम हैं।

जिस नियम के विषय में मैं इस समय लिख रहा हूँ उसकी उपयोगिता पर मैं एक प्रकार से और प्रकाश डालूँगा, मेरे इस ग्रंथ में निम्नलिखित पद्य भी हैं—

१—सिर बने चालाक परले सिरे के।

× × ×

२—साथ तो कनफूल का ही रहेगा।

× × ×

३—हम कहेंगे और मुँह पर कहेंगे।

इन पद्यों के अरकान हैं–"फ़ाइलातुन्-फ़ाइलातुन् फ़ाइलुन्" अंतिम

S । S

फ़ाइलुन् का रूप है मस म मस। किन्तु पद्यों के अन्तिमांश

। S S

'सिरे के', 'रहेगा' और 'कहेंगे' का रूप है, म मस मस, दूसरे स्थान पर साकिन के बजाय मुतहर्रिक और तीसरे स्थान पर मुतहर्रिक के बजाय साकिन है। इसलिए पद्य सदोष कहे जा सकते हैं, किन्तु मैं उनको सदोष नहीं मानता। उन्नीस मात्रा के छन्दों में उनका रूप क्रमशः ५५८ वाँ, ४२६ वाँ, ६३५ वाँ है। उनकी ध्वनि भी नहीं बिगड़ती। फिर उन्हें सदोष मानने का कोई कारण नहीं। यह मैं स्वीकार करूँगा कि कभी-कभी गुरु के स्थान पर लघु और लघु के स्थान पर गुरु लिख जाने पर छन्दोगति में कुछ अन्तर पड़ जाता है। जैसा कि इनमें हुआ है, किन्तु अनेक अवस्थाओं में आचार्यों द्वारा यह स्वीकार नहीं किया गया है, क्योंकि अन्तर बहुत सूक्ष्म होता है, और उसका प्रभाव छन्दोगति पर अति सामान्य पड़ता है। मैं इसके कुछ प्रमाण दूँगा। निम्नलिखित पद्यों को देखिये—

१—उलटा जपत <u>कोल</u> ते भये ऋषिराउ ॥
× × ×
२—नाम भरोस *<u>नाम</u>* बल नाम सनेहु ॥ } *गो० तुलसीदास*

कोल और नाम के स्थान पर '<u>लको</u>, व <u>मना</u> पढ़कर देखिये, उस समय रहस्य समझ में आ जायगा; उर्दू में इस प्रकार के प्रयोग बहुत मिलते हैं।

१—'*<u>वही</u>* भी काम नहीं करती नसीहत कैसी।'
× × ×
२—'*<u>कहीं</u>* मज़लूम की फ़रियाद रसी काम उसका।'
× × ×
३—'*<u>वही</u>* इक शै है कि है अदल कहीं नाम उसका।'
× × ×
४—'*<u>कभी</u>* ठहराते हैं गर्दिश को जमाने की बुरा।'
× × ×
५—'*<u>कभी</u>* सरकार को कहते हैं कि है बे परवा।'
× × ×
६—'*<u>हुई</u>* तकलीफ़ से या चैन से औक़ात बसर।'
× × ×
७—'*<u>सगे</u>* भाई से वह छिपाता है।'—*हाली*
× × ×
८—'*<u>कही</u>* तारीख़ दुखतरे मोमिन।'—*मोमिन*

ऊपर के छः पद्यों के अरकान हैं, "फ़ाइलातुन् फ़इलातुन्, फ़इलातुन् फेलुन्" उनमें से आदिम रुक्न है 'फ़ाइलातुन्' जिसके आदिम अक्षर हैं <u>फ़ाइ</u> अर्थात् मस म (ऽ ।) किन्तु (वही, कहीं, कभी, हुई, हैं, म मस = । ऽ) प्रयोजन यह कि छओं पद्यों में दीर्घ के बाद ह्रस्व चाहिये। परन्तु सबों में ह्रस्व के बाद दीर्घ है। सातवें आठवें पद्य के अरकान हैं—

"फ़ाइलातुन् मफ़ाइलुन् फ़ेलुन्"

अतएव उक्त नियमानुसार इन पद्यों के आदि में भी पहले दीर्घ तब ह्रस्व होना चाहिये; किन्तु ऐसा नहीं हैं। यदि कहा जावे कि 'फाइलातुन्', के स्थान पर 'फ़इलातुन्' भी हो सकता है, और ऐसी अवस्था में दीर्घ वर्णों को ह्रस्व अथवा गुरु को लघु पढ़ने से ही काम चल जावेगा, और पद्य में वह दोष न रह जावेगा, जो दिखलाया गया है। तो मैं यह कहूँगा कि ऐसा कह कर साधारण दोष छिपाने के लिए महान दोष का दोषी होना होगा, क्योंकि S (ये) बिलकुल गिर जावेगी, मैं इस कथन को युक्तिसङ्गत नहीं मान सकता। वास्तव बात यह है कि नियमों की दृष्टि से वे अशुद्ध हैं; किन्तु उर्दू के उस्तादों के द्वारा ही वे लिखे गये हैं। इसका कारण क्या है ? कहा जा सकता है कि भ्रम प्रमाद है। परन्तु क्या सभी पद्यों में भ्रम प्रमाद हुआ है ? मौलाना हाली का जो 'काव्य संग्रह' इण्डियन प्रेस प्रयाग में छपा है उसमें बहुत से पद्य ऐसे हैं। इसलिए मैं भ्रम प्रमाद की बात नहीं मान सकता। वास्तव बात यह है कि ध्वनि पर दृष्टि रखकर ये पद्य लिखे गये हैं। नियम के प्रतिकूल वे अवश्य हैं, किन्तु ध्वनि ने नियम पर दृष्टि डालने का अवसर नहीं दिया। अन्तर इतना सूक्ष्म है जो न होने के बराबर है। अतएव उसपर दृष्टि न जाना स्वाभाविक था। हिन्दी-पिंगल इसी स्वाभाविकता का प्रचारक है। वह नियम में बाँधता है। किन्तु बहुत कुछ स्वतंत्रता भी देता है। जिन पद्यों को मैंने ऊपर लिखा है; जिनका अन्तिम रूप ।SS यह है,वह हिन्दी पिंगल के अनुसार ध्वनिमूलक हैं। अतएव मैंने उनको ग्रहण कर लिया है। साथ ही मैंने यह भी प्रतिपादन कर दिया है कि इस प्रकार ध्वनिमूलक पद्यों के लिखने में उर्दू के प्रसिद्ध पद्यकारों ने भी साधारण नियमों की उपेक्षा की है।

यह बात भी यही बतलाती है कि ध्वनि हम चाहे जहाँ से लें, किन्तु उसपर शासन हिन्दी-पिंगल का ही रहना चाहिए, मुख्यतः उस अवस्था में जब कि वे हमारे ही छन्दों के रूपान्तर हों।

छन्दोगति के अनुसार शब्दोच्चारण

इसी स्थल पर मैं एक बात और प्रकट कर देना चाहता हूँ। वह यह कि कभी-कभी पद्य में ऐसे शब्द आ जाते हैं, जिनको छन्दोगति के अनुसार पढ़ना पड़ता है। प्रयोजन यह कि जिस प्रकार उनका उच्चारण होता है, उस प्रकार उनका उच्चारण न कर छन्दोगति की रक्षा के लिए उन्हें सँभाल कर पढ़ना पड़ता है। वाल्मीकिरामायण के निम्नलिखित श्लोकों को देखिये—

'तावद्रामायणकथा लोकेषु प्रचरिष्यति।'

× × ×

'इक्ष्वाकूणामतिरथो यज्वाधर्मपरो वशी।'

× × ×

'पितृशुश्रूषणरता धनुर्वेदे च निष्ठिताः।'

× × ×

'पुरे कोशे जनपदे बान्धवेषु सुहृत्सु च।'

× × ×

'इयं सीता मम सुता सहधर्मचरी तव।'

× × ×

'सा तु ताराधिपमुखी रावणेन निरीक्ष्यताम्।'

चिह्नित वाक्यों को यदि निम्नलिखित प्रकार से पढ़ें तो छन्दोगति की पूरी रक्षा होगी—

रामाय-णकथा, कूणाम-तिरथो, शुश्रू ष-णरता, कोशेज-नपदे, सीताम-मसुता, ताराधि-पमुखी।

किन्तु अर्थ कुछ न होगा। अतएव इनको इस प्रकार पढ़ना चाहिए कि उच्चारण शुद्ध हो, परन्तु छन्दोगति भी ठीक रहे। इस प्रकार का प्रयोग भाषा में भी मिलता है। यथा—

'कुंकुम तिलक भाल स्रुति कुंडल लोल।'
'सिय तुश्र अंग रंग मिलि अधिक उदोत॥' }—गो० तुलसीदास

सफरिन भरे रहीम सर बक बालकनहिं योग।—रहीम

चिह्नित वाक्यों को निम्नलिखित रीति से पढ़ा जावे तो छन्दोगति की पूरी रक्षा होगी, परन्तु अर्थ में व्याघात होगा। अतएव सँभाल के ही पढ़ना पड़ेगा।

"कंकुमतिल–कभाल, सियतु–अअंग, बालक नहिं"

कुछ उर्दू के भी उदाहरण लीजिये—

१—'थीं लोमड़ियाँ ज़बाँ निकाले।'

२—'समझो आँखों की पुतलियाँ सबको,'

३—'तो वह महकमा जिसका क़ाज़ी खुदा है।'

लोमड़ियाँ को लोम-ड़ियाँ, पुतलियाँ को पुत-लियाँ और महकमा को मह-कमा पढ़ने ही से वह शुद्ध रहेगी, नहीं तो सदोष हो जावेगी; किन्तु यह शुद्ध उच्चारण उन शब्दों का नहीं है तथापि वे इसी रूप में गृहीत हैं। पिंगल के नियमों का पालन करके भी कभी-कभी कवि ऐसे ही झगड़ों में पड़ता है, और विवश होकर आवश्यकतावश ऐसे शब्दों का प्रयोग करने के लिए बाध्य होता है। यह प्रणाली चिरप्रचलित है। और प्रायः सब भाषाओं में गृहीत है। इस प्रकार के प्रयोग से महाकवि भी नहीं बच पाये हैं। छिद्रदर्शीजन प्रायः इस प्रकार के प्रयोगों को उठाकर दिल के फफोले फोड़ते हैं और

मनमानी जली-कटी सुनाते हैं; साथ ही यह भी कहते हैं कि इस प्रकार का शब्दविन्यास कवि की असमर्थता प्रकट करता है। वे नहीं सोचते कि इस प्रकार का आचरण किसी विशेष कारण ही से कोई कवि अथवा महाकवि करता है। चाहिए कि ऐसे प्रयोगों पर गहरी दृष्टि डाली जावे और तह की मिट्टी लाई जावे। उस समय यह ज्ञात हो जावेगा कि सहस्रों पद्यों में समर्थता प्रकट करके कोई कवि यथाशक्य असमर्थता प्रकट करने का इच्छुक न होगा। भ्रम प्रसाद की बात दूसरी है।

इस प्रकार के कतिपय पद्य इस ग्रन्थ में भी हैं, यथा—

१—'अँतड़ियाँ क्यों निकाल लेंवें हम।'
× × ×
२—'कब भला मार सेंत-मेंत पड़ी।'
× × ×
३—'किस तरह ठीक ठीक वह होगा।'
× × ×
४—'खुरचते देखकर उसे खुरचन।'
× × ×

अँतड़ियाँ को अँत-ड़ियाँ, सेंतमेंत पड़ी को सेंतमें—तपड़ी, ठीक ठीक वह को ठीकठी-कवह खुरचते को खुर-चते पढ़ने से ही छन्दोगति शुद्ध रहेगी; अतएव ऐसे पद्यों को सँभाल कर इस भाँति पढ़ना चाहिए कि शब्द शुद्ध पढ़े भी जावें और छन्दोगति में भी अन्तर न पड़े। ऐसे दश पाँच पद्य ग्रन्थ से निकाल भी दिये जा सकते थे, परन्तु इस विषय में भी कुछ कथन की आवश्यकता थी इस चिर-प्रचलित प्रणाली पर प्रकाश डालना प्रयोजनीय था। अतएव ग्रन्थ में उनको रहने दिया गया। किन कारणों से ऐसे प्रयोग पद्यों में हुए हैं, उनको पाठक पूरा पद्य पढ़कर ही जान सकते

हैं। उनके विषय में कुछ लिखना बाहुल्यमात्र है। मुहाविरे की रक्षा करने और पद्य को अलंकृत करने के लिए ही ऐसा किया गया है। यद्यपि अन्तर अत्यन्त सूक्ष्म है, और उससे ध्वनि में नाममात्र की ही कसर है, किन्तु वास्तव बात प्रकट करना, उपयोगी समझ कर इस विषय में इतना लिखा गया।

यहाँ कहा जा सकता है कि च्युति, च्युति है, कोई कितना ही बड़ा क्यों न हो उसके फिसलने की अनुगामिता नहीं की जा सकती। यह सच है। किन्तु यह च्युति अथवा फिसलन नहीं है। यह भावसौंदर्य अथवा किसी अभिप्रेत विषय की अभिव्यक्ति के लिए समुचित स्वतंत्रता-ग्रहण अथवा नियमों से जकड़ी हुई छन्दोगति में किसी मनोराग के यथातथ्य प्रकट करने का सहज साधन है। तथापि यह अवश्य ग्रहणीय पथ नहीं है। अनिच्छा होने पर यह प्रणाली त्याग दी जा सकती है।

हिन्दी शब्दों पर उर्दू-छन्दों-नियम का प्रभाव

एक विषय और कहने को रह गया, वह यह कि उर्दू के वाक्य-विन्यास पर साकिन-मुतहर्रिक का क्या प्रभाव पड़ा है। प्रयोजन यह कि साकिन-मुतहर्रिक के शासन में रहकर उर्दू रचनाओं में अन्य भाषा विशेषतः हिन्दी के शब्दों की क्या दशा हुई है। इस बात की विवेचना के लिए निम्नलिखित विषयों की आलोचना आवश्यक है—

(१) दीर्घ वर्णों का ह्रस्व अथवा गुरु का लघु उच्चारण।

(२) अनेक पूरे लिखे सर्वनामों, कारकों और उपसर्गों का अधूरा उच्चारण और कभी उनका अपूर्ण व्यवहार।

(३) एक ही शब्द का विभिन्न प्रयोग।

(४) कुछ अन्यान्य बातें।

अब पहिले विषय को लीजिये। हिन्दी में भी कभी-कभी दीर्घ वर्णों का ह्रस्व उच्चारण होता है। कविप्रिया में आचार्य केशव की यह आज्ञा है—

> "दीरघ लघु करिके पढ़ै सुखही मुख जेहि ठौर।
> तेऊ लघु कर लेखिये केशव कवि सिरमौर॥"

किन्तु ऐसा अवसर बहुत कम आता है। वर्णवृत्त में तो ऐसा प्रयोग होता ही नहीं, अधिकांश मात्रिक छन्द भी इस दोष से मुक्त होते हैं। केवल सवैयाओं में इसका विशेष व्यवहार देखा जाता है। कोई-कोई सवैया में भी ऐसा प्रयोग करना पसन्द नहीं करते। बात यह है कि हिन्दी में कई शब्द ऐसे हैं कि जिनमें दीर्घ वर्णों को ह्रस्व की भाँति बोला ही जाता है। जैसे कोहार, लोहार, जेहि, तेहि इत्यादि। ऐसे लघु बोले जानेवाले दीर्घ चिह्नों के लिए कोई विशेष चिह्न हिन्दी में नहीं है। अतएव उनका उच्चारण जो नहीं जानते वे प्रायः भटक जाते हैं। इसीलिए डाक्टर जी० ए० ग्रियर्सन ने एक वक्रचिह्न निर्माण किया था, वे कोहार के को और तेहि के ते को इस प्रकार लिखते थे—'को॰, ते॰'। किन्तु उसका प्रचार नहीं हुआ। प्रचार भले ही न हो, पर कोहार, लोहार जिनकी भाषा के शब्द हैं, वे उनका उच्चारण भली-भाँति जानते हैं।

अतएव ऐसे शब्दों के उच्चारण में तो दीर्घ को लघु नहीं करना पड़ता क्योंकि वे स्वतः उसी रूप में उच्चरित होते हैं। परन्तु कभी कभी ऐसे दीर्घ वर्ण भी पद्यों में आते हैं जो यत्न करके लघु पढ़े जाते हैं। गोस्वामीजी के इस पद्य में कि "तेहि अवसर सीता तहँ आई," तेहि के 'ते' को लघु नहीं करना पड़ा है, वरन् वही उसका यथार्थ उच्चारण है। यही बात नीचे के पद्यों में भी है। इन पद्यों के साहेब और कोइलिया के हे और को को ह्रस्व ही बोला जाता है—

"साहेब कहूँ न राम से तोसे न वसीले"—तुलसी

× × ×

"भोरहिं बोलि कोइलिया बढ़वत ताप"—रहीम

परन्तु निम्नलिखित पद्यों में आप देखें, दीर्घ को नियमानुसार लघु बनाया गया है। जो वर्ण चिह्नित हैं उन्हें लघु पढ़ना होगा।

'हाँक सुनत दसकंध के भये बंधन ढीले।'—तुलसीदास

× × ×

'हरीचन्द ऐसे हि निबहैगी होनी होय सो होय।'
'नई प्रीति नए चाहनवारे तुमहूँ नये सुजान।' } —भारतेन्दु

आप देखें उक्त पद्यों में कुछ वर्णों को दीर्घ से लघु बनाया गया है, किन्तु कितनी सुविधा के साथ। ध्वनि के प्रवाह में उसका ज्ञान तक नहीं होता। हिन्दी में यह प्रयोग अत्यन्त परिमित है, किन्तु उर्दू में इस प्रकार का प्रयोग बहुतायत से होता है। जहाँ हिन्दी में १०० में कठिनता से दो एक पद्य ऐसे मिलेंगे वहाँ उर्दू में प्रतिशत ९५ पद्य ऐसे पाये जायँगे। जहाँ हिन्दी के वर्णवृत्त में इस प्रकार के प्रयोग का लेश भी नहीं है, वहाँ उर्दू की कोई बह्र ऐसी नहीं जो इस दोष से मुक्त हो। मिर्ज़ा ग़ालिब के निम्नलिखित पद्य को देखिये-

"कोई मेरे दिल से पूछे तेरे तीर नीम कश को।
यह खलिश कहाँ से होती जो जिगर के पार होता॥"

इसका शुद्ध रूप है—

"कइ मेर दिल स पूछे तर तीर नीम कश को।
य खलिश कहाँ स होती ज जिगर क पार होता॥"

इस दो बन्द के पद्य में आठ स्थान पर परिवर्तन हुआ है। शब्द का रूप कितना विकृत हो गया है, वे किस बेदर्दी से तोड़े-मरोड़े गये हैं, इसको आप लोग स्वयं समझ सकते हैं।

यही दशा अधिकांश उर्दू-पद्यों की होती है। और उदाहरण देना अनावश्यक है। हिन्दी और उर्दू का प्रत्येक अनुभवी विद्वान् इस बात को जानता है। आचार्य केशव कहते हैं कि जिस दीर्घ को मुख सुखपूर्वक अर्थात् आसानी से ह्रस्व कर लेता है उसको भी लघु मानना चाहिए। ऊपर के शेर में इस सिद्धान्त की सार्थकता कहाँ तक हुई है इसको सहृदयगण स्वयं समझ सकते हैं।

अब दूसरे विषय को लीजिये। निम्नलिखित पद्यों को देखिये—

१—'यह मसायले तसव्वुफ़ यह तेरा बयान ग़ालिब।'
२—'तुझे हम वली समझते जो न बादः ख़्वार होता॥'—*ग़ालिब*
३—'कीजिये तसनीफ़ और तालीफ़ में सइये बलीग़।'
४—'इसमें एक अपना पसीना और लहू कर दीजिये।'
५—'और न हो ग़र शेरो इंशा की लियाकत आप में।'
६—'शाइरे और मुंशियों पर नुक्ताचीनी कीजिये।'
७—'जिसको हैवाँ पर दे सकें तरजीह।'
८—'जब पड़े उनपर गर्दिशे अफ़लाक।'—*हाली*
९—'इस सादगी पर कौन न मर जाय ऐ खुदा।'
१०—'उसीको देख कर जीते हैं जिस क़ाफिर पर दम निकले।'—*ग़ालिब*
११—'जल्लाद को लेकिन वह कहे जाँय कि हाँ और।'—*ग़ालिब*
१२—'वह थकते हैं और चैन पाती है दुनिया।'—*हाली*

पहिले पद्य में दो यह लिखे हैं परन्तु पढ़ने में दोनों य आता है। दूसरे पद्य का जो ज पढ़ा जाता है। तीसरे, चौथे, पाँचवें, छठे पद्य में जितने और आये हैं वे सब केवल औ पढ़े जाते हैं। सातवें, आठवें

नवें, दसवें, पद्य में पर लिखा है किन्तु प पढ़ा जाता है। ग्यारहवें और बारहवें पद्य का वह केवल व पढ़ने में आता है। इस प्रकार का प्रयोग उर्दू पद्यों में बहुत मिलेगा। अब यह, वह और पर के स्थान पर य, व, प भी लिखने लगे हैं, किन्तु जो के स्थान पर ज एवं और के स्थान पर केवल औ लिखना अब तक प्रारंभ नहीं हुआ है। दोनों अवस्थाओं में सर्वनामों और अव्ययों पर जो व्यावहारिक अत्याचार होता है, वह स्पष्ट है। गद्य में कभी पद्य के अनुसार न तो अव्यय और सर्वनाम पढ़े जाते हैं, और न उनका संक्षिप्त और अर्द्ध रूप ही लिखा जाता है, परन्तु पद्य में दोनों प्रकार के अशुद्ध प्रयोग गृहीत हो गये हैं। यह नहीं है कि कथित सर्वनामों और अव्ययों का शुद्ध व्यवहार पद्यों में नहीं होता; होता है, परन्तु अल्प। नीचे के पद्यों को देखिये इनमें उक्त सर्वनामों और अव्ययों का शुद्ध प्रयोग हुआ है—

१—'कमाते हैं वह और खाती है दुनिया।'

× × ×

२—'दौलत की हविस अस्ल गदाई है यह।'

× × ×

३—'सामान की हिर्स बेनवाई है यह।'

× × ×

४—'वीराँ है बाग़ तिस पर फूली नहीं समाती।'

× × ×

५—'जो काम है उनका यही इनआम है गोया।'—*हाली*

कहा जाता है कि इस प्रकार शब्दों की काट-छाँट अथवा उनका अपूर्ण उच्चारण नियमानुकूल है, और इनको मकतूबी कहते

हैं। परन्तु हिन्दी में इस प्रकार का प्रयोग सदोष माना जाता है। बहुत से नियम आवश्यकतानुसार बना लिये जाते हैं। किन्तु वे निर्दोष नहीं होते, उनका उद्देश्य-निर्वाह-मात्र होता है। संस्कृत में भी इस प्रकार का एक नियम है, *"अपि माषं मषं कुर्यात् छन्दोभंगं न कारयेत्।"* किन्तु दोनों की व्यापकता और उद्देश में बड़ा अन्तर है।

अब तीसरे विषय को लीजिये। समस्त शब्दों का एक रूप और यथार्थ उच्चारण होता है। उसका उसी रूप में उच्चारण और प्रयोग उचित है। अन्यथा चरण दूषित समझा जाता है। उर्दू में इसकी पर्वा कम की जाती है। उर्दू का एक शब्द है—उम्मेद। इसको इसी रूप में लिखा जाना चाहिये, किन्तु कभी इसे 'उम्मेद' और कभी 'उमेद' लिखते हैं। निम्नलिखित पद्यों को देखिये—

१—'मुनहसिर मरने प हो जिसकी उमेद।'

× × ×

२—'नाउमेदी उसकी देखा चाहिये।'

× × ×

३—'देखे ऐ उमेद, कीजो हम से न तू किनारा।'

× × ×

४—'नहीं उम्मेद कि गुज़रे किसी ख़ातिर प गिराँ।'

× × ×

५—'वह उम्मेद क्या जिसकी हो इन्तिहा।'—*हाली*

'तरह' एक शब्द है, उसको कभी 'तरह' लिखते हैं कभी 'तर्ह'। देखिये—

१—'जो उनमें तेज़ होश हैं सौ-सौ तरह से वह ।'

× × ×

२—'कि सदा क़ैद रहें मुर्ग़ खुश इलहाँ की तरह ।'

× × ×

३—'जा के बिक जाँय कहीं यूसुफ़े कनआँ की तरह ।'

× × ×

४—'हमारी तर्ह से होना है एक रोज़ फ़क़ीर ।'

× × ×

५—'नफ़स जिस तर्ह बने लायके ख़िदमत हो जाय ।'

× × ×

६—'की है मर्दों ने इसी तर्ह से दुनियाँ में गुज़र ।' —*हाली*

शुद्ध शब्द 'मिसी' है, फ़ारसी का शेर है—

'मिसी मालीदा बर लब रंग पानस्त'

मगर इसी शब्द को कभी 'मिसी' और कभी 'मिस्सी' लिखते हैं, देखिये—

'मिसी मालीदा लब पै रंग पाँ है ।'

× × ×

'तमाशा है तहे आतश धुआँ है ।'

'कबूद रंग है मिस्सी का मेरे होठ हैं लाल ।'—*नासिख़*

एक ही पद्य में इन्सान का दो प्रयोग देखिये—

'रब्त इन्सान से करता जो वो इन्साँ होता ।'

'जान' के प्रयोग को देखिये । मिर्ज़ा ग़ालिब लिखते हैं—

'जाँ क्यों निकलने लगती है तन से दमे सेमाअ।'

× × ×

'तेरे वादे पर जिये हम तो य जान छूट जाना।'

× × ×

'जान भी दी हुई उसीकी थी।'—ग़ालिब

ज़मीन को कभी ज़मीन और कभी ज़मीं, आसमान को कभी, आसमान और कभी आसमाँ, जहान को कभी जहाँ और कभी जहान लिखा जाता है। जहाँ सरफ़ नहो के नियमानुसार ऐसा प्रयोग होता है, उसके विषय में मेरा कुछ वक्तव्य नहीं है। किन्तु जहाँ बह्रों के बखेड़े से ऐसा प्रयोग होता है वही दूषित है। जिस स्थान पर हम गद्य में आसमान, जान, इत्यादि पढ़ते हैं वैसे ही स्थान पर पद्य में आसमाँ और जाँ इत्यादि पढ़ा जाना समुचित नहीं हो सकता; और उसीके विषय में मेरा तर्क है। इस प्रकार की जटिलता का प्रयोग बहुत नियम की जटिलता का बोधक है। मैंने यही दिखलाने के लिए इन कतिपय पंक्तियों को लिखा है। यद्यपि उदाहरण में मैंने थोड़े शब्द दिये हैं, परन्तु ऐसे बहुत से शब्द बतलाये जा सकते हैं।

अब चौथे विषय को लीजिये। अन्य बातें बहुतसी लिखी जा सकती हैं। परन्तु मैं केवल एक ही बात की चर्चा यहाँ करूँगा। क्योंकि स्थान का संकोच है; लेख बहुत बढ़ गया। उर्दू में एक मात्रा की वृद्धि प्रायः अन्त में कर दी जाती है। परन्तु बह्र वही बनी रहती है। अर्थात् अन्त की एक मात्रा की वृद्धि से बह्र में कोई अन्तर नहीं होता। प्रायः किसी शेर का एक मिसरा तो बह्र के अनुसार होता है, और दूसरे मिसरे में एक मात्रा की वृद्धि हो जाती है, तथापि उसमें कोई परिवर्तन नहीं समझा जाता। यथा—

"हुए बाल गफ़लत में सर के सफ़ेद।
उठो मीर जागो सहर हो गई॥"

पहिले मिसरे में एक मात्रा की वृद्धि नहीं मानी गई, ऐसे पद्य बहुत से दिखलाये जा सकते हैं। दो पद्य और देखिये—

१—'काँटा है हरएक जिगर में अटका तेरा।
हलक़ा है हरेक गोश में लटका तेरा॥
माना नहीं जिसने तुझको जाना है ज़रूर।
भटके हुए दिल में भी है खटका तेरा॥'

× × ×

२—'मुमकिन य नहीं कि हो बशर ऐब से दूर।
पर ऐब से बचिये ताबमक़दूर ज़रूर॥
ऐब अपने घटाओ प ख़बरदार रहो।
घटने से कहीं उनके न बढ़ जाय ग़रूर॥'

पहिले पद्य में तीन चरणों की मात्रा एक है। केवल तीसरे चरण में एक मात्रा की वृद्धि हुई है। दूसरे पद्य में तीसरा चरण जितने मात्रा का है, उससे शेष तीन चरणों में एक-एक मात्रा अधिक है। कहा जाता है कि संस्कृत श्लोकों में जैसे अन्तिम हलन्त वर्ण की गणना नहीं होती उसी प्रकार उर्दू-बह्रों की अन्तिम एक मात्रा की वृद्धि, वृद्धि नहीं कही जाती। संस्कृत के वृत्त वर्णिक होते हैं, उनमें हलन्त वर्ण अग्राह्य हो सकता है। किन्तु मात्रिक छन्दों में इस वृद्धि का त्याग नहीं हो सकता। हिन्दी में एक मात्रा की वृद्धि से अनेक छन्द बनते हैं और उनके अनन्त रूप होते हैं। ताटंक छन्द में एक मात्रा की वृद्धि से वीर बनता है। और वीर में एक मात्रा बढ़ाने से त्रिभंगी हो जाता है। ताटंक का कुल

रूप होता है १३४६२६९; वीर का २६७८३०९ और त्रिभंगी का ३५२४५७८। आप देखें एक मात्रा की वृद्धि से लाखों की वृद्धि होती है। अतएव एक मात्रा की वृद्धि कुछ प्रभाव नहीं रखती, यह बात नहीं कही जा सकती। यह बात भी ऐसी है जो हिन्दी के लिये उर्दू बह्रों के नियमों की अनुपयोगिता सिद्ध करती है।

शेष वक्तव्य

विचारणीय विषय यह था कि उर्दू बह्रों के नियम यदि पिंगल के छन्दोनियम से सरल सुबोध और उपयोगी होवें तो वे क्यों न ग्रहण किये जावें! इस विषय की अब तक जो मीमांसा की गयी है, उससे यह स्पष्ट हो गया कि छन्दोनियम उर्दू-बह्रों के नियम से कहीं सरल और सुबोध अथच उपयोगी हैं। जितनी ही उर्दू बह्र के नियमों में जटिलता है उतनी ही छन्दोनियमों में सुबोधता और सरलता है। यदि बह्रों के नियम बीहड़ों के पेचीले मार्ग हैं तो छन्दोनियम राजपथ हैं। मैंने उर्दू बह्र के नियमों की जाँच पिंगल-नियमों के अनुसार की है, और दोनों का मिलान भी किया है, उनका गुण-दोष भी दिखलाया है। अतएव तर्क का स्थान शेष नहीं है। तथापि यह कहा जा सकता है कि उर्दू-बह्रों को उर्दू नियमों की कसौटी पर क़सना चाहिये; और उसीकी दृष्टि से उसके गुण दोषों का विवेचन होना चाहिये। पद्यपरीक्षाकार पृष्ठ १८ में इसी विषय पर यह लिखते हैं—

"तक़तीअ करते समय आवश्यकता हो तो गुरुवर्ण को लघु मान लेते हैं। हिन्दी में भी यह छूट जारी है, परन्तु अन्तर यह है कि हिन्दीवाले— किसी-किसी छन्द में इस छूट से लाभ उठाते हैं; वर्णवृत्तों में कदापि नहीं, और उर्दूवाले हर बह्र में। भी का भि, किसी का किसि, से का स, थे का थ, मेरी

को मिरी, मेरि, मिरि, इसी तरह तेरी को भी। मेरा को मेर, मिरा, मिर इसी तरह तेरा को भी। यह वे को व, वह, वो को व मानने में हानि नहीं। यह घटाना-बढ़ाना अन्धाधुन्ध नहीं, नियत नियमानुसार है। सातों विभक्तियों के प्रत्यय गुरु से लघु होते रहते हैं।"

जिन नियमों के आधार से उर्दू-शब्द-संसार में ऐसा विप्लव उपस्थित होता है यदि वे नियम हैं तो अनियम किसे कहेंगे? उर्दू भाषा के नियामक भले ही इस प्रकार के परिवर्तन को नियत नियमानुसार समझें, परन्तु हिन्दी भाषा के आचार्यों ने उन्हें दोष माना है। यह मैं स्वीकार करूँगा कि हिन्दीभाषा में भी इस प्रकार के कुछ थोड़े से परिवर्तन होते हैं, परन्तु वे परिमित हैं, उर्दू के समान अपरिमित नहीं हैं। अँगरेजी भाषा का 'नाइट' (Night) शब्द अँगरेजी नियमानुसार शुद्ध है किन्तु भाषा-विज्ञानविद् अवश्य उसे देखकर कहेगा कि उक्त शब्द में जी (g) एच् (h) की आवश्यकता नहीं, क्योंकि उनका उच्चारण नहीं होता। लिपि की महत्ता यही है कि जो लिखा जावे वह पढ़ा जावे। सुवाच्य, सुबोध और वैज्ञानिक लिपि वही है, जिनके अक्षरों का विन्यास उच्चारण अनुकूल हो, अन्यथा वह लिपि भ्रामक और दुर्बोध होगी, और उच्चारण की जटिलता को बढ़ा देगी। यही दशा अँगरेजी में लिखे गये 'नाइट' शब्द की है, तथापि वह शुद्ध है, और नियमित है। उर्दू में लिखे गये کور (कोर) शब्द को देखिये, इसका 'कूर', 'कोर', 'कवर', और 'कौर' पढ़ा जा सकता है; लिखा गया एक अर्थ में एक उच्चारण के लिये, किन्तु वह है अनेक रूपरूपाय, तथापि वह शुद्ध और नियमित है। ऐसी ही अवस्था उर्दू-बह्र के नियमों की है, वे उर्दू 'तक़तीअ' और प्रणाली से भले ही शुद्ध हों, किन्तु हिन्दी नियमों की कसौटी पर कसने के बाद उनका वास्तव रूप प्रकट हो जाता है। दो समानोद्देशवाली

वस्तुओं का मिलान करने से ही, उनका गुण दोष, उनकी महत्ता और विशेषता विदित होती है। जिस प्रकार हिन्दी भाषा के वर्ण सहज, सुबोध और सुवाच्य हैं; जैसे उसका शब्द-विन्यास सुनियमित और अजटिल है, वैसे ही उसके छन्दोनियम भी हैं; इसके प्रतिकूल उर्दू की दशा है। जैसे उसके हुरूफ दुर्बोध और जटिल हैं, जैसे ही उसके शब्द-विन्यास और उच्चारण कष्टसाध्य हैं। वैसे ही उसके बह्रों के नियम दुस्तर, जटिल और नियमित होकर भी अनियमित हैं। अतएव हिन्दी संसार के लिए उनकी उपयोगिता अनेक दशाओं में अनुपयोगिता का ही रूपान्तर है। इन बातों पर दृष्टि रख कर उर्दू-बह्रों के व्यवहार के विषय में मेरी यह सम्मति है—

(१) आवश्यकता होने पर उर्दू-बह्रों की ध्वनि ग्रहण की जावे। किन्तु उसका उपयोग हिन्दी के उदाहृत लक्षण पद्यों के समान किया जावे।

(२) ध्वनि आधार से गृहीत प्रत्येक उर्दू-बह्र हिन्दी-छन्दों के अन्तर्गत है, अतएव उसका शासन पिंगल शास्त्र के अनुसार होना चाहिये; हिन्दी छन्दोनियम ही उसके लिए उपयोगी और सुविधा-मूलक हो सकता है।

(३) गृहीत उर्दू बह्रों की शब्द और वाक्यरचना हिन्दी-छन्दों की प्रणाली से होनी चाहिये, उसी विशेषता के साथ कि एक मात्रा की भी कहीं न्यूनाधिकता न हो।

(४) यथाशक्ति शब्द-प्रयोग इस प्रकार किया जावे कि गुरु को लघु बनाने की आवश्यकता न पड़े। यदि उपयोगितावश ऐसी नौबत आवे तो वह अत्यन्त परिमित और नियमित हो।

(५) शब्द तोड़े-मरोड़े न जावें, च्युतदोष से सर्वथा बचा जावे। उर्दू की जिन त्रुटियों का ऊपर उल्लेख हुआ है, उनसे किनारा किया जावे और निर्दोष छन्दोगति का पूरा ध्यान रखा जावे।

मैंने इन्हीं बातों पर दृष्टि रखकर इस ग्रन्थ में उर्दू-बह्रों का प्रयोग किया है। जहाँ कहीं कुछ अन्तर है उसका निर्देश भी यथास्थान नाना सूत्रों से कर दिया गया है। आशा है 'बोलचाल' की उर्दू-बह्रें भी अपने व्यवहार के विषय में इस ग्रन्थ द्वारा बहुत कुछ पथ-प्रदर्शन करेंगी। कुछ थोड़े से दूसरे प्रकार के पद्य भी कहीं कहीं ग्रन्थ में मिलेंगे। उनकी संख्या बहुत थोड़ी है। वे हिन्दी के ही छन्द हैं, अतएव उनके विषय में विशेष कुछ नहीं लिखा गया।

मुहावरा

'मुहावरा' अरबी शब्द है, यह 'हौर' शब्द से बना है, 'ग़यासुल्लुग़ात' में (पृष्ठ ४४५) इस शब्द के विषय में यह लिखा गया है-

"मुहावरा बिज़्ज़म मीम बफ़तेह् वाव, बा यकदीगर कलाम करदन व पासुख़दादन यक दीगर—अज़सेराह वकनज़ वग़ैर आँ।"

इसका अर्थ यह है कि 'मुहावरा' के 'मीम' पर पेश और 'वाव' पर जबर है, अर्थ उसका परस्पर बातचीत और एक दूसरेके साथ सवाल जवाब करना है। 'फ़रहंग आसिफ़िया' जिल्द चहारुम सफ़हा ३०३ कालम अव्वल में 'मुहावरा' के विषय में यह लिखा गया है—

मुहावरा—इस्म मुज़क्कर (१) हम कलामी, बाहमगुफ़्तगू, सवाल जवाब (२) इस्तिलाहआम, रोज़मर्रा, वह कलमा या कलाम जिसे चन्द सक़ात ने लग़वी मानी की मुनासिबत या ग़ैरमुनासिबत से किसी ख़ास मानी के वास्ते मुख़्ततस कर लिया हो। जैसे 'हैवान' से कुल जानदार मक़सूद हैं, मगर मुहावरे में ग़ैरज़ीउल अक़ूल पर उसका इतलाक़ होता है। और ज़ीउल अक़ूल को इन्सान कहते हैं (३) आदत, चसका, महारत, मश्क़ रब्त, अभ्यास जैसे मुझे अब इस बात का मुहावरा नहीं रहा।"

अपने परम प्रसिद्ध कोष (पृष्ठ १०६७) में वेबस्टर साहब ने मुहावरा अर्थात् 'इडियम' के विषय में यह लिखा है—

* १—किसी जाति-विशेष अथवा प्रान्त या समाज-विशेष की भाषा या बोली।

---

* (1) The language proper or peculiar to a people (a tongue) or to a district or community (a dialect).

२—किसी भाषा की व्याकरण-सम्बन्धी शैली अथवा वाक्य-विन्यास का विशेष स्वरूप। भाषा का विशेष लक्षण अथवा उसका ढाँचा।

"किसी भाषा के उन साधारण नियमों का समाहार जो उस भाषा की व्याकरण-सम्बन्धी शैली की विशेषता दिखलाता और दूसरी भाषाओं से उसे अलग करता है—जी० पी० मार्श"

३—(अ) किसी भाषा के विशेष ढाँचे में ढला वाक्य।

(ब) वह वाक्य जिसकी व्याकरण-सम्बन्धी रचना उसीके लिए विशिष्ट हो, और जिसका अर्थ उसकी साधारण शब्द-योजना से न निकल सके।

४—किसी एक लेखक की व्यंजन-शैली का विशेष रूप अथवा वाग्वैचित्र्य—जैसे 'ब्राउनिंग' के दुरूह मुहावरे।

---

(2) The syntactical or structural form peculiar to any language, the genius or caste of a language.

Idiom.—signifies the totality of the general rules of construction which characterize the syntax of a peculiar language and distinguish it from other tongues.—*G P. Marsh.*

He followed their language (the Ratin) but did not comply with the idiom of ours.—*Dryden.*

(3) (*a*)—"An expression confirming or appropriate to the peculiar structural form of a language. (*b*) An expression that is peculiar to itself in grammatical; one the meaning of which as a whole cannot be derived from the conjoined meaning of its elements.

(4) A form or forms of expression characteristic of an author as Browning's idiom is often difficult.

५—पुरुष-विशेष का 'स्वभाव-वैचित्र्य

हिन्दी शब्द-सागर (पृष्ठ २७९३) में यह लिखा है—

मुहावरा—संज्ञा पुं० (१) लक्षणा या व्यंजना द्वारा सिद्ध वाक्य या प्रयोग जो किसी एक ही बोली अथवा लिखी जानेवाली भाषा में प्रचलित हो, और जिसका अर्थ प्रत्यक्ष (अभिधेय) अर्थ से विलक्षण हो। किसी एक भाषा में दिखाई पड़नेवाली असाधारण शब्द-योजना अथवा प्रयोग। जैसे 'लाठी खाना' मुहावरा है, क्योंकि इसमें खाना शब्द अपने साधारण अर्थ में नहीं आया है, लाक्षणिक अर्थ में आया है। लाठी खाने की चीज़ नहीं है पर बोलचाल में 'लाठी खाना' का अर्थ 'लाठी का प्रहार सहना' किया जाता है। इसी प्रकार 'गुल खिलाना' 'घर करना' 'चमड़ा खींचना' 'चिकनी चुपड़ी बातें' आदि मुहावरे के अन्तर्गत हैं। कुछ लोग इसे रोज़-मर्रा या बोलचाल भी कहते हैं (२) अभ्यास, आदत, जैसे आजकल मेरा लिखने का मुहावरा छूट गया।

अब तक जो लिखा गया, उससे पाया जाता है, कि 'मुहावरा' का शुद्ध उच्चारण 'मुहावरा' है, न कि 'मुहाविरा' 'महाविरा' आदि; जैसा कि लोग प्रायः उच्चारण करते हैं। ऊपर जो उर्दू, अँगरेज़ी और हिन्दी कोषों के अंश उद्धृत किये गये हैं, उनके अवलोकन करने से यह भी ज्ञात हुआ कि, अरबी में इस शब्द का जो परिमित अर्थ है, उससे कहीं व्यापक उसका अर्थ हिन्दी और उर्दू में गृहीत है। अँगरेज़ी के 'इडियम' (Idiom) शब्द का अर्थ (जो कि मुहावरा का पर्य्यायवाची शब्द बतलाया जाता है) और भी व्यापक है। संस्कृत में 'मुहावरा' का पर्य्यायवाची शब्द कोई नहीं पाया जाता; जो एक दो शब्द प्रचलित किये गये, वे गृहीत नहीं हुए; कारण इसका यह है कि वे सर्वमान्य नहीं हुए। श्रीमान् पण्डित

(5) Peculiarity. Obs. or R.
Webster's International Dictionary, page 1067 col. 3.

रामदहिन मिश्र अपने हाल के प्रकाशित हुए 'मुहावरे' संज्ञक ग्रन्थ (पृष्ठ ७) में लिखते हैं—

"संस्कृत तथा हिन्दी में इस शब्द के यथार्थ अर्थ का बोधक कोई शब्द नहीं है। प्रयुक्तता, वाग्रीति, वाग्धारा और भाषा सम्प्रदाय आदि शब्दों को इसके स्थान पर रख सकते हैं। हिन्दी में मुहावरे के बदले में विशेषतः वाग्धारा शब्द का व्यवहार देखा जाता है। किन्तु मेरे विचार से मुहावरा शब्द के बदले भाषा-सम्प्रदाय शब्द का लिखना कहीं अच्छा है। क्योंकि वाग्रीति वाग्धारा और प्रयुक्तता, इन तीनों शब्दों का अर्थ इससे ठीक-ठीक झलक जाता है, और भाषागत अन्यान्य विषयों का आभास भी मिल जाता है।"

यह पण्डितजी की व्यक्तिगत सम्मति है। इस अवतरण से यह भी पाया जाता है कि संस्कृत में मुहावरे शब्द का पर्य्यायवाची शब्द खोजा जाने लगा है, सफलता-रत्न किसके हाथ लगेगा, यह नहीं कहा जा सकता। जहाँ तक मैं जानता हूँ मुहावरे के अर्थ में वाग्धारा शब्द का प्रयोग हिन्दी में करते, पहले पहल स्वर्गीय पण्डित केशवराम भट्ट को देखा जाता है, उन्हींकी देखादेखी बिहार में कुछ सज्जन मुहावरे के अर्थ में वाग्धारा शब्द का प्रयोग करते अब भी पाये जाते हैं, किन्तु इनकी संख्या उँगलियों पर गिनी जा सकती है। अब तक बिहार में ही उसका व्यापक प्रचार नहीं हुआ। मुहावरा शब्द सुन कर जिस अर्थ की अवगति होती है वाग्धारा शब्द से नहीं होती। संस्कृत-विद्वान् वाग्धारा शब्द सुन कर उसका 'मुहावरा' अर्थ कदापि न करेंगे, उसकी अभिधा-शक्ति से ही काम लेंगे। इसलिए मेरा विचार है कि 'वाग्धारा', 'मुहावरा' का ठीक पर्य्यायवाची शब्द नहीं है, यही अवस्था प्रयुक्तता, वाग्रीति और भाषा-सम्प्रदाय शब्दों की है। ये शब्द गढ़े हुए, अवास्तव और पूर्णतया उपयुक्त नहीं हैं, किन्तु दोनों विद्वानों का उद्योग प्रशंसनीय है।

संस्कृत भाषा और मुहावरा

संस्कृत भाषा में मुहावरे नहीं हैं, यह बात नहीं कही जा सकती। प्रसिद्ध 'कुवलयानन्द' का निम्नलिखित श्लोक हमारी दृष्टि को संस्कृत के कई 'मुहावरों' की ओर आकृष्ट करता है—

"अरण्य रुदितं कृतं शवशरीरमुद्वर्तितं।
स्थलेऽब्जमवरोपितं सुचिरमूषरे वर्षितं॥
स्वपुच्छमवनामितं वधिरकर्णजापः कृतः।
धृतोन्धमुखदर्पणो यदबुधोजनस्सेवितः॥"

निम्नलिखित वाक्यों में भी संस्कृत 'मुहावरों' का प्रयोग सुन्दरता से किया गया है। मुहावरों के नीचे लकीर खींच दी गयी है।

मासानेतान् गमय चतुरो लोचने मीलयित्वा—*उत्तर मेघ पद्य ११२*

अवशेन्द्रियचित्तानाम् हस्तिस्नानमिवक्रिया—*हितोपदेश*

आः कोप्यस्माकम् पुरतो नास्ति य एनं गलहस्तयति—*हितोपदेश*

किन्तु त्वं च कूपमण्डूकः—*हितोपदेश*

अंगुलिदाने भुजम् गिलसि—*आर्य्यासप्तशती*

तावदार्द्रपृष्ठाः क्रियन्ताम् वाजिनः—*शकुन्तला नाटक*

ईदृशं राजकुलम् दूरे वन्द्यताम्—*कर्पूरमञ्जरी*

जब संस्कृत में मुहावरे पाये जाते हैं, तो हृदय में यह बात अपने आप उठती है कि इस प्रकार के प्रयोगों का नामकरण क्यों नहीं हुआ? कोई भाषा ऐसी नहीं है, जिसमें मुहावरे नहीं। जो जीवित भाषाएँ हैं, उनकी बात ही क्या, मृतक भाषाओं में भी मुहावरों का प्रयोग मिलता है। लैटिन भाषा मुहावरों से भरी है। भाषा-सम्बन्धी कार्य्यों में उनके द्वारा अनेक सुविधाएँ होती हैं,

और उनकी सहायता से विचारों के प्रकट करने में बहुत बड़ा सहारा मिलता है। अनेक मानसिक भाव थोड़े शब्दों में ही मुहावरों द्वारा प्रकट होते और साथ ही प्रभावजनक बनते हैं। लेख मुहावरों द्वारा चटकीले हो जाते हैं और कविता चटपटी; उनमें भाव-गाम्भीर्य्य भी आता है। ऐसी दशा में यह नहीं कहा जा सकता कि संस्कृत जैसी सम्पन्न भाषा ने उसकी उपेक्षा की। जिस भाषा ने अर्थालंकार ही नहीं शब्दालंकार तक के वर्णन में पराकाष्ठा दिखलाई है, बाल की खाल निकाली है, वह मुहावरों के विषय में मौन रही, यह बात स्वीकार नहीं की जा सकती। लोकोक्ति अथवा कहावत से साहित्य-क्षेत्र में मुहावरों की उपयोगिता कहीं अधिक है; मुहावरों का कार्य्य-क्षेत्र भी विस्तृत है। जिन वाक्यों अथवा रचनाओं में लोकोक्तियों का प्रयोग होता है, संस्कृत साहित्य ने उसे अलंकृत माना है, और इसी लिए लोकोक्ति अलंकार की सृष्टि हुई है। लक्षण उसका यह है–

"लोकप्रवादानुकृतिर्लोकोक्तिरिति भरायते"

जिस पद्य में लोक-प्रवाद अर्थात् कहावत की अनुकृति होती है, उसको लोकोक्ति अलंकार कहते हैं, जैसे—

"साँची भई कहनावतिया अरी ऊँची दुकान की फीकी मिठाई"

यहाँ प्रश्न यह उपस्थित होता है, कि क्या वाग्विलास मुहावरों द्वारा अलंकृत नहीं होता! यदि होता है तो फिर क्या कारण है कि मुहावरों का प्रयोग आलंकारिक भी नहीं समझा गया? प्रायः मुहावरों का प्रयोग एक वाक्य के समान होता है, संस्कृत में ऐसे वाक्यों को लक्षणा के अन्तर्गत माना है, मेरा विचार है कि इसी कारण संस्कृत के विद्वानों ने मुहावरों की कोई अलग कल्पना नहीं की, और न उसका नामकरण ही किया। साहित्यदर्पणकार ने लक्षणा का लक्षण यह लिखा है—

"मुख्यार्थबाधे तद्युक्तो ययान्योऽर्थः प्रतीयते ।
रूढेः प्रयोजनाद्वाऽसौ लक्षणा शक्तिरर्पिता ॥"

भाषा टीका में इस श्लोक का यह अर्थ लिखा गया है—

"लक्षणा शक्ति का निरूपण करते हैं—'मुख्यार्थेति' अभिधा शक्ति के द्वारा जिसका बोधन किया जावे, वह मुख्यार्थ कहाता है, इसका बाध होने पर अर्थात् वाक्य में मुख्यार्थ का अन्वय अनुपपन्न होने पर, रूढ़ि (प्रसिद्धि) के कारण अथवा किसी विशेष प्रयोजन का सूचन करने के लिए, मुख्यार्थ से संबद्ध (युक्त) अन्य अर्थ का ज्ञान जिस शक्ति के द्वारा होता है, उसे लक्षणा कहते हैं । यह शक्ति 'अर्पित' अर्थात् कल्पित या अमुख्य है' ।

चन्द्रालोककार लक्षणा का लक्षण यह लिखते हैं—

"मुख्यार्थस्याविवक्षायां पूर्वाऽवाची च रूढ़ितः ।
....................वदन्ती लक्षणा मता ।"

टीकाकार इस पद्य का यह अर्थ लिखते हैं—

"जिस समय शब्द-शक्ति-जनित मुख्यार्थ नहीं प्रकट होता अर्थात् मुख्यार्थ अविवक्षित रह जाता है, वहाँ आपाततः लक्षणा का आश्रय लेना पड़ता है, अर्थात् लक्षणा द्वारा अर्थ प्रकट होता है । इसके पूर्वा और अर्वाचीना दो भेद (रूढ़ि से) माने गये हैं ।"

काव्य-प्रभाकर (पृष्ठ ७२) में लक्षणा के विषय में यह लिखा गया है—

लक्षणा शक्ति

दोहा

'मुख्य अर्थ के बाधते पुनि ताही के पासु ।
और अर्थ जाते बनै कहैं लक्षणातासु ।'

उक्त ग्रन्थ में निरूढ़ि (रूढ़ि) लक्षणा का उदाहरण देकर उसका जो अर्थ किया गया है, वह नीचे दिया जाता है—

"फली सकल मन कामना लूट्यो अगणित चैन।
आजु अचै हरि रूप सखि भये प्रफुल्लित नैन।"

"मनकामना वृक्ष नहीं है जो फले; मनकामना पूर्ण होती है। चैन कोई द्रव्य वस्तु नहीं जो लूटी जावे, किन्तु उसका उपभोग अनुभव द्वारा होता है। हरि का रूप जल नहीं है, जो आचमन किया जावे, वरन् नेत्रों से देखा जाता है। नैन कोई पुष्प नहीं है जो विकसित होवे, किन्तु चित्त प्रफुल्लित होता है।"

भाव लेखक का यह है कि 'मनकामना फलना', 'चैन लूटना', 'हरि रूप का अचवना', 'नेत्रों के प्रफुल्लित होने', का जो अर्थ गृहीत हुआ है, वह मुहावरे पर दृष्टि रख कर; क्योंकि उनका अभिधा-मूलक वह अर्थ नहीं है। इसीलिये उन्होंने उसको रूढ़ि-लक्षणा माना है।

अपने व्यङ्गार्थ-मंजूषा में श्रीमान् लाला भगवानदीन ने रूढ़ि-लक्षणा के सात उदाहरण दिये हैं। पृष्ठ ११ में छठाँ उदाहरण देकर वे जो कुछ लिखते हैं वह नीचे दिया जाता है—

—"नारि सिखावन करेसि न काना,।" *करेसि न काना* यह रूढ़ि है। इसका अर्थ है—तूने नहीं माना।"

'कान न करना' एक मुहावरा है जिसका अर्थ है—'न सुनना।' उसी मुहावरे का इस चौपाई में प्रयोग हुआ है, जिसको रूढ़ि-लक्षणा बतलाया गया है।

'फ़रहंग आसिफ़िया' के नम्बर २ पर, 'वेबस्टर कोष' के नम्बर ३ब पर और 'हिन्दी-शब्द-सागर कोष' के नम्बर १ पर मुहावरा का जो अर्थ बतलाया गया है, उसका साहित्य-दर्पण और चन्द्रालोक की लक्षणा के लक्षण से बहुत कुछ साम्य है; भाव सबके लगभग एक ही हैं। जो हिन्दी उदाहरण मैंने काव्य-प्रभाकर और व्यंगार्थ-मंजूषा से दिये हैं, और जो उनकी व्याख्याएँ दिखलाई हैं, उनसे भी मेरे इस विचार की पुष्टि होती है कि संस्कृत के विद्वानों ने

मुहावरों को लक्षणा के अन्तर्गत माना है, और इसीलिए इस प्रकार के वाक्यों के लिए किसी दूसरे नामकरण की आवश्यकता नहीं हुई। यह मेरा निज का विचार है; मैंने यथाशक्ति उसकी पुष्टि की भी चेष्टा की है। संभव है कि मेरा विचार भ्रान्त हो। मुझे बड़ा हर्ष होगा यदि कोई विद्वान् सज्जन मेरे विचार का निराकरण करके तथ्य बात को प्रकट कर देंगे; और यह बतला देंगे कि संस्कृत में मुहावरा का पर्य्यायवाची शब्द यह है। किन्तु मैं इस विषय में सन्दिग्ध हूँ, और मेरा एक प्रकार से यह निश्चय है कि मुहावरे के इतना ही व्यापक और बहु-अर्थबोधक शब्द शायद संस्कृत में नहीं है, यदि होता तो आज तक इस विषय में इतना अंधकार न रहता। ऐसी अवस्था में आवश्यकता की पूर्ति और हिन्दी-भाषा-कोष की पूर्णता के लिए दो ही बातें हो सकती हैं—

१—यह कि 'मुहावरा' शब्द ही को ग्रहण कर लिया जावे।

२—यह कि उसके स्थान पर कोई सर्वसम्मत संस्कृत शब्द गढ़ा जावे, अथवा कोई समानार्थक प्राचीन संस्कृत शब्द स्वीकार कर लिया जावे।

पहली बात मुझको अधिक युक्तिसंगत ज्ञात होती है, निम्नलिखित कारणों से—

१—यह कि एक प्रकार से 'मुहावरा' शब्द हिन्दी-संसार में गृहीत हो गया है, 'इडियम' के स्थान पर आजकल उसी का प्रयोग हो रहा है, कोषों तक में उसे स्थान मिल गया है, ऐसी अवस्था में उसकी उपेक्षा अथवा उसका त्याग असुविधामूलक होगा।

२—यह कि जब अनेक अरबी, फ़ारसी अथवा अँगरेज़ी आदि अन्य भाषाओं के शब्द प्रयोजनवस गृहीत होकर हिन्दी भाषा की आवश्यकताओं

को पूरा कर रहे हैं, तो 'मुहावरा' शब्द के ही त्याग का आग्रह क्यों किया जावे, विशेष कर उस अवस्था में जब कि उतना व्यापक और अर्थबोधक पर्य्यायवाची शब्द संस्कृत में पाया नहीं जाता।

यह मेरा निजका विचार है, इसका यह अर्थ नहीं है कि मैं उद्योग का विरोधी हूँ। वास्तव बात तो यह है कि संस्कृत का उपयुक्त पर्य्यायवाची शब्द मिल जावे तो सबसे पहले मैं उसको ग्रहण करने और मुहावरा के स्थान पर उसका प्रचार करने के लिए कटिबद्ध हूँ। अन्यथा यही उचित जान पड़ता है, जिसे मैंने अभी ऊपर निवेदन किया है। '*ग़नी*' '*गरीब*' अरबी के क्लिष्ट शब्द हैं, किन्तु व्यवहार और उपयोगिता पर दृष्टि रख कर गोस्वामीजी ने उनको ग्रहण कर लिया, और '*गनी, गरीब, ग्राम, नर नागर*' लिखते संकुचित नहीं हुए। यही बात मुहावरा के प्रयोग के विषय में कही जा सकती है।

मुहावरा शब्द की अर्थ-व्यापकता

'फ़रहंग आसिफ़िया' में 'मुहावरा' शब्द का जो अर्थ लिखा गया है, वह बहुत व्यापक और अनेक अर्थों का द्योतक है। जिस अरबी भाषा का यह शब्द है, उसमें उसके जो अर्थ माने गये हैं, उससे कहीं अधिक अर्थ उसके फ़ारसी और उर्दू में किये गये हैं। मेरा विचार है, उन्हींपर दृष्टि रखकर 'फ़रहंग आसिफ़ियाकार' ने उसके अर्थ की व्यापकता बढ़ाई है। 'हिन्दी शब्द सागर' में उसके वही अर्थ दिखलाये गये हैं, जो विशेष करके हिन्दी भाषा में प्रचलित हैं। 'इडियम' का जो अर्थ वेबस्टर साहब ने अपनी 'डिक्सनरी' में किया है, वह इन दोनों से अधिक व्यापक, गंभीर और विशेषार्थक है। मौलाना हाली ने 'मुहावरा' के विषय में जो कुछ लिखा है, उसे मैं नीचे लिखता हूँ; उसके देखने से प्रस्तुत विषय पर बहुत कुछ प्रकाश पड़ेगा।

'मुहावरा' लुग़त (कोष) में बातचीत करने को कहते हैं, चाहे वह बातचीत अह्लज़बान (भाषा-भाषियों) के रोज़मर्रा के मुवाफ़िक़ हो या मुखालिफ़ लेकिन इस्तिलाह (सांकेतिक अर्थ) में ख़ास अह्लज़बान के रोज़-मर्रा या बोलचाल या बयान करने के ढंग का नाम मुहावरा है। पस यह ज़रूर है कि मुहावरा हमेशा दो या दो से ज़ियादा अलफ़ाज (शब्दों) में पाया जावे। क्योंकि मुफ़रद लफ़्ज (प्रत्येक शब्द) को रोज़मर्रा या बोल-चाल या असलूब बयान (वर्णन शैली) नहीं कहा जाता। ब खिलाफ़ लुग़त (कोष) के कि उसका इतलाक़ (निर्देश) हमेशा (सदैव) मुफ़रद अलफ़ाज़ पर या ऐसे अलफ़ाज़ पर जो ब-मंजिला[1] मुफ़रद (जैसे इकतीस) के हैं किया जाता है। जैसे पाँच और सात दो लफ़्ज़ हैं जिन पर अलग अलग लुग़त का इतलाक़ हो सकता है मगर इनमें से हर एकको मुहावरा नहीं कहा जावेगा, बल्कि दोनों को मिला कर जब पाँच-सात बोलेंगे तब मुहावरा कहा जावेगा। यह भी ज़रूर है कि वह तरकीब जिस पर मुहावरा होने का इतलाक़ किया जावे, क़यासी[2] न हो बल्कि मालूम हो कि अह्ल-ज़बान उसको इसी तरह इस्तेमाल करते हैं। जैसे अगर पाँच या सात, आठ या आठ सात पर क़यास करके छ आठ या आठ छ या सात नौ बोला जावेगा, तो उसको मुहावरा नहीं कहेंगे, क्योंकि अह्लज़बान कभी इस तरह नहीं बोलते। 'बिला नाग़ा' पर क़यास करके उसकी जगह 'बे नाग़ा, 'हर रोज़' की जगह 'हर दिन' आये दिन की जगह 'आये रोज़' बोलना भी मुहावरा नहीं कहा जावेगा। क्योंकि ए अलफ़ाज़ इस तरह अह्लज़बान की बोलचाल में कभी नहीं आते।"

"कभी मुहावरा का इतलाक़ ख़ास कर उन अफ़आल (क्रियाओं) पर किया जाता है, जो किसी इस्म (संज्ञा) के साथ मिल कर अपने हक़ीक़ी मानों (वास्तविक अर्थों) में नहीं बल्कि मजाज़ी मानों (लाक्षणिक वा

१—ब-मंजिला = समान। २—क़यासी = अनुमानित।

सांकेतिक अर्थों) में इस्तेमाल होते हैं। जैसे उतारना इसके हक़ीक़ी मानी (वास्तविक अर्थ) किसी जिस्म (शरीर) को ऊपर से नीचे लाने के हैं। जैसे घोड़े से सवार का उतारना, खूँटी से कपड़ा उतारना, कोठे पर से पलंग उतारना। लेकिन इनमें से किसी पर मुहावरे के दूसरे मानी ठीक नहीं आते। क्योंकि इन सब मिसालों (उदाहरणों) में उतारना अपने हक़ीक़ी मानों (वास्तविक अर्थों) में इस्तेमाल किया गया है। हाँ 'नक़शा उतारना,' 'नक़ल उतारना', 'दिल से उतारना', 'दिल में उतारना' 'हाथ उतारना', 'पहुँचा उतारना', यह सब मुहावरे कहलावेंगे। क्योंकि इन सब मिसालों (उदाहरणों) में उतारने का इतलाक़ (निर्देश) मजाज़ी मानों (सांकेतिक अर्थों) पर किया गया है। खाना, इसके हक़ीक़ी मानी (वास्तविक अर्थ) किसी चीज़ को दाँतों से चबाकर या बिना चबाये हलक़ (गले) से उतारने के हैं। जैसे 'रोटी खाना', 'दवा खाना', 'अफ़ीम खाना', वग़ैरः। लेकिन इनमें से किसीको दूसरे मानी (अर्थ) के लिहाज़ से मुहावरा नहीं कहा जावेगा। क्योंकि इन सब मिसालों में खाना अपने हक़ीक़ी मानों (वास्तविक अर्थों) में इस्तेमाल किया गया है। हाँ, 'ग़म खाना', क़सम खाना'' 'धोखा खाना,' 'पछाड़ खाना,' 'ठोकर खाना' यह सब मुहावरे कहलावेंगे।"

"मुहावरे के जो मानी हमने पहले बयान किये हैं, वह आम (सामान्य) हैं, यानी दूसरा मानी भी उसमें शामिल है, लेकिन दूसरा मानी पहले मानी से ख़ास (विशेष) है। पस जिस तरकीब (व्यापार) को पहले मानों के लिहाज़ (विचार) से मुहावरा कहा जावेगा, उसको दूसरे मानों (अर्थों) के लिहाज़ से भी मुहावरा कहा जा सकता है, लेकिन यह ज़रूर नहीं है कि जिस तरकीब (व्यापार) को पहले मानों (अर्थों) के लिहाज़ से मुहावरा कहा जावे, उसको दूसरे मानों (अर्थों) के लिहाज़ से भी मुहावरा कहा जावे। जैसे—'तीन पाँच करना' (यानी—'झगड़ा टंटा करना') इसको दोनों मानों के लिहाज़ से मुहावरा कह सकते हैं, क्योंकि यह तरकीब

अह्लज़बान की बोलचाल के भी मुवाफ़िक़ है, और उसमें तीन पाँच का लफ़्ज़ अपने हक़ीक़ी मानों (वास्तविक अर्थों) में नहीं बल्कि मज़ाज़ी माने (सांकेतिक अर्थों) में बोला गया है। लेकिन 'रोटी खाना', या 'मेवा खाना', या पान सात या दस बारह वग़ैरः सिर्फ़ पहले मानों के लिहाज़ से मुहाविरा क़रार पा सकते हैं, दूसरे मानों (अर्थों) के लिहाज़ से नहीं, क्योंकि यह तमाम तरकीबें अह्लज़बान के मुआफ़िक़ तो ज़रूर हैं, मगर उनमें कोई लफ़्ज़ मज़ाज़ी मानों (सांकेतिक अर्थों) में इस्तेमाल नहीं किया गया।"

"रोज़मर्रा और मुहावरा में एक फ़र्क़ और भी है। रोज़मर्रा की पाबंदी जहाँ तक मुमकिन हो, तक़रीर[१] और तहरीर[२] नज़्म[३] व नसर[४] में ज़रूरी समझी गई है। यहाँ तक कि कलाम[५] में जिस क़दर रोज़मर्रा की पाबंदी कम होगी, उसी क़दर वह फ़साहत[६] के दर्जा से गिरा समझा जावेगा। जैसे-"कलकत्ते से पिशावर तक सात आठ कोस पर एक पक्की सराय और एक कोस पर मीनार बना हुआ था", यह जुमला (वाक्य) रोज़मर्रा के मुआफ़िक़ (अनुसार) नहीं है, बल्कि उसकी जगह होना चाहिये—"कलकत्ते से पिशावर तक सात सात आठ आठ कोस पर एक एक पक्की सराय और कोस कोस भर पर एक एक मीनार बना हुआ था" इसी प्रकार और भी।"

—*'मुक़द्दमा शेर व शायरी' पृष्ठ १४१, १४२, १४३।*

मौलाना हाली ने उन वाक्यों के विषय में कुछ नहीं लिखा जो शब्दयोजना के विरुद्ध सांकेतिक अर्थ द्वारा भाषामर्मज्ञों अथवा सर्वसाधारण में गृहीत हैं, जैसे 'मुँह में ताला लगा होना, 'फूटी आँख से न देखना, 'इत्यादि। उन्होंने 'तीन पाँच करना', का अर्थ झगड़ा-टंटा करना लिखकर और उसको मुहावरा मानकर रूपान्तर से इस बात को स्वीकार किया है; परन्तु जैसे अफ़आल (क्रियाओं)

---

१ तक़रीर = व्याख्यान, बातचीत। २ तहरीर = लेखन। ३ नज़्म = पद्य। ४ नसर = गद्य। ५ कलाम = वाक्य। ६ फ़साहत = प्रसादगुण।

का उदाहरण देकर और उनकी परिभाषा लिखकर उनको मुहाविरा सिद्ध किया है, उसी प्रकार वाक्य के विषय में कोई परिभाषा नहीं लिखा। यद्यपि अधिकतर मुहावरे के अर्थ में सांकेतिक अर्थ-द्योतक वाक्य ही गृहीत होते हैं; तथापि मैं यह कहूँगा कि—मौलाना साहब ने 'मुहावरा' के विषय में जो कुछ लिखा है, उसका निचोड़ यही है, कि मुहावरा के दो रूप है—एक वह जिसको हम रोज़मर्रा या बोलचाल कह सकते हैं, और दूसरा मुख्य मुहावरा जो किसी वाक्य के सांकेतिक अथवा लाक्षणिक अर्थ द्वारा विदित होता है। किसी क्रिया में स्वतः मुहावरा के रूप में गृहीत होने की शक्ति नहीं है, वह जब किसी विशेष संज्ञा के साथ मिलकर वाक्य में परिणत होती है, और अपना साधारण अर्थ छोड़कर विशेष अर्थ देती है, तभी उसकी मुहावरा संज्ञा होती है, ऐसी अवस्था में प्रधानता वाक्य ही की हुई।

श्रीमान् पण्डित रामदहिन मिश्र ने अपने ग्रन्थ में इस विषय में जो कुछ लिखा है, वह भी द्रष्टव्य है; उसको मैं नीचे उद्धृत करता हूँ।

"मुहावरे के विषय में कई मत मतान्तर हैं, कई लोगों ने कई रीतियों से मुहावरे का लक्षण माना है—

१—कितने ठीक-ठीक लेख-शैली वा बोलने के ढंग को मुहावरा मानते हैं, जैसे जड़ाऊ के तरह-तरह के गहने, यहाँ *'तरह-तरह के जड़ाऊ गहने'* लिखना बामुहावरा है।

२—कोई-कोई व्याकरण-विरुद्ध होने पर भी सुलेखक के लिखे होने के कारण किसी-किसी शब्द और वाक्य को बामुहावरा बतलाते हैं,। जैसे *'उपरोक्त' (उपर्युक्त) 'सराहनीय' (प्रशंसनीय) 'सत्यानाश' (सर्वनाश), 'हम जब घर गये तब (हमने) लड़के को बीमार देखा।'*

३—कोई-कोई कहावत को ही मुहावरा कहते हैं, जैसे 'नौ नगद न तेरह उधार', 'नौ की लकड़ी नब्बे ख़र्च', आदि।

४—कोई-कोई विलक्षण अर्थ प्रकाशित करनेवाले वाक्य को ही मुहावरा कहते हैं। जैसे 'बाल की खाल निकालना', 'दाँतों में तिनका दबाना', 'आठ-आठ आँसू रोना', आदि।

५—कितने भङ्गी-पूर्वक अर्थ-प्रकाशन के ढंग को ही मुहावरा मानते हैं—जैसे फ़ारसी भाषा के कवियों ने इस नई भाषा को शाहजहानी बाजार में अनवस्था में इधर-उधर फिरते देखा, उन्हें इसकी भोली सूरत बहुत पसन्द आई, वह उसे अपने घर ले गये।"

६—बहुतों ने शब्द वा वाक्य को भिन्नार्थ-बोधक होने से ही मुहावरा माना है। जैसे आँख, (उससे जब लड़के का बोध होता है) 'यह अन्याय कब तक चलेगा', अर्थात् अन्याय को सदा प्रश्रय नहीं मिलेगा।

७—कोई कोई आलंकारिक भाषा को ही मुहावरा कहते हैं, जैसे—'बसन्त बरसो परै', 'चूनरी चारु चुईसी परै', 'स्वर-लहरी आकाश में लहराने लगी', 'नेत्रों के सामने सब नाचने लगते हैं', 'तुम पराये धन पर नाचते हो', आदि।

८—बहुत लोग विचित्र रूप से अर्थ प्रकट करनेवाले वाक्य को मुहावरा कहते हैं। जैसे—'अँगरेज़ों के राज्य में बाघ बकरी एक घाट पानी पीते हैं', अर्थात् बड़ी शान्ति है।

९—कोई-कोई एक ख़ास अर्थ के बोधक वाक्य को मुहावरा कहते हैं। जैसे—'लघु शंका करने जाओ', 'वाह्य भूमि को गया है', आदि।

१०—कोई-कोई एकार्थ में वद्ध क्रिया आदि को मुहावरा कहते हैं, जैसे—'हाथी चिग्घाड़ता है', 'घोड़ा हिनहिनाता है', क्योंकि अगर इनमें बोलना क्रिया लगावें तो ये बामुहावरा नहीं हो सकते।

११—कोई-कोई प्रचलित शब्द-प्रयोग को ही मुहावरा बतलाते हैं। जैसे—*नैहर* की जगह *'मैके'*, और छूँछे की जगह *'खाली'* आदि।

१२—कोई-कोई किसी विषय पर प्रायः प्रयुक्त होनेवाले शब्द या वाक्य लाने ही को मुहावरा कहते हैं। जैसे—किसी के राज्य वर्णन में *'राम-राज्य'* कह देना आदि।

—हिन्दी मुहावरे पृष्ठ ७, ८

पण्डितजी ने लक्षणों द्वारा जो १२ प्रकार के मुहावरे दिखलाये हैं उनमें से नम्बर ३ और ४ के प्रयोगों को छोड़, शेष समस्त का अन्तर्भाव 'रोज़मर्रा' अथवा 'बोलचाल' में हो जाता है, अतएव उनको मुहावरे का एक अलग प्रकार मानना उचित नहीं। पण्डितजी ग्रन्थ के पृष्ठ ९ में स्वयं लिखते हैं।

"मुहावरे का लक्षण यह हो सकता है कि जहाँ जिस रीति से बोलचाल के शब्दों और शब्द-समूहों का ठीक-ठीक प्रयोग करना चाहिये वहाँ उसी प्रकार उनका प्रयोग करना। अर्थात् लिखने पढ़ने तथा बोलचाल की परिपाटी के अनुकूल लिखना और बोलना।"

"इस लक्षण के भीतर ऊपर के जितने मत-मतान्तर हैं प्रायः सभी आ जाते हैं।"

रहे नम्बर ३ और ४ के प्रयोग। नम्बर ३ में कहावतों को मुहावरा बतलाया गया है। मैं इस विचार से सहमत नहीं हूँ—कहावतें मुहावरे में कदापि परिगणित नहीं हो सकतीं, उनकी स्वतंत्र स्थिति है। मैं आगे चल कर 'मुहावरे और कहावतें' शीर्षक स्तम्भ में इस विषय को स्पष्ट करूँगा। नम्बर ४ के प्रयोग वे ही हैं, जो 'बे-मुहावरे' कहलाते हैं; जिनकी स्थिति रोज़मर्रा अथवा बोलचाल से भिन्न है; और जिनका आधार वाक्यों का लाक्षणिक अथवा सांकेतिक अर्थ है। ऐसी अवस्था में मुहावरे के दो ही व्यापक स्वरूप

स्वीकृति होते हैं, एक तो वह जिसे रोज़मर्रा या बोलचाल कहते हैं, और दूसरा वह जो मुहावरा नाम ही से पुकारा जाता है।

हिन्दी-शब्द-सागर में लक्षणा या व्यंजना द्वारा सिद्ध-प्रयोग को मुहावरा बतला कर अन्त में यह वाक्य लिखा है—"*कुछ लोग इसे रोज़मर्रा या बोलचाल भी कहते है*"। किन्तु मौलाना हाली की सम्मति इसके विरुद्ध है। उनका अवतरण आप लोग देख चुके हैं। वे कहते हैं कि मुहावरा का अन्तर्भाव रोज़मर्रा में हो सकता है, परन्तु मुहावरे में रोज़मर्रे का अन्तर्भाव नहीं हो सकता। उन्होंने उपपत्तियाँ दी हैं, उनकी उपपत्ति युक्तिसंगत है। इस मतान्तर का कारण दृष्टिकोण-भेद है। वास्तव बात यह है कि हिन्दी-संसार की दृष्टि विशेषतया मुहावरा की ओर है, वह सांकेतिक अर्थ में गृहीत वाक्य ही को मुहावरा मानता है, और इसी अर्थ में यह शब्द अधिकतर सर्वसाधारण में प्रचलित भी है, इसी लिए उसकी दृष्टि रोज़मर्रा अथवा बोलचाल की ओर उतनी नहीं है, जितनी कि उर्दूवालों की। ऐसी अवस्था में हिन्दी-शब्द-सागर में जो कुछ लिखा गया, उचित लिखा गया। किन्तु वास्तविकता मौलाना हाली की मीमांसा में ही है, अतएव मुहावरा के जो दो व्यापक स्वरूप स्वीकृत हुए हैं, वे ही विशेष युक्तिसंगत ज्ञात होते हैं।

फ़रहंग आसिफ़िया में इस्तिलाह आम (सांकेतिक प्रयोग) और रोज़मर्रा के अतिरिक्त एक शाब्दिक प्रयोग को भी मुहावरा बतलाया है। वह कहता है कि 'हैवान' एक ऐसा शब्द है, जो प्रत्येक जीव-धारी के लिए प्रयुक्त हो सकता है, परन्तु उस भाषा के मर्मज्ञों ने यह स्वीकार कर लिया है, कि इस शब्द का प्रयोग उसीके लिए किया जा सकता है, जो बुद्धिमान नहीं है, मनुष्य के लिए उसका प्रयोग नहीं हो सकता क्योंकि वह बुद्धिमान है, इस लिए इस प्रकार

के प्रयोग को भी वह मुहावरा मानता है। यह वैसा ही प्रयोग है, जैसा पं० रामदहिन मिश्र के ६ नम्बर के प्रयोग में 'आँख' का पुत्र के अर्थ में गृहीत होना। यह मान लिया जावे किन्तु इसमें व्यापकता नहीं है। यदि इस प्रकार मानते चलें, तो हिन्दी भाषा के अनेक शब्दों को इस परिधि में लाना पड़ेगा। इसके अतिरिक्त ऐसे ही शब्दों को हिन्दी में 'लक्षक' कहते हैं। ऐसी अवस्था में कोई आवश्यकता नहीं मालूम होती कि इस प्रकार के शब्दों को भी मुहावरा कह कर व्यर्थ भ्रान्ति उत्पन्न की जावे। मेरा विचार है कि मुहावरा शब्द को 'वाक्य' तक ही परिमित रहना चाहिये, यही सम्मति मौलाना हाली ने भी अपने वक्तव्य में प्रकट की है। अभ्यास आदि वाचक शब्दों के अर्थ में जिस स्थल पर मुहावरा शब्द गृहीत होता है, उसके विषय में कुछ लिखने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि वह वाक्य की परिधि से बाहर है।

वेबस्टर साहब ने अपने कोश में 'इडियम' के पाँच अर्थ लिखे हैं, उनमें से प्रथम और द्वितीय अर्थ, हिन्दी भाषा के लिए सुसंगत नहीं हैं, उतना व्यापक अर्थ 'मुहावरा' का हिन्दी में नहीं होता। हिन्दी में मुहावरा शब्द उसी अर्थ में गृहीत है, जिसका निरूपण उन्होंने अपने ३ (अ) और ३ (ब) में किया है। ३ (अ) में जो अर्थ किया गया है, वही हमारा रोज़मर्रा और बोलचाल है, और ३ (ब) में जो अर्थ उन्होंने किया है, वही 'मुहावरा' है। चौथे अर्थ में किसी लेखक के भाव-व्यंजन शैली के विशेष रूप अथवा उसके वाग्वैचित्र्य को भी मुहावरा माना है, और ब्राउनिंग के दुरूह मुहावरों का उल्लेख उदाहरण स्वरूप किया गया है। हिन्दी भाषा में इस प्रकार के वाग्वैचित्र्य को मुहावरा नहीं माना जाता, उसको कवि-विशेष की शैली, अथवा उसके भाव-प्रकाशन की विभिन्न

प्रणाली मानी जाती है। उसमें चमत्कार, हृदय-ग्राहिता और गंभीरता पाई जा सकती है, उस पर उसके निजत्व की छाप लगी हो सकती है, उसमें शब्दालंकार और अर्थालंकार की छटा दिखलाई पड़ सकती हैं, पर उस शैली अथवा प्रणाली की गणना 'मुहावरा' में नहीं हो सकती। ब्राउनिंग के कतिपय मुहावरे नीचे दिये जाते हैं, उनके समझ लेने पर प्रस्तुत विचार पर बहुत कुछ प्रकाश पड़ेगा।

'The boy with his white breast.'

शब्दार्थ—'सफ़ेद छाती का बालक'

भावार्थ—'शुद्ध हृदय का बालक'

'Filletted victim.'

शब्दार्थ—'पुष्ट जानुवाला वलि'

भावार्थ—'पुष्ट शरीर का वलि'

'What will but felt the fleshy screen.'

शब्दार्थ—'कौन सी ऐसी इच्छा है जिसे मांस-पिण्ड के बने शरीर को अनुभव न करना पड़ा हो।'

भावार्थ—'किस इच्छा ने शरीर-बन्धन का अनुभव नहीं किया।'

'What hand and brain went ever paired.'

शब्दार्थ—'कौन से हाथ और मस्तिष्क साथ साथ जुड़े रहे हैं।'

भावार्थ—'जो मनुष्य सोचता है वह सब कर नहीं सकता।'

ब्राउनिङ्ग के वाक्य और उन वाक्यों के शब्दार्थ और भावार्थ को पढ़ कर उनके वाग्वैचित्र्य को कौन स्वीकार न करेगा। उन्होंने भाषा के प्रयोगों और आनुषंगिक भावों के साहचर्य्य से जिन विचित्र वाक्यों की उद्भावना की है, वे गम्भीर और उदात्त हैं, किन्तु अत्यन्त जटिल हैं। उनके समझने में बहुत माथापच्ची करना पड़ता

है, फिर भी उनका अर्थ स्पष्ट नहीं होता। निम्नलिखित वाक्यों को देखिये इनका कई अर्थ किया जाता है।

(1) 'Archers of Athens tapped by the tetli'.

(2) 'Mark within my eye its iris mystic lettered.'

संस्कृत में महनीय-कीर्ति माघ की रचनाएँ भी जटिल हैं, उनके अनेक श्लोक ऐसे हैं, जिनका अर्थ करने में दाँतों पसीना आता है। मल्लिनाथ जैसे समर्थ टीकाकार को उनकी टीका करने में अपनी समस्त आयु लगानी पड़ी। किम्वदन्ती प्रसिद्ध है—"*मेघे माघे गतं वयः*"। कबीर साहब के कुछ पद और कविवर सूर के दृष्टकूट भी बहुत गम्भीर और जटिल हैं, उनका अर्थ करना भी लोहे के चने चबाना है। कबीर साहब के कई एक पद तो ऐसे हैं कि उनका अर्थ करना ही झख मारना है; फिर भी भक्ति-उद्रेक से उनमें विचित्रता का अनुभव किया जाता है, और उनके अर्थ करने की चेष्टा की जाती है। एक उदाहरण लीजिये—

"ठगिनी क्या नयना झमकावै।
कविरा तेरे हाथ न आवै॥
कद्दू काटि मृदंग बनाया नीबू काटि मजीरा।
सात तरोई मङ्गल गावैं नाचै बालम खीरा॥
भैंस पदमिनी आसिक चूहा मेढ़क ताल लगावै।
चोला पहिरि गदहिया नाचै ऊँट बिसुन पद गावै॥
आम डार चढ़ि कछुआ तोड़ै गिलहरि चुनि चुनि खावै।
कहै कबीर सुनो भाई साधो बगुला भोग लगावै॥"

एक पद और देखिये—

"यहि बिरवा चीन्है जो कोय। जरा मरन रहिते तन होय॥
बिरवा एक सकल संसारा। पेड़ एक फूटल तिनि डारा॥

मध्यकि डारि चारि फल लागा। साखा पत्र गिनै को वाका॥
बेलि एक त्रिभुवन लपटानी। बाँधेते छूटै नहिं ज्ञानी॥
कहैं कबीर हम जात पुकारा। पंडित होय सो लेहु बिचारा॥"

दोनों पदों में से दूसरे पद में तो अर्थ-बोध की कुछ सामग्री है भी; किन्तु पहला पद विचित्र है, उसका अर्थ करना पानी को मथ कर घी निकालना है, तथापि ऊटपटांग अर्थ करनेवाले मिल ही जाते हैं।

एक पद कविवर सूरदासजी का देखिये—

"इन्द्र उपवन इन्द्र अरि दनुजेन्द्र इष्ट सहाय।
सुन्न एक जु थाप कीने होत आदि मिलाय॥
उभय रास समेत दिनमनि कन्यका ए दोइ।
सूरदास अनाथ के हैं सदा राखन वोइ॥"

यह पद भी जटिल है, बहुत सिर मारने पर ही तथ्य-लाभ की आशा हो सकती है। ब्राउनिङ्ग के वाक्य भी इसी प्रकार के हैं, प्रसंग के अनुसार उस पर गहन विचार करने ही से सिद्धि-लाभ की आशा हो सकती है।

हिन्दी-संसार में भाव-गाम्भीर्य्य की दृष्टि से कविवर केशवदास की रचनाओं का प्रधान स्थान है, उनके एक-एक पद्य के चार-चार, पाँच-पाँच अर्थ होते हैं। उनकी रचनाएँ इतनी पाण्डित्यपूर्ण होती हैं कि साधारण विद्या-बुद्धि का मनुष्य उनको समझ नहीं सकता; उनका वाग्वैचित्र्य भी विलक्षण है। शब्द-योजना और प्रौढ़ रचना में गंभीरताप्रिय कविपुंगव देव का भी विशेष स्थान है, उनकी भाव-प्रकाशन शैली भी विचित्र है। कहीं उनका शब्द-विन्यास इतना अपूर्व है कि वैसा कहीं अन्यत्र दृष्टिगोचर नहीं होता। *"गोरो गोरो मुख आज ओरो सो बिलानो जात', बिछौनन-बीच बिछी जनु बीछी', 'लाज के निगड़ गड़दार अड़दार चहूँ चौंकि चितवन चरखीन चमकारे हैं',*

आदि वाक्य-विन्यास कितने विलक्षण हैं। प्रयोजन यह कि यदि वाग्वैचित्र्य का विचार करने लगें, तो हिन्दी-संसार के अनेक कविपुंगवों में यह विशेषता दृष्टिगोचर होगी। कोई यदि लिखता है, *'तन जोति जुन्हाई उईसी परै', 'मुखचारुता चारु चुईसी परै'*, तो दूसरा लिखता है, *'गिरिते गरेते निज गोदते उतारै ना', 'गुलगुली गिल में गलीचा हैं, गुनीजन हैं, गजक गिजा है, औ चिरागन की माला है'* इत्यादि। प्रयोजन यह कि ब्राउनिङ्ग-सा वाग्वैचित्र्य अथवा विशेष प्रकार से भाव-व्यजंन-शैली संस्कृत और हिन्दी भाषा के अनेक लब्धप्रतिष्ठ और मान्य कवियों की रचना में पायी जाती है, परन्तु उनको 'मुहावरा' नहीं माना जाता। दोनों भाषाओं में उनकी गणना शब्दालंकार अथवा अर्थालंकार के भीतर होती है। इसलिए वेबस्टर साहब ने चतुर्थ भेद 'मुहावरे' का जो माना है, मेरा विचार है वह हिन्दी भाषा में गृहीत नहीं हो सकता।

यह कहा जा सकता है कि जो सर्वमान्य प्रतिष्ठित कविवृन्द हैं; जिनकी भाषा टकसाली मानी जाती है; और जिनकी रचनाओं, वाक्य-विन्यास और शब्द-योजना-प्रणाली को हम प्रमाण-कोटि में ग्रहण करते हैं, क्या वे लोग हमारे साहित्य-पथ के आदर्श नहीं हैं? यदि हैं तो उनके इस प्रकार के उदाहरणों और प्रयोगों को विशेषता क्यों न दी जावे? यह सत्य है, किन्तु वे ही तो रोज़मर्रा अथवा बोलचाल हैं। भाषा-तत्वविदों और आचार्य्यों ने बोलचाल पर दृष्टि रख कर जो वाक्य-रचना-प्रणाली उद्भावन कर दी है, जिस प्रकार शब्द-विन्यास का उदाहरण उपस्थित किया है, वे ही हमारे आदर्श हैं, और उसी आदर्श का नाम रोज़मर्रा अथवा बोलचाल है। जहाँ यह रोज़मर्रा अथवा बोलचाल साधारण वाक्य से आगे बढ़ कर लक्षणा अथवा व्यञ्जना द्वारा अपना भाव प्रकट करता है, और

शब्दार्थ से काम नहीं लेता, वहाँ वह मुहावरा हो जाता है। अतएव 'मुहावरा' के वही दो व्यापक स्वरूप गृहीत होते हैं, जिनका निरूपण मैं ऊपर कर आया हूँ।

वेबस्टर साहब का पाँचवाँ लक्षण अथवा भेद शब्द तक परिमित है; वाक्य रूप में वह गृहीत नहीं होता, अतएव वह मुहावरा नहीं माना जा सकता। यदि वाक्य-स्वरूप ही में उसे ग्रहण कर लें, तो उसका अन्तर्भाव बोलचाल में ही हो जावेगा। अतएव सब प्रकार से अन्तिम निर्णय यही होता है, कि हिन्दी में मुहावरे के व्यापक स्वरूप दो ही होंगे एक रोज़मर्रा अथवा बोलचाल और दूसरा स्वयं मुहावरा।

मुहावरों का आविर्भाव

मुहावरों की उत्पत्ति कैसे हुई, कैसे वह फूलती-फलती और विस्तृत होती है उसके साधन क्या हैं! उसमें परिवर्तन होता है या नहीं, और यदि होता है तो किस प्रकार! अन्य भाषा से मुहावरे लिये जाते हैं या नहीं, और यदि लिये जाते हैं, तो किन नियमों के साथ! इन बातों पर प्रकाश डालना आवश्यक ज्ञान पड़ता है। अतएव मैं अब इस ओर प्रवृत्त होता हूँ।

पहली बात मुहावरों का आविर्भाव अथवा उनकी उत्पत्ति है, वह विभिन्न कारणों और अनेक सूत्रों से होती है। मनुष्य के कार्य्य-क्षेत्र विस्तृत हैं; उसके मानसिक भाव भी अनन्त हैं। घटना और कार्य्य-कारण-परम्परा से जैसे असंख्य वाक्यों की उत्पत्ति होती है उसी प्रकार मुहावरों की भी। अनेक अवसर ऐसे उपस्थित होते हैं, जब मनुष्य अपने मन के भावों को कारण-विशेष से संकेत अथवा इंगित किम्वा व्यंग द्वारा प्रकट करना चाहता है। कभी कई एक ऐसे भावों

को थोड़े शब्दों में विवृत करने का उद्योग करता है, जिनके अधिक लम्बे चौड़े वाक्यों का जाल छिन्न करना उसे अभीष्ट होता है। प्रायः हास-परिहास, घृणा, आवेग, उत्साह आदि के अवसर पर उस प्रवृत्ति के अनुकूल वाक्य-योजना होती देखी जाती है। सामयिक अवस्था और परिस्थिति का भी वाक्य-विन्यास पर बहुत कुछ प्रभाव पड़ता है। और इसी प्रकार के साधनों से मुहावरों का आविर्भाव होता है। अपने 'वर्डस् एण्ड इडियम' नामक ग्रन्थ में श्रीमान् स्मिथ यह लिखते हैं—

* "जिस प्रकार शब्दों के लाक्षणिक अर्थ होते हैं, ठीक उसी प्रकार बहुत से शब्द-समुदायों के भी लाक्षणिक अर्थ मिलते हैं। जिस स्थल-विशेष से उनकी उत्पत्ति हुई है, देखा जाता है उनका व्यवहार उनके विपरीत अर्थों में होता है। प्रायः ये लाक्षणिक प्रयोग स्पष्ट होते हैं। पर बहुत से साधारणतया प्रचलित मुहावरों का प्रयोग उनके उत्पत्ति-स्थल तथा उनके आरंभिक अर्थ के ज्ञान बिना ही किया जाता है।"

† "वास्तव में कुछ ऐसे मुहावरे भी हैं, जिनका पूर्ण निश्चित् विवरण देने में विशेषज्ञ भी असमर्थ हैं। इस प्रकार के असम्बद्ध वाक्य-समूह हमारी

---

* The way in which words take on metaphorical meaning is one of the best known of linguistic phenomena; the same thing happens to many phrases which also acquire figurative meaning and are used for acts or circumstances more or less analogous to those which gave them birth. Often these figurative idioms are more or less transparent. But many of our most current idiomatic phrases we use with little or consciousness of their original use and signification. (Words and Idioms pp. 185—6)

† Indeed, there are a number of idiomatic phrases for

भाषा के अनेक मुहावरों की विचित्रता हैं, और इस बात के परिचायक हैं कि मनुष्य-मस्तिष्क में निष्फल तथा असम्बद्ध बातों का भी बहुत कुछ अंश है, एवं मनुष्य-समुदाय असंगत तथा उच्छृंखल प्रयोगों को प्यार करता और तर्क के सामने झुकने में कुछ आनाकानी करता है। जिसके परिणाम-स्वरूप कभी-कभी बन्धन-विच्छेद करके वह मुहावरेवाली भाषा का प्रयोग कर बैठता है। अपने शब्दों में स्पष्टता देने के लिए हम लोग उन्हें कुछ अर्थ देना चाहते हैं—तथापि हम लोग कभी-कभी बेमतलब के शब्दों को ही प्रधानता देते दिखाई पड़ते हैं। ऐसा मालूम होता है जैसे वह असम्बद्धता ही कभी कभी हमारे ध्यान को आकर्षित करती तथा स्पष्टता एवं सुन्दरता को बढ़ाती है"।

※ २ "लाक्षणिक अर्थवाले एवं व्याकरण-सम्बन्धी मुहावरों की अधिक संख्या साधारण व्यवसायों तथा प्रचलित खेलों से ली गई है। मनुष्य के प्रत्येक व्यवसायों में उससे सम्बन्ध रखनेवाली वस्तुओं तथा कठिनाइयों के

---

which even specialists have not been able to find a completely certain explanation. This expressiveness of irrelevant phrases is a curious feature of many of our idioms and seems to show that there is a certain irrelevance in the human mind, a certain love for the illegical and absurd, a reluctance to submit itself to reason, to which break loose now and then, and finds expression for itself in idiomatic speech. We like our words to have a meaning for we like them to be vivid; but we sometimes seem almost to prefer inappropriate meanings, as if their very irrelevance appealed to the imagination and added to their vividness and charm. (Words and Idioms pp. 186-187).

* 2 Metaphorical idioms, and indeed, many Grammatical idioms also come to us in great numbers from humble occupations and popular forms of sport, each kind of human

वर्णन के लिए अपने शब्द-समुदाय तथा उद्देश्य होते हैं। इन व्यवसायिक भाषा के केवल शब्द ही नहीं, वरन् मुहावरे तक हमारी नियमित भाषा में आ जाते हैं। हमारी नियमित भाषा शब्द-निर्माण की कठिनाइयों के कारण अन्य भाषा-निर्मित मुख्य-मुख्य व्यवहारात्मक तथा प्रचलित शब्द-समुदायों को ग्रहण कर लेती है। इसके अतिरिक्त इसका कारण यह भी है कि जीवन के प्रत्येक स्थल की अनेक बातों को उचित रूप से प्रकाश करने में वह समर्थ नहीं होती। एक यह भी कारण है कि साधारण व्यवसाय तथा शिकार आदि में लगे हुए मनुष्यों द्वारा निर्मित मुहावरे स्पष्ट, सजीव, सुन्दर, तथा बोलचाल के उपयुक्त होते हैं और उनका आवेशमय आलाप में स्वागत किया जाता है। नाविक, शिकारी, मज़दूर, रसोइये, कभी-कभी ज़ोरदार आज्ञा तथा चेतावनी देने में ऐसे शब्द-

---

activity has its own vocabulary, its terms to describe its materials, its methods, its difficulties and its aims and from these vocabularies not only words, but idiomatic phrases often make their way into the standard language. Our speech is never adequate to express the inexhaustible richness of life, with all its relations and thoughts, and feelings ; the standard language is hampered, too, by many impredimènts in the always difficult process of word-formation, and is therefore ready to seize on any of the special terms which are already current, and to which it can give the wider significance it desires. Then too the idioms and happy phrases invented by people engaged in popular sports and occupations being terse, colloquial, vivid and charged with eager life, are just the kind that are sought for and welcomed in animated speeeh. Sailors at sea, hunters with their dogs, labourers in the fields, cooks in their kitchens, needing in some crisis a

समुदायों की रचना कर डालते हैं, जो स्पष्ट तथा घरेलू होते हैं और उनके सामने की वर्तमान सामग्रियों से गृहीत होते हैं। ये आलंकारिक वाक्य-समूह उनके अन्य साथियों का ध्यान आकर्षित करते हैं, जो अपने व्यवसाय तथा शिकार आदि की भाषा में उनको स्थान देते हैं। शीघ्र ही इनमें से कुछ शब्द-समुदाय विशेष तथा विस्तृत अर्थों का प्रतिपादन करने लगता है। और कभी सुविधा के लिए कभी बातचीत में हँसी-मज़ाक का पुट देने के लिए भिन्न परिस्थितियों में प्रयुक्त होता है। नाविक जल-सम्बन्धी शब्द-समुदाय को स्थल-सम्बन्धी अपनी अवस्थाओं के वर्णन में व्यवहार करता है, मछुआ जीवन-सम्बन्धी बातें मछली मारने के शब्दों में प्रकट करता है। एक गृहस्थ स्त्री अपने भाव-प्रकाशन में पाकशाला के शब्दों की सहायता लेती है और एक शिकारी शिकार के शब्दों में अपने भाव प्रकाशित करता है। इसी प्रकार

---

vigorous phrase of communal or warning or reprobation, have often hit on some expressive collocation of words, some vivid and homely metaphor from the objects before them; and these phrases and metaphors striking the fancy of their companions have been adopted into the vocabulary of their special sport or occupation. Soon a number of these phrases are found to be capable of a wider use; often for convenience, often with a touch of humour, they come to be applied to analogous situations; a sailor applies his sea phrases to the predicaments iu which he finds himself on land; the fisherman (as indeed we see in the gospels) talks of life in terms of fishing, the housewife helps herself out with metaphors from her kitchen or her farmyard; the sportsman expresses himself in the idioms of his sport, the little by little the most useful of these phrases make their way by the means

शनैः शनैः बहुत से भड़कदार तथा लाभदायक शब्द साधारण बोलचाल से नियमित भाषा में चले आते हैं और सब उन्हें समझने लगते हैं"

※ 'शब्द-रचना के समान शब्द समुदाय की रचना भी मुख्यतया अशिक्षित समाज से हुई है। हमारे भड़कदार तथा सजीव शब्दों के समान, हमारी भाषा के अच्छे मुहावरे पुस्तकालय या बैठकखाने तथा चमकीले तमाशागाहों से उत्पन्न न होकर कारख़ानों, रसोईघरों, खेत तथा खलिहान आदि में निर्मित हुए हैं।"

श्रीमान् स्मिथ ने जो कुछ अँगरेज़ी मुहावरों के आविर्भाव के विषय में कहा है, थोड़े अन्तर से वे ही बातें हिन्दी मुहावरों के लिए भी कही जा सकती हैं। इसलिए ऊपर के अवतरणों से आशा है कि प्रस्तुत विषय पर बहुत कुछ प्रकाश पड़ेगा। अब कुछ उदाहरणों को देकर मैं इस विषय को और स्पष्ट करूँगा।

संस्कृत का एक मुहावरा है—'काष्ठ प्रदान'। श्रीमान् जीवानन्द विद्यासागर सम्पादित पंचतंत्र के ८५ पृष्ठ में इसका प्रयोग हुआ है। प्रतप्त कौलिक अपने मित्र रथकार से कहता है—

"यदि त्वं मां सुहृदंमन्यसे, ततः काष्ठप्रदानेन प्रसादः क्रियताम्"

यदि तुम मुझको मित्र मानते हो तो 'काष्ठ प्रदान' करने की कृपा करो।' विद्यासागरजी ने 'काष्ठ प्रदान' का अर्थ यह लिखा है—

---

which have been described in a former chapter, from popular speech into the standard language and come to be universally understood. (Words and Idioms pp. 188—189).

※ "The phrase-making, like the word-making, faculty belongs pre-eminently to the unlettered classes, and our best idioms, like our most vivid and living words, come to us, not from the library or the drawingroom or the "gay-pattere," but from the workshop, the kitchen and the farm-yard. (Words and Idioms, p. 212)

"काष्ठप्रदानेन चितारचनेन इत्यर्थः"

डाक्टर यफ़ कीलहार्न पी० एच० डी० अपने पंचतंत्र के नोट्स में (पृष्ठ १८) यह लिखते हैं—

'The offering of wood' for the preparation of funeral pile.

"चिता बनाने के लिए लकड़ी दीजिये" (वा जमा कीजिये)

गोडबोले महोदय उक्त ग्रन्थ के अपने नोट्स में (पृष्ठ ६२) यह अर्थ लिखते हैं—

Let a favour be done by giving (me) wood, by burning me.

"मुझे जलाने के लिए लकड़ी देने की कृपा कीजिये"

तीनों अर्थों में अभिधा शक्ति से काम नहीं लिया गया है, लक्षणा अथवा व्यंजना से ही भाव ग्रहण करने की चेष्टा की गई है। तीनों का तात्पर्य्य अन्तिम संस्कार है। अन्तिम संस्कार करने के लिए चिता की आवश्यकता होती है, और चिता लकड़ी संग्रह करके बनाई जाती है, अतएव इस कार्य्य-परम्परा पर दृष्टि रखकर कौलिक 'काष्ठ प्रदान' शब्द का प्रयोग करता है और उसके द्वारा अन्त्येष्टि-क्रिया करने की सूचना देकर यह बतलाता है कि अब मेरा अन्तिम समय समीप है। इतने भावों का द्योतक एक छोटा वाक्य 'काष्ठ प्रदान' है, इसके द्वारा मुहावरे के प्रयोग और उसके उत्पत्ति के कारण पर बहुत कुछ प्रकाश पड़ता है। इस 'काष्ठ प्रदान' वाक्य की सार्थकता उस समय और बढ़ जाती है जब उस क्रिया का ध्यान किया जाता है, जो किसी मृतक के अन्तिम संस्कार के समय की जाती है। जब मृतक जल जाता है, और संस्कारक्रिया समाप्तप्राय होती है, उस समय शव के साथ जानेवाले अपने-अपने स्थान से उठते हैं, और

कतिपय काष्ठखण्ड सहयोगसूचन और मृतक-प्रति स्नेहप्रदर्शन के लिए चिता में डालते हैं। तत्पश्चात् स्नान करते और तिलाञ्जलि देकर घर वापस आते हैं। मेरा विचार है कि 'काष्ठ प्रदान' मुहावरे की उत्पत्ति इसी क्रिया को देख कर हुई है। जो अर्थ विद्वानों ने ऊपर किये हैं, वे अस्पष्ट हैं और उनके द्वारा उस मुहावरे पर उतना प्रकाश नहीं पड़ता जितना इस 'काष्ठ प्रदान' की प्रचलित परम्परा द्वारा।

पंचतंत्र के पृष्ठ २३ में एक वाक्य है-"*अर्द्धचन्द्रम् दत्वा निस्सारितः*" अर्धचन्द्र देना, एक मुहावरा है, इसका अर्थ है—गरदनिया देना, अथवा गला पकड़ कर बाहर निकाल देना। विद्यासागर महाशय इसका अर्थ यह करते हैं—

"अर्द्धचन्द्रः गलहस्त इत्यर्थः"

और व्याख्या यों करते हैं—

"अर्द्धचन्द्रस्य अर्द्धचन्द्राकारकरस्य दानेन" (सरल पंचतंत्र पृ० २९)

गोडबोले महोदय अपने अँगरेजी नोट्स में इसका यह अर्थ बतलाते हैं—

अर्द्धचन्द्रः-The bent into a semicircle like the crescent of the moon for the purpose. of seizing, चन्द्रार्द्धः means literally 'the half moon' and figuratively to sieze between the thumb and the forefinger (both stretched out). P. 36-37. (पंचतंत्र)

"हाथ को बालचन्द्र की भाँति गला पकड़ने के लिए अर्द्ध वृत्ताकार रूप में परिणत करना।"

"इसका शब्दार्थ आधा चन्द्रमा है, जिसका व्यंगार्थ यह है कि अँगूठा और तर्जनी दोनों को गला पकड़ने के लिए (अर्द्धचन्द्राकार) फैलाना"।

प्रयोजन यह कि गरदनिया, देने के लिए जब हम किसी का गला पकड़ते हैं, तो हाथ के अँगूठे और तर्जनी के फैलने पर उसके मध्य का आकार अर्धचन्द्र का सा हो जाता है। अतएव यह स्पष्ट है कि 'अर्द्धचन्द्र देना' मुहावरे की उत्पत्ति इसी आधार से हुई।

'दाँतकाटी रोटी' एक मुहावरा है, जिनमें परस्पर बड़ी घनिष्ठता और एकान्त प्रीति होती है, उनके लिए इस मुहावरे का प्रयोग होता है।

विशेष सम्बन्ध होने पर भारतीय हिन्दू एक दूसरे का स्पर्श किया हुआ भोजन ग्रहण करते हैं, साथ बैठकर खाना भी साधारण बात नहीं। अपनी थाली में किसी बड़े प्यारे ही को खिलाया जाता है। ऐसे कोई मिलेंगे जो एक दूसरे के दाँत की काटी रोटी खा सकते हों, ऐसा वे ही लोग करेंगे जिनकी आत्मीयता अथवा प्रेम की पराकाष्ठा हो गयी हो। इसी बात पर दृष्टि रखकर 'दाँतकाटी रोटी' मुहावरे की उद्भावना हुई है।

'दाँत निकालना' भी एक मुहावरा है। इसका अर्थ है—दीनता दिखलाना, गिड़गिड़ा कर किसी वस्तु के लिए प्रार्थी होना। हम लोग बराबर देखते हैं कि जब कोई भूखा मनुष्य, अथवा कोई अर्थी जन किसी से अन्न की अथवा किसी दूसरी वस्तु की दीन बनकर प्रार्थना करता है, तो उस समय उसके दाँत निकल आते हैं। इसी को लक्ष्य कर 'दाँत निकालना' मुहावरे की सृष्टि हुई है।

श्रीमान् स्मिथ ने अनेक मुहावरों के आविर्भाव के विषय में जो कुछ लिखा है, उसका कुछ अंश भी प्रस्तुत विषय के विशेष स्पष्टीकरण के लिए यहाँ उद्धृत किया जाता है—

* "शिकार, शिकारी कुत्ते तथा घोड़ों से हमारी बोलचाल की भाषा में

* From the chase, from hounds and horses, many

बहुत से शब्द आ गये हैं, अन्य सभी पशुओं की अपेक्षा घोड़े तथा कुत्तों से लिये गये मुहावरे अधिक हैं—

"To rain cats and dogs".

शब्दार्थ—'बिल्ली और कुत्ते बरसना'

भावार्थ—'मूसलधार पानी बरसना'

"To lead a cat and dog life."

शब्दार्थ—'बिल्ली और कुत्ते का सा जीवन बिताना'

भावार्थ—'तुच्छ जीवन व्यतीत करना'

* "ये दो मुहावरेदार प्रयोग दो पालतू पशुओं (कुत्ते और बिल्ली) की परम्परागत शत्रुता का संकेत करते हैं—"

"To show the white feather."

शब्दार्थ—'सुफेद पंख दिखलाना'

भावार्थ—'हार मानना'

† "इस मुहावरे की उत्पत्ति मुर्गों की लड़ाई पर दृष्टि रख कर हुई है, क्योंकि शिकारी पक्षियों में श्वेत पंख का होना पालन-पोषण में त्रुटि होने का द्योतक है।"

"To lick into shape."

"चाट कर आकार देना"

---

phrases have come to enrich our colloquial speech, and of all animals the dog and the horse play largest parts in idiom. (Words and Idioms. p. 195).

* Refer to the traditional enimity between these two domestic animals. (Words and Idioms. p. 200).

† A white feather in the tail of a game bird being a sign of bad breeding. (Words and Idioms. p. 202).

"Unlicked cub."

"बिना चाटा हुआ बच्चा"

※ "इनकी उत्पत्ति इस यूरोपीय दन्तकथा के आधार से हुई है कि रीछ इसी प्रकार अपने बच्चों के आकार की रचना करते हैं।"

"To hide ones head in the sand."

"बालू में अपने शिर को छिपाना"

† "इसकी उत्पत्ति घबड़ाए हुए शुतुर्मुर्ग के आचरण से हुई है।"

"Crocodile's tears."

"घड़ियाल के आँसू"

+ "यह इस विश्वास से उत्पन्न हुआ है कि मनुष्यों को भक्षण करते समय घड़ियाल आँसू बहाते हैं।"

"True blue."

"असली नीला"

× "इसकी उत्पत्ति कोवेनान्टर्स के समय से हुई, जब राजकीय रक्तवर्ण के विरुद्ध नील वर्ण को ही उन्होंने अपने लिए स्वीकार किया।"

※ Are drived from the notion of European folklore that bears give form to their cubs in this manner.

† 'Is from the supposed behaviour of embarrassed ostriches.'

+ 'Come from the belief that crocodiles shed tears while eating human beings.' (Words and Idioms. p. 234).

× 'Comes from the times of the Covenanters, who adopted blue as their colour in contradistinction to the royal red.' (Words and Idioms. p. 221).

मुहावरों का आविर्भाव और मूल भाषा एवं अन्य भाषा

मुहावरों का आविर्भाव कैसे होता है, उसके क्या हेतु और साधन हैं, इसका उल्लेख मैं थोड़े में कर चुका। अब मैं यह दिखलाऊँगा कि किस प्रकार वे मूल भाषा अथवा अन्य भाषा के आधार से किसी भाषा में प्रचलित हो जाते हैं। पहले मूल भाषा को लीजिये। चलती भाषाओं में बहुत से ऐसे मुहावरे मिलते हैं, जो कहीं से प्रसूत जान पड़ते हैं, किन्तु वास्तव में वे अनेक परिवर्तनों के परिणाम होते हैं, और उनका अस्तित्व मूल भाषा में मिलता है। अतएव किसी भाषा के मुहावरों के आविर्भाव का प्रथम क्षेत्र मूल भाषा है। हिन्दी भाषा के अनेक मुहावरे संस्कृत मुहावरों के अनुवाद ज्ञात होते हैं, किन्तु वास्तव में वे अनुवाद नहीं हैं। संस्कृत से प्राकृत, प्राकृत से अपभ्रंश; और अपभ्रंश से हिन्दी में आये हैं। कुछ ऐसे मुहावरे नीचे लिखे जाते हैं; किसी किसीका प्राकृत रूप भी लिख दिया गया है।

संस्कृत मुहावरे	हिन्दी मुहावरे
कर्णे लगति चैकस्य प्राणैरन्यो वियुज्यते	कान लगना
पदं मूर्ध्नि समाधत्ते केसरी मत्तदन्तिनः	शिर पर पाँव रखना
अधुना मन्मुखमवलोकयसि	मुँह देखना
पदमेकं चलितुं न शक्नोति	पगभर न चल सकना
शिरस्ताडयन् प्रोवाच	शिर पीट कर कहना
घासमुष्टिमपि न प्रयच्छति	मूठी भर घास
कश्चित् तस्य ग्रीवायां लगति	गले लगना
कर्णमुत्पाटयामि ते	कान उखाड़ना
तत्र कतिचिद्दिनानि लगिष्यति (पंचतंत्र)	वहाँ कुछ दिन लगेंगे
नगरगमनस्य मनः कथमपि न करोति (शकुन्तला नाटक)	मन न करना

संस्कृत	प्राकृत	हिन्दी
न खलु दृष्ट मात्रस्य तवाङ्कं समारोहति	ण क्खु दिट्ठमेतस्स तुह अङ्कं समारोहदि	गोद में बैठना
अन्यथावश्यं सिञ्चतं मे तिलोदकम्	अण्णहा अवस्सं सिंचध तिलोदअं (शकुन्तला नाटक)	तिलोदक देना
जलाञ्जलिर्दीयते	जलंजली दिज्जदि	जलांजलि देना
भणोत् उन्मुद्रितया जिह्वया तद्दीयते पिशुनलोक	भणउम्मुद्दिआये जीहाये तादिज्जये पिसुणलोअ	खुली जीभ से कहना
मुखेषु मुद्रा	मुहेसु मुद्दा (कर्पूरमञ्जरी)	मुँहपर मोहर लगाना

किस प्रकार मूलभाषा के मुहावरे शनैः शनैः परिवर्तित होकर तत्प्रसूत प्रचलित भाषाओं में व्यवहृत होते हैं, यह बात ऊपर के वाक्यों पर विचार करने से भली भाँति हृदयंगम होगी। मुहावरों के आविर्भाव के इतिहास में सबसे पहले यही प्रणाली सामने आती है, जितने हेतु मुहावरों के आविर्भाव के हैं, उन सबमें मैं इसको प्रधान मानता हूँ। इसके बाद उन मुहावरों का स्थान है, जो किसी अन्य भाषा से गृहीत होते हैं। ऐसे मुहावरे मुख्य रूप में अल्प मिलते हैं, अधिकांश वे पूर्ण अनुवादित किम्वा अर्द्ध-अनुवादित रूप में देखे जाते हैं। भिन्न-भिन्न जातियों के साहचर्य्य, परस्पर आदान-प्रदान, जेता और विजित जाति के विविध सम्बन्ध-सूत्रों से जैसे बहुत से व्यावहारिक वाक्य, विचार, आदर्श और नाना सिद्धान्त एक भाषा के दूसरी भाषा में प्रवेश कर जाते हैं, उसी प्रकार कुछ मुहावरे भी। अपेक्षित भाव का अभाव, माधुर्य्य की न्यूनता और लेखनशैली की वांछित हृदयग्राहिता भी एक '*असमृद्ध भाषा*' को दूसरी समृद्ध भाषा से मुहावरे ग्रहण करने के लिए विवश करती है। यद्यपि एक भाषा

के मुहावरे का अनुवाद दूसरी भाषा में प्रायः नहीं हो सकता, फिर भी यथासम्भव यह कार्य्य किया जाता है। श्रीमान् स्मिथ लिखते हैं–

*"अँगरेजी भाषा में स्वाभाविक व्यवहार से कुछ शब्द-समुदायों की रचना हो गई है, जिनका यदि हम अन्य भाषाओं में अनुवाद करना चाहें, तो हमें भाव-द्योतक शब्द-समुदाय ही देना पड़ेगा। यदि हम शाब्दिक अनुवाद करेंगे तो सफल न हो सकेंगे। वास्तविक मुहावरे के जाँचने की कसौटी अनुवाद है, कहीं-कहीं शब्दशः अनुवाद करने में साधारण शब्द-समुदाय के भी मुहावरे-द्योतक भाव नष्ट हो जाते हैं।"

†"अन्य भाषाओं के अधिकतर मुहावरों का अनुवाद यदि हम अपनी भाषा में ठीक-ठीक कर लेवें तो भी इससे उसकी पूर्ति न होगी; उस समय तक जब तक कि उन्हें अपनी भाषा के प्रयोगों के अनुसार न बना लें।"

तथापि यह स्वीकार करना पड़ता है, मुहावरों का भावानुवाद तो होता ही है, शाब्दिक अनुवाद भी होता है, और अधिकतर होता है। जहाँ मुहावरों के पूर्ण अथवा अर्द्ध-शाब्दिक अनुवाद से काम चल जाता है, वहाँ भावानुवाद की ओर दृष्टि जाती ही नहीं। शाब्दिक

---

* "Our speech is full of habitual phrases, which, if translated into a foreign language, must be rendered in some equivalent phrase, not in a word-for-word translation. This test of a translation is a good touchstone of idiom. Even the simplest phrasal collocation would lose its idiomatic force in a word-for-word translation. (Words and Idioms. pp. 176-177)

† "With the greater number of foreign idioms, however a literal translation will not suffice; they must be re-embodied in the run and rhythm of our speech, given a metallic ring to make them current, and stamped perhaps for this purpose with another image. (Words and Idioms. p. 402)

अनुवाद में असफलता होने पर भावानुवाद की शरण ली जाती है। श्रीमान् स्मिथ स्वयं एक स्थान पर लिखते हैं—

*"बाइबिल के अँगरेज़ी अनुवादों का अँगरेज़ी भाषा पर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा है। कई शताब्दियों तक इङ्गलैण्ड में कोई पुस्तक इतनी अधिक नहीं पढ़ी गई, जितनी बाइबिल। बहुत से शब्द और मुहावरे, जो बहुधा हेब्रू और ग्रीक शब्दों के अक्षरशः अनुवाद हैं—हमारी भाषा में सम्मिलित कर लिये गये हैं"

गुणग्राहिता योग्यता-लाभ की कुंजी है, रत्नचय का संग्रह समृद्धता का प्रधान उपकरण है। सद्वस्तु की आकांक्षा सफलता-लाभ का साधन है, और कुसुमचयन सौंदर्य्यप्रियता की सामग्री। उन्नत जातियों में इन गुणों का विकास पूर्ण रूप में पाया जाता है; वे उनसे लाभ उठाते हैं, और जीवन के उपयोगी साधनों को इनके द्वारा अलंकृत करते रहते हैं। अँगरेज़ जाति भी एक समुन्नत जाति है, इसीलिए उनमें भी इस प्रकार के गुणों का विकास उचित मात्रा में पाया जाता है। यही कारण है कि उनकी मातृभाषा को हम उपयोगी उपकरणों से सुसज्जित पाते हैं, और उसमें अन्य भाषाओं के बहुत से सुन्दर मुहावरे, रत्न-समान जगमगाते मिलते हैं। इन रत्नों को उन लोगों ने अनेक स्थानों से संग्रह किया है, और अपनी भाषा में उनको उचित स्थान दिया है। कहीं वे मुख्य रूप में पाये जाते हैं, कहीं उनमें

---

* "The immense influence on our language of the English translations of the Bible has often been remarked on; for centuries the Bible has been the book which has been most read and most quoted in England; not only many words, but many Idiomatic phrases (often the literal translations of Hebrew or Greek idioms) have been added to our language from its pages. (Words and Idioms. p. 223)

उचित परिवर्तन मिलता है। अपने 'वर्ड्‌स ऐण्ड इडियम' नामक ग्रंथ में मिस्टर स्मिथ ने इसका बड़ा विस्तृत वर्णन किया है। उसके विशेष अंशों को यदि मैं इस भूमिका में उठा पाता, तो उससे आप लोगों का विशेष मनोरंजन होता, किन्तु स्थान-संकोच के कारण मैं ऐसा न कर सका। अँगरेज़ी में किस उदारता से अन्य भाषाओं के मुहावरे ग्रहण किये गये हैं, और उसमें कितनी व्यापकता है; मिस्टर स्मिथ इस विषय में यह कहते हैं—

* "हमारी भाषा में अनुवादित मुहावरों के अतिरिक्त लैटिन, फ्रेंच तथा इटली के ऐसे मुहावरों की भी अधिक संख्या है, जिन्हें हमने ज्यों का त्यों बिना अपनी भाषा का रूप दिये ही ले लिया है।"

फ्रेंच के निम्न लिखित मुहावरे ऐसे हैं, जो बिना किसी परिवर्त्तन के ज्यों के त्यों अँगरेज़ी में ले लिये गये हैं—

Vice Versa	Coup'dètat	tite-à-tète
विपरीत क्रम से	राजनीतिक चाल	दो मित्रों की बातचीत

Mutatis Mutandis—
आवश्यक परिवर्त्तन के उपरान्त

अनुवादित रूप में निम्नलिखित मुहावरे फ्रेंच से अँगरेज़ी में आये हैं। उनकी अनुवाद-प्रणाली क्या है? और किस प्रकार भाव के आधार पर उनकी सृष्टि हुई है, ये बातें उनके शब्दार्थ और भावार्थ पर विचार करने से भलीभाँति हृदयंगम हो सकती हैं—

---

* In addition to the idioms which have been translated into English, there are a large number of Latin, French, and even Italian idioms which we have borrowed without assimilating them in any way. (Words and Idioms. p. 248).

फ्रेञ्च वाक्य शब्दार्थ सहित	अँगरेज़ी वाक्य	अँगरेज़ी वाक्य का शब्दार्थ	भावार्थ
'Faire d'unc pierre duex coups'. एक पत्थर से दो चिड़ियों का मारना	'To kill two birds with one stone.'	'एक पत्थर से दो चिड़ियों का मारना'	'एक साधन द्वारा दो कार्य होना'
'Porter aux unes'. 'आकाश तक ढो ले जाना'	'To praise to the skies.'	'आकाश तक प्रशंसा करना'	'प्रशंसा का पुल बाँधना'
'Faire fausee route'. 'ग़लत रास्ता पकड़ना'	'To take the wrong turning'.	'ठीक मार्ग न ग्रहण करना'	'पथभ्रष्ट होना'
'Rire entre cuir et chair'. 'चमड़े और माँस के बीच में हँसना'	'To laugh between the sleeves?	'आस्तीन के बीच में हँसना'	'छिप कर हँसना'

हिन्दी भाषा में किस प्रकार अन्य भाषा के मुहावरे यथातथ्य अथवा अनुवादित हो कर आये हैं, अब मैं उनके उदाहरण दूँगा। उर्दू भाषा कोई अन्य भाषा नहीं, वह हिन्दी भाषा का रूपान्तर मात्र है, उसमें अरबी और फ़ारसी के अनेक मुहावरे मुख्य रूप में

अधिकता से प्रयुक्त होते हैं। शुद्ध हिन्दी में भी इस प्रकार के प्रयोग होते हैं, परन्तु कम। मौलाना आज़ाद अपने 'आबेहयात' नामक पुस्तक के पृष्ठ ४१ में लिखते हैं—

"एक ज़बान (भाषा) के मुहावरे को दूसरी ज़बान में तरजुमा (अनुवाद) करना जायज़ (उचित) नहीं, मगर इन दोनों ज़बानों (फ़ारसी और उर्दू) में ऐसा इत्तिहाद (प्रेम) हो गया है, कि यह फ़र्क़ भी उठ गया और अपने कारआमद (उपयोगी) ख़्यालों को अदा करने के लिए दिलपिज़ीर (हृदय-ग्राही) और दिलकश (मनोहर) और पसंद (प्रिय) मुहावरात जो फ़ारसी में देखे गये उन्हें कभी बजिन्स और कभी तरजुमा करके ले लिया गया।"

दिल दादन—फ़ारसी मुहावरा है। अर्थ है,—'आशिक़ होना'। मीर साहब इस मुहावरा को इसी रूप में यों बाँधते हैं—

'ऐसा न हो दिलदादः कोई जाँ से गुज़र जाय,'

तरदामन—फ़ारसी मुहावरा है। शब्दार्थ है 'पुरगुनाह' (पापी)। मीरदर्द साहब कहते हैं—

'तरदामनी प शेख हमारी न जाइयो।
दामन निचोड़ दूँ तो फिरिश्ते वज़ू करें॥'

चिराग़े सहरी—फ़ारसी मुहावरा है। शब्दार्थ है,—'प्रभातदीप,' भावार्थ है; 'कुछ क्षण का मेहमान,' (मरणोन्मुख)। मीर साहब कहते हैं—

'टुक मीर जिग़र सोख्ता की जल्द ख़बर ले।
क्या यार भरोसा है चिराग़े सहरी का॥'

'*पुम्बा दहन*' और '*दराज़ ज़बान*' तथा '*चिराग़े मुरदा*' भी फ़ारसी के मुहावरे हैं। 'पुम्बा दहन' का शब्दार्थ है 'तूल पूरित मुख', भावार्थ है;—'कम बोलनेवाला'। 'दराज़ ज़बान' का अर्थ है,—'लम्बी

जीभवाला', भावार्थ है;–'बकबक करनेवाला', (बे अदब)। 'चिराग़े मुरदा' का अर्थ है,–'मृत प्रदीप'; भावार्थ है;–'बुझा हुआ दीया'।

ज़ौक कहते हैं—

> 'शीशये मैकी यह दराज़ ज़बान।
> उस प है यह सितम कि पुम्बादहाँ॥'
> × × × ×
> 'शमामुर्दा के लिये है दमे ईसा आतिश।
> सोज़िशे इश्क से जिन्दा हों मुहब्बत के कतील॥'

ऊपर के शेरों में फ़ारसी मुहावरे शुद्ध रूप में ही गृहीत हुए हैं; उनमें कोई परिवर्त्तन नहीं हुआ है। उर्दू शेरों में इस प्रकार के प्रयोगों का आधिक्य है। हिन्दी रचनाओं में भी इस प्रकार के उदाहरण मिलते हैं—

> 'हमचश्मों में किया क्यो मुझे ऐ मेरे प्यारे रुसवा।'
> × × × ×
> 'ज़ीस्त नहीं है सरासर बस सर गरदानी है यह।'
> × × × ×
> 'है ज़िन्दा दर गोर वह जिसको मरने का आज़ार न हो।'
> × × × ×
> 'वहीं दौड़े उठ के पियादःपा तुम्हें याद हो कि न याद हो।'
> × × × ×
> 'यहाँ तो जाँ बलब है जब से सावन की चढ़ाई है।'
>
> —फूलों का गुच्छा (हरिश्चन्द्र)

जिन वाक्यों पर लकीर खिँची है, वे सब शुद्ध फ़ारसी मुहावरे हैं, और अपने मुख्य रूप ही में ऊपर के पद्यों में प्रयुक्त हैं। पूर्ण अथवा अर्द्ध अनुवाद के रूप में भी हिन्दी में बहुत से मुहावरे अरबी

और फ़ारसी से गृहीत हैं। जिनमें फ़ारसी मुहावरों का शुद्ध रूप में प्रयोग हुआ है; 'आबेहयात,' से मैंने ऊपर ऐसे उर्दू पद्यों को उठाया है, उसी ग्रंथ से कुछ अनुवादित मुहावरों के पद्यों को भी नीचे लिखता हूँ।

फ़ारसी के मुहावरे	हिन्दी अनुवाद
'बर आमदन'	'बर आना'
'बसर आमदन'	'बसर आना'

उदाहरण—

सौदा—'इस दिल के तुफ़े आह से कब शोला बर आये।
अफ़ई को यह ताक़त है कि उससे बसर आये॥'

फ़ारसी मुहावरे	हिन्दी अनुवाद	भावार्थ
'दर आमदन'	'दर आना'	'घुस आना'
'पैमाना पुर करदन'	'पैमाना भरना'	'मार डालना' 'समाप्तिपर होना'
'अज़ जामा बेरूँ शुदन'	'जामा से बाहर होना'	'आपे से बाहर होना'
'दिल अज़ दस्त रफ़तन'	'हाथसे दिल जाता रहना'	'बे अख़्तियार हो जाना'

उदाहरण—

ज़ौक़—'याँ तक न दिल आज़ार ख़लायक़ हो कि कोई।
'मलकर लहू मुँह से सफ़े महशर में दर आये॥'

× × × ×

सौदा—'साक़ी चमन में छोड़ के मुझको किधर चला।
'पैमाना मेरी उम्र का ज़ालिम तू भर चला॥'

ज़ौक़—'कब सबा आई तेरे कूचे से अय यार की मैं।
जो हुबाबे लबे जू जामा से बाहर न हुआ।'

× × × ×

सौदा—'हाथ से जाता रहा दिल देख महबूबाँ की चाल।'

ये उदाहरण ऐसे हैं जिनमें पूर्ण अनुवाद नहीं हुआ है; फ़ारसी मुहावरे का कोई न कोई शब्द उनमें मौजूद है। एक उदाहरण ऐसा देखिये जिसमें पूरे मुहावरे का अनुवाद है। 'अर्क़ अर्क़ शुदन' एक फ़ारसी मुहावरा है; उसका अनुवाद 'पानी पानी हो जाना' किया गया है—ज़ौक़ का एक शेर है—

'आग दोज़ख की भी हो जायगी पानी पानी।
जब ये आसी अरक़े शर्म में तर जायेंगे॥'

"*पोस्त कशीदन*" भी फ़ारसी का मुहावरा है, उसका पूरा अनुवाद '*खाल खींचना*' है। इसी प्रकार के और मुहावरे भी बतलाये जा सकते हैं। कितने मुहावरे ऐसे हैं, जो फ़ारसी मुहावरों के पूरे अथवा अधूरे अनुवाद नहीं हैं, उनकी उत्पत्ति फ़ारसी और हिन्दी शब्दों के सहयोग से स्वाभाविक रीति से हुई है। ऐसे कुछ मुहावरे नीचे लिखे जाते हैं--

'*हवा बाँधना*, '*हवा हो जाना*,' '*हवा बतलाना*,' '*हवा खाना*,' '*मुँह पर हवाइयाँ छूटना*,' '*तूफ़ान बाँधना*,' '*खबर लेना*', '*आसमान सर पर उठाना*,'—आदि।

हिन्दी में इस प्रकार के मुहावरे बहुत हैं। इनकी उत्पत्ति बोलचाल के आधार से आवश्यकता के अनुसार हुई है, अतएव ये व्यापक हैं, और इनका प्रचार भी बहुत अधिक है। ये सर्वसाधारण में समझे भी जाते हैं। किन्तु अनुवादित हो कर जो मुहावरे आये हैं, उनका

व्यवहार प्रायः सुशिक्षित समाज तक परिमित है। सत्य बात तो यही है कि किसी भाषा के मुहावरे का दूसरी भाषा में अनुवाद होना, प्रायः असम्भव है। 'तरदामनी', 'पुम्बा दहन', 'दराज़ ज़बान', चिराग़े सहरी', आदि मुहावरे जो अपने मुख्य रूप ही में गृहीत हुए हैं, यदि उनका शाब्दिक अनुवाद करके रख दिया जावे, तो हिन्दी में वे उन भावों के द्योतक न होंगे, जिन भावों के द्योतक वे फ़ारसी में हैं। 'चिराग़े सहरी' का अनुवाद हम 'प्रभात-प्रदीप' कर दें, तो उसका अर्थ 'प्रातः-काल का दीप' तो हो जायगा, किन्तु उसका भावार्थ 'मरणोन्मुख' अथवा 'कुछ क्षण का मेहमान' समझा जाना दुस्तर होगा। कारण यह है कि इस अर्थ में हिन्दी में 'प्रभात-प्रदीप' का प्रयोग नहीं होता। एक भाषा से दूसरी भाषा में शाब्दिक अनुवाद तभी संभव, पर होगा जब दोनों के वाक्यों में अभिधा-शक्ति से काम लिया गया हो। कहीं-कहीं भाषा-शैली की भिन्नता के कारण इसमें भी व्याघात उपस्थित होता है। ऐसी अवस्था में जिन मुहावरों में लाक्षणिक अर्थों की ही प्रधानता होती है, उनके शाब्दिक अनुवाद का उद्योग हास्यास्पद क्यों न होगा। यही कारण है कि इस कार्य को असम्भव बतलाया जाता है। ऊपर के उदाहरणों से यह बात और स्पष्ट हो गई। अँगरेज़ी भाषा में जो इस प्रकार के मुहावरे ग्रहण किये गये हैं, उनमें भी वांछित सफलता नहीं हुई है। श्रीमान् मिस्टर स्मिथ लिखते हैं—

*"एडिसन के कथनानुसार मिल्टन ने हेब्रू, ग्रीक तथा लैटिन भाषा के प्रयोगों द्वारा भी अँगरेज़ी भाषा की वृद्धि की है, और उसे सम्पन्न बनाया है, परन्तु वे

---

* Milton, as Addison pointed out, raised his language, and added to the richness of its texture, by a daring use of Hebrew and Greek and Latin constructions, but none of these

प्रयोग हमारी भाषा में मिल-जुल नहीं गये हैं। ये एक प्रकार की साहित्यिक विचित्रताएँ अथवा पाण्डित्य-प्रदर्शन के विनोद हैं, इन्हें हम अपने मुहावरेदार प्रयोगों को समृद्ध बनाते नहीं पाते"।

इस कथन में बहुत कुछ सत्यता है, मैं इससे अधिकांश सहमत हूँ। एक भाषा के मुहावरे का अनुवाद सफलता के साथ दूसरी भाषा में तभी हो सकता है, जब उनमें भाव अथवा विचार का साम्य होता है। क्रियापदों की बात और है, क्योंकि उनमें अभिधा-शक्ति ही से प्रायः काम लिया जाता है, इसके अतिरिक्त उनका प्रयोग प्रायः अपने रूप ही में होता है, थोड़े अन्तर से अन्य भाषा की क्रिया का स्वरूपमात्र दे दिया जाता है, इसलिए उनमें उतनी अस्पष्टता नहीं आती, जितनी कि उन मुहावरों के अनुवाद में आती है जिनका कि प्रयोग लाक्षणिक होता है। ऐसे मुहावरों का अनुवाद तभी सुसंगत होगा, जब या तो उसके भावार्थ का अनुवाद किया जावे, अथवा वह ऐसा मुहावरा हो, जो अनुवाद करने पर अन्य भाषा के मुहावरों का अधिकांश स्वरूप ग्रहण कर लेवे; किम्वा उसके प्रचलित मुहावरों में मिलजुल जावे, अन्यथा श्रीमान् स्मिथ के कथनानुसार वह साहित्यिक विचित्रता अथवा विनोदमात्र होगा।

'बर आमदन', 'बसर आमदन', 'दर आमदन' का अनुवाद 'बर आना', बसर आना', 'दर आना', करना यद्यपि हिन्दी भाषा में नवीन क्रियाओं का आविर्भाव करना है, किन्तु उनमें अर्थ का कोई भेद नहीं है, वरन् फ़ारसी क्रियाओं की हिन्दी बनाई गई है; क्रियाएँ रूपान्तर मात्र हैं—अतएव उनमें अधिक जटिलता नहीं है, वाक्य

---

have been woven into the texture of the language—they are literary curiosities pedantic fecilities. rather than enrichments of our idiomatic speech. (Words and Idioms. pp. 247-248).

के अन्य शब्दों की सहायता से थोड़ा विचार करने पर उनका अर्थ ज्ञात हो सकता है। किन्तु 'पैमाना पुरकरदन' का अनुवाद 'पैमाना भरना' उतना सरल नहीं है, उसमें जटिलता भी उससे अधिक है। क्योंकि दोनों का सम्बन्ध लाक्षणिक अर्थ से है। जो फ़ारसी नहीं जानता, और उसके मुहावरों से अभिज्ञ नहीं है, वह अभिधाशक्ति से उसका अर्थ पैमाने का भरना ही करेगा; 'मार डालना' अर्थ कदापि न करेगा। हाँ, उर्दू के कवि यथावसर उसका लाक्षणिक अर्थ ही करेंगे, और वे लोग इसी अर्थ में प्रायः उसका प्रयोग करते भी हैं। हिन्दी में अब तक व्यापक रूप में यह मुहावरा गृहीत नहीं है, इससे इस अनुवाद की जटिलता स्पष्ट है। 'पैमाना' शब्द निकाल कर यदि उसके स्थान पर 'नपना' हिन्दी शब्द रख दिया जावे, तब तो वह इतना जटिल हो जावेगा कि उसका लाक्षणिक अर्थ हो ही न सकेगा। इसीलिए मुहावरे का अर्द्ध-अनुवाद ही हुआ है, और इसीसे अपने लाक्षणिक अर्थ के लिए वह बहुत कुछ सुरक्षित है। फ़ारसी के अधिकांश मुहावरे उर्दू में अर्द्ध-अनुवादित होकर ही गृहीत हुए हैं, और इसी से उनके लाक्षणिक अर्थ ग्रहण में सुविधा होती है।

'*अज़जामा बेरूँ शुदन,*' और '*दिल अज़दस्त रफ़्तन*' का अनुवाद हुआ है, '*जामे से बाहर होना*', 'और '*दिल का हाथ से जाता रहना*'। हिन्दी में इस ढंग के दो मुहावरे हैं,—'*आपे से बाहर होना*' और '*मन का हाथ न रहना*'। जो इन दोनों मुहावरों का अर्थ है, वही दोनों अनुवादित मुहावरों का अर्थ है। अतएव ये दोनों मुहावरे हिन्दी में घुल मिल गये हैं और समान रूप से हिन्दी उर्दू दोनों में व्यवहृत होते हैं। यद्यपि ये दोनों शाब्दिक अनुवाद ही हैं, फिर भी इनमें जटिलता नहीं आई, और लाक्षणिक अर्थ भी सुरक्षित रहा, कारण वे ही हैं, जिनका उल्लेख मैं ऊपर कर आया हूँ। पैमाना

भरना से इन दोनोंका अनुवाद अच्छा है इसीलिए उससे इनकी व्यापकता भी अधिक है।

मुहावरों का भावानुवाद और विम्ब-प्रतिविम्ब भाव

उर्दू में ऐसे मुहावरे बहुत कम हैं जिनका आश्रय भावानुवाद है। कारण इसका यह है कि अधिकतर फ़ारसी मुहावरे ज्यों के त्यों उसमें ले लिये गये हैं—जहाँ अनुवाद की आवश्यकता हुई, वहाँ इस प्रकार से उसका सफल शब्दानुवाद किया गया कि भावानुवाद पर दृष्टि डालने की नौबत ही नहीं आई। फिर भी भावानुवाद का अभाव नहीं है। फ़ारसी का एक मुहावरा है,–*'सौसने दहज़बाँ'*। सौसन एक फूल है, मुहावरे में उसको दहज़बाँ बाँधते हैं। 'दहज़बाँ' का अर्थ है–'दस-जीभ-वाला'। फूल की पँखड़ियों को देख कर यह कल्पना की गई है। रुबा कहते हैं—

> 'खोला बहार ने जो कुतुबख़ानये चमन।
> सौसन ने दस वरक़ का रिसाला उठा लिया।'

यहाँ दस वरक़ की कल्पना दह-ज़बान पर दृष्टि रख कर ही की गई है। यद्यपि इस वर्णन में आलंकारिकता है, और यह मुहावरे का अनुवाद मुहावरे के रूप में नहीं हुआ है, किन्तु यह तो स्पष्ट है कि दह-ज़बान का भाव-ग्रहण करके ही दस वरक़ की सृष्टि हुई है। इसी प्रकार भाव-ग्रहण द्वारा मुहावरे की रचना भी हुई है। हज़रत मीर लिखते हैं—

> 'हो नजात उसकी बेचारा हमसे भी था आशना'

इस बंद पर मौलाना आज़ाद का यह नोट है—

"बेचारा हमसे भी आशना था, बऐनहूँ तरजुमा फ़ारसी मुहावरे का है कि—'बेचारा माहम आशना बूद', उर्दू में 'हमारा आशना' कहते हैं"। आप

११

देखें यहाँ शाब्दिक अनुवाद के स्थान पर भावानुवाद को प्रधानता दी गई है और उसीको शुद्ध उर्दू मुहावरा माना गया।

यदि उर्दू में ज्यों का त्यों फ़ारसी मुहावरों के ग्रहण करने की प्रणाली न चल पड़ती तो अधिकांश मुहावरों की सृष्टि भावानुवाद द्वारा ही होती। अनेक मुहावरे फ़ारसी के ऐसे हैं कि जिनका शब्दानुवाद हो ही नहीं सकता, इसी विवशता के कारण प्रायः फ़ारसी के मुहावरे यथातथ्य उर्दू में गृहीत मिलते हैं। कुछ प्रमाण लीजिये—

"किसी का कब कोई रोज़े सियह में साथ देता है।
कि तारीकी में साया भी जुदा रहता है इन्साँ से॥"

× × ×

"रहा टेढ़ा मिसाले नैशे कज़दुम।
कभी कजफ़ह्म को सीधा न पाया॥"

इन शेरों में दो मुहावरे आये हैं, पहले में 'रोज़े सियह', और दूसरे में 'कजफ़ह्म'। ये दोनों मुहावरे अपने अपने शेरों की जान हैं। उनसे शेरों की भाव-गंभीरता और आलंकारिकता बहुत बढ़ गई है। यदि इन मुहावरों को अपने स्थान से हटा दें, और वैसे ही भाव-द्योतक मुहावरे उनके स्थान पर रख दें तो शेरों का सौंदर्य्य बहुत कुछ नष्ट हो जावेगा, और उनकी आलंकारिकता जाती रहेगी। 'रोज़े सियह,' एक फ़ारसी मुहावरा है, उसका शब्दार्थ है,—'काला दिन'; भावार्थ है,—'बुरे दिन'। 'रोज़े सियह' मुहावरे से ही, तारीकी (अँधेरे) में साया का इन्सान (मनुष्य) से जुदा रहने का जो दृष्टान्त दिया गया है, उसकी ठीक-ठीक सार्थकता होती है; साभिप्राय प्रयोग का स्वरूप भी झलक जाता है। इस 'रोज़े सियह' के स्थान पर यदि 'काला दिन' शब्दानुवाद करके रख दें, तो इस वाक्य से उक्त मुहावरे का अर्थ ही बोध न होगा, यदि भावानुवाद करके 'बुरे दिन' लिख

दें तो, भाव तो समझ में आ जावेगा, परन्तु 'रोज़े सियह' मुहावरे की विशेषताएँ नष्ट हो जावेंगी। इसलिए कवि ने फ़ारसी मुहावरे को ही ज्यों का त्यों रख दिया, उसके किसी अनुवाद से काम चलाने का उद्योग उसने नहीं किया। यदि कोई इस शेर का ठीक ठीक अनुवाद करना चाहे तो हिन्दी में उसका वैसा सुन्दर अनुवाद हो ही न सकेगा। कामचलाऊँ अनुवाद होगा, और ऐसी अवस्था में 'रोज़े सियह' के स्थान पर 'बुरे दिन' का प्रयोग करना पड़ेगा। यह निस्सन्देह भावानुवाद है, किन्तु इस प्रकार के अनुवाद को सफल अनुवाद नहीं कहा जा सकता। किसी भाषा के मुहावरों के भावानुवाद प्रायः इसी प्रकार के होते हैं।

दूसरे शेर का 'कजफ़ह्म' मुहावरा भी इसी प्रकार का है। कज़दुम (बिच्छू) के नैश (डंक) के टेढ़े होने से 'कजफ़ह्म' मुहावरे का बहुत बड़ा सम्बन्ध है। कजफ़ह्म का शब्दार्थ है,—'टेढ़ी-समझवाला'; इस लिए बिच्छू के डंक से उसका पूरा साम्य है, और इसी कारण शेर, भाव और शब्द-विन्यास दोनों बातों में बहुत बढ़ गया है। यदि इसके 'कजफ़ह्म' वाक्य को निकाल दीजिये, और भावानुवाद करके कोई वाक्य उस स्थान पर रख दीजिये तो सारा कवित्व ही नष्ट हो जावेगा। हिन्दी में 'कजफ़ह्म' को 'उलटी समझवाला', अथवा 'उलटी समझ का मनुष्य' कहेंगे। विचारने की बात है कि 'कज' के स्थान पर 'उलटा' शब्द का प्रयोग करके हम कहाँ तक शेर के भावों की रक्षा कर सकेंगे। यदि न कर सकेंगे, तो यह स्वीकार करना पड़ेगा, कि इस मुहावरे का यथातथ्य अनुवाद हिन्दी में नहीं हो सकता, और यह बात सही है। ऐसे अवसरों पर हम भावानुवाद से काम ले कर कार्य्य-निर्वाह कर सकते हैं, किन्तु मुहावरों की विशेषताओं को खो बैठते हैं।

सब भाषाओं में कुछ ऐसे मुहावरे मिलते हैं, जो एक दूसरे का प्रतिविम्ब जान पड़ते हैं। मनुष्यों के हृदय बहुत-सी बातों में एक दूसरे की समानता रखते हैं। घटना-चक्र में पड़कर प्रायः सब जाति और देशों के मनुष्य किसी किसी विषय को एक ही ढंग से सोचते-विचारते और मनन करते हैं। मानवों के दुःख सुख से प्रभावित मानस-विकारों में भी कम समानता नहीं मिलती। अनेक अवस्थाओं में निरीक्षण-प्रणाली भी एक ही होती है। इसलिए अनेक देशों के अनेक मुहावरों में भी साम्य मिलता है, क्योंकि विचार-परम्परा ही उनकी जननी है। इस प्रकार के मुहावरों का शाब्दिक और भावानुवाद दोनों सरल होता है, और उनमें उन कठिनाइयों का सामना नहीं करना पड़ता, जिनकी चर्चा मैंने अभी की है।

फ़ारसी का एक मुहावरा है,–*'गोशकरदन'*, जिसका भावार्थ है–'सुनना'। सौदा लिखते हैं—

"कब इसको गोशकरे था जहाँ में अहूल कमाल,"

हिन्दी में ठीक ऐसा ही मुहावरा है *'कान करना'*। कुछ लोगों का विचार है कि फ़ारसी के *'गोशकरदन'* मुहावरे से ही इसकी उत्पत्ति है, किन्तु यह सत्य नहीं है। जिस समय उर्दू भाषा का जन्म भी नहीं हुआ था, जब वह विचार में भी नहीं आई थी, उसके दो सौ वर्ष पहले गोस्वामी तुलसीदासजी इस मुहावरे का प्रयोग करते हैं, और अपनी रामायण में लिखते हैं—

"नारि सिखावन करेसि न काना।"

फ़ारसी का एक मुहावरा *'दरीदादहन'* है; ठीक ऐसा ही हिन्दी का मुहावरा *'मुँहफट'* है। फ़ारसी और हिन्दी के निम्नलिखित मुहावरों में भी बहुत कुछ साम्य है—

फ़ारसी मुहावरा	हिन्दी मुहावरा
'ख़ुशम न मीआयद'	*'मुझे अच्छा नहीं लगता'*
'ख़ाक बर सर करदन'	*'सिर पर धूल डालना'*
'अश्कशोई करदन'	*'आँसू पोंछना'*

कुछ इस प्रकार के अँगरेज़ी मुहावरे भी देखिये—

'To throw dust in some one's eyes'.	'आँख में धूल झोंकना'
'Crapes are sour.'	'अंगूर ही खट्टे हैं'
'To slay the slain.'	'मरे को मारना'

कुछ ऐसे मुहावरे भी हैं, जिनका शब्दार्थ तो नहीं मिलता किन्तु भावार्थ मिल जाता है। यद्यपि वे एक दूसरे का अनुवाद नहीं होते, किन्तु भावसाम्य के कारण एक दूसरे का प्रतिबिम्ब ज्ञात होता है।

फ़ारसी का एक मुहावरा है *'चशमकज़दन'*; ज़ौक़ लिखते हैं—

"लब पर तेरे पसीने की बूँद अय अक़ीक़े लब।
चशमकज़नी करे है सुहेले यमन के साथ॥"

'चशमकज़दन' का वही अर्थ है, जिसको हिन्दी में 'कटाक्ष करना' कहते हैं। भावार्थ दोनों का एक है, किन्तु शब्दार्थ में अन्तर है। फ़ारसी में 'अज़ जाँ गुज़श्तन' का वही भावार्थ है जो 'जी पर खेल जाने' का है। 'अज़ जाँ गुज़श्तन' का शब्दार्थ है—'जान से गुज़र जाना'। ज़फ़र का शेर है—

'वहाँ जावे वही जो जान से जाये गुज़र पहले।'

शब्दार्थ में अन्तर होने पर भी 'अज़ जाँ गुज़श्तन' और 'जी पर खेल जाना' दोनों का भावार्थ एक है। निम्नलिखित मुहावरों के शब्दार्थ में भी अन्तर है किन्तु भावार्थ उनका एक है—

फ़ारसी मुहावरे	शब्दार्थ	हिंदी मुहावरे
ज़बाँदराज़ी	ज़बान (जीभ) का लम्बा होना	जीभ चलाना
लब कुशादन	होंठ खोलना	मुँह खोलना

इस ढंग के अँगरेज़ी मुहावरे भी हैं। देखिये—

अँगरेज़ी मुहावरे	शब्दार्थ	हिंदी मुहावरे
'To wear one's heart on one's sleeve.'	'अपने आस्तीन पर दिल रखना'	'कलेजा काढ़कर दिखाना'
'Something at the bottom.'	'तह में कुछ होना'	'दाल में काला होना'
'To rain cats and dogs.'	'कुत्ता बिल्ली बरसना'	'मूसलधार पानी बरसना'
'To make an ass of.'	'एक गदहा बनाना'	'गदहा बनाना'

मुहावरों का इस प्रकार का विम्ब-प्रतिविम्ब भाव स्वाभाविक है, ये चेष्टा द्वारा अनुदित नहीं हैं, अतएव मुहावरों के आविर्भाव के कारणों में इनको स्थान नहीं मिल सकता। मुहावरों के आविर्भाव के दो ही विशेष कारण ज्ञात होते हैं। एक चलती भाषा अथवा पूर्वतन भाषा के आधार से परम्परा द्वारा उनकी सहज उत्पत्ति, दूसरा अन्य भाषा से मुख्य रूप में अथवा शब्दानुवाद किम्वा भावानुवाद द्वारा उनका ग्रहण। प्रामाणिक पुरुषों और लब्धप्रतिष्ठ विद्वानों के विशेष प्रकार के वाक्य भी काल पाकर के मुहावरे में परिगणित हो जाते हैं। कोई-कोई ऐसे वाक्यों को भी एक कारण मानते हैं, किन्तु मेरा विचार है कि इसका अन्तर्भाव प्रथम कारण में हो जाता है, क्योंकि

तात्कालिक प्रचलित भाषा ही उसकी प्रसूति का कारण है, चाहे यह कार्य्य पुरुष-विशेष के कारण ही क्यों न हो। प्रथम कारण का जहाँ निरूपण है, वहाँ आप लोग यह पढ़ आये हैं कि साधारण पुरुषों का विशेष वाक्य भी जब अधिकतर व्यवहार में आ जाता है, तो वह भी मुहावरा बन जाता है। ऐसी अवस्था में किसी विशेष पुरुष का कोई बहुव्यापक वाक्य यदि मुहावरे में गृहीत हो जाये तो क्या आश्चर्य्य! अन्तर इतना ही है कि साधारण मनुष्यों के वाक्यों का प्रचार बोलचाल द्वारा होता है, और विद्वज्जनों का प्रायः पुस्तकों द्वारा। किन्तु काल पाकर यह पुस्तक का वाक्य भी बहुत कुछ लोगों की जिह्वा पर चढ़ जाता है, और साहित्य-पुस्तकों में भी व्यवहृत होने लगता है। उसी समय वह भी मुहावरों में परिगणित हो जाता है। दोनों की उत्पत्ति का आधार प्रचलित भाषा ही है, इस लिए विद्वज्जनों के विशेष वाक्यों को भी प्रथम कारण के अन्तर्गत मानना ही उचित जान पड़ता है। श्रीमान् स्मिथ के निम्नलिखित विचारों से भी इसी सिद्धान्त की पुष्टि होती है--

* "बाइबिल के बाद अँगरेज़ी भाषा के मुहावरों की शरीर-वृद्धि करने में सबसे समृद्ध साहित्यिक अवलम्ब शेक्सपियर के नाटक हैं"

† "यद्यपि शेक्सपियर की पुस्तकों के द्वारा ये सब शब्द हम तक पहुँचे हैं, परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि शेक्सपियर द्वारा ही उनका निर्माण हुआ

---

* After the Bible, Shakespeare's plyas are, as we might expect, the richest literary source of English idioms." (Words and Idioms. p. 227).

† "While, however, these expressions are familiar to use us from Shakespeare's writings, it by no means follows that they are all of his invention; his plays are full of tags from

है। उसकी पुस्तकें साधारण बोलचाल के बहुत से प्रयोगों से भरी हुई हैं, 'out of joint' शब्द का प्रयोग शेक्सपियर ने 'हैमलेट' नामक नाटक में किया है, परन्तु शेक्सपियर के तीन सौ वर्ष पूर्व की पुस्तक में भी इसका पता लगता है"।

वेबस्टर साहब ने विशिष्ट विद्वानों के इस प्रकार के वाक्यों को एक प्रकार का अलग मुहावरा माना है। ऐसी अवस्था में जिन दो कारणों का निर्देश मैंने ऊपर किया है, उनके अतिरिक्त एक तीसरा कारण मुहावरों के आविर्भाव का यह भी माना जा सकता है; किन्तु मेरी इसमें असम्मति है, कारण ऊपर लिख चुका हूँ।

मुहावरे और कहावतें

प्रायः मुहावरों और कहावतों का अन्तर समझाने में भूल की जाती है। वास्तव में कहावत और मुहावरे एक नहीं हैं, दोनों में भेद है, और दोनों के नियम अलग अलग हैं। मिस्टर स्मिथ लिखते हैं—

*"कुछ कहावत तथा कहावतों के शब्द भी हमारी बोलचाल की भाषा में घुल-मिल गये हैं, इन्हें भी शायद हम मुहावरा मान सकते हैं।"

उन्होंने कुछ ऐसी कहावतों को उदाहरण-स्वरूप लिखा भी है-उनमें से दो नीचे लिखी जाती हैं—

'Two heads are better than one.'

---

popular speech; the idiom, "out of joint," has been found three hundred years before the date of Hamlet." (Words and Idioms. p. 229).

* Certain proverbs and proverbial phrases are also so firmly embedded in our colloquial speech that they may perhaps, without stretching the definition too far, be regarded as English idioms." (Words and Idioms . p. 176)

शब्दार्थ—'एक शिर से दो शिर अच्छे हैं।'
भावार्थ—'एक आदमी के सोचने से दो आदमी का सोचना अच्छा है।'

'No fool like an old fool.'

शब्दार्थ—'पुराने मूर्ख की भाँति कोई मूर्ख नहीं है।'
भावार्थ—'प्रत्येक मूर्ख की मूर्खता में उसका निज का संस्कार होता है।'

पहले तो उनका उद्धृत वाक्य ही सन्दिग्ध है; वे लिखते हैं,—"*शायद हम इन्हें भी मुहावरा मान सकते हैं*" इस वाक्य से क्या पाया जाता है? यही न कि ऐसी कहावतों और वाक्य-समुदाय को वे असन्दिग्ध भाव से मुहावरा मानने के लिए प्रस्तुत नहीं हैं। दूसरी बात यह है कि उन्होंने उदाहरण में जिन मुहावरों का उल्लेख किया है, उनमें मुहावरों के लक्षण नहीं पाये जाते। यह बात मैं हिन्दी के नियमों पर दृष्टि रख कर कहता हूँ, अँगरेज़ी सिद्धान्त के अनुसार कोई मीमांसा करने के लिए स्थान का संकोच है। इस विषय में श्रीमान् स्मिथ की सन्दिग्धता ही हमारे लिए पर्य्याप्त है। प्रयोजन यह कि अँगरेज़ी भाषा में असन्दिग्ध भाव से कोई कहावत मुहावरा नहीं मानी जा सकती। ऐसी अवस्था में कहावत और मुहावरों की भिन्नता स्पष्ट है।

मेरा विचार है, मुहावरों के वाक्य, काल, पुरुष, वचन और व्याकरण के अन्य अपेक्षित नियमों के अनुसार यथासंभव बदलते रहते हैं, किन्तु कहावतों के वाक्यों में यह बात नहीं पाई जाती, वे एक प्रकार से स्थिर होते हैं। मुहावरों का प्रयोग जैसे असंकोच भाव से साधारण वाक्यों में होता है, वैसे कहावतों का नहीं, उनके लिए विशेष वाक्य प्रयोजनीय होते हैं। लाक्षणिक अर्थ के विषय में दोनों

में बहुत कुछ समानता है, किन्तु दोनोंकी परिवर्तनशीलता और स्थिरता में बड़ा अन्तर है, और ए ही विशेष बातें एक को दूसरे से अलग करती हैं।

एक हिन्दी मुहावरा है,–'*मुँह बनाना,*' धातु के समान व्याकरण नियमानुसार इसके अनेक रूप बन सकते हैं। यथा–'मुँह बनाया,' 'मुँह बनाते हैं', 'मुँह बनावेंगे' 'मैं मुँह बनाऊँगा', 'उन्होंने मुँह बनाना छोड़ दिया', 'उसका मुँह बनता ही रहा'–आदि। कहावतों में यह बात नहीं पाई जाती। एक कहावत है,–"*अंधी पीसे कुत्ते खायँ*" जब रहेगा तब इसका यही रूप रहेगा। अन्तर होने पर वह कहावत न रह जावेगी, उसके अर्थ-बोध में भी व्याघात होगा। किसीसे कहिये–'अंधी पीसती है कुत्ते खाते हैं' या यों कहिये,–'अंधी पीसेगी कुत्ते खायेंगे' तो पहले तो वह समझ ही न सकेगा कि आप क्या कहते हैं। यदि समझ जावेगा तो नाक भौं सिकोड़ेगा और आपके प्रयोग पर हँसेगा। कारण यह है कि कहावतों का रूप निश्चित है, और उसके शब्द प्रायः निश्चित रूप ही में बोले जाते हैं।

'मुँह बनाना' का जैसे अनेक रूप बन सकता है, उसी प्रकार विविध वाक्यों में उसका प्रयोग भी हो सकता है। किन्तु एक स्थिर वाक्य, 'अंधी पीसे कुत्ते खायँ' का प्रयोग किसी विशेष प्रकार के वाक्य के साथ ही होगा। यही बात प्रायः अन्य मुहावरों और कहावतों के लिए भी कही जा सकती है।

अन्य भाषाओं के कुछ मुहावरों और कहावतों को लेकर मैं अपने कथन की पुष्टि करूँगा। इस प्रकार के कुछ उदाहरण हिन्दी के प्रामाणिक पद्य-लेखकों के भी उपस्थित करूँगा।

संस्कृत का एक मुहावरा है,–'*मुखमवलोकनम्*'; इस मुहावरे का हिन्दी रूप है–'*मुँह देखना*'। उक्त मुहावरे के दो विभिन्न प्रयोग देखिये–

'क्रव्यमुखः चतुरकमुखमवलोकयति,

× × ×

'पिशितं भक्षयित्वा अधुना मन्मुखमवलोकयसि'

कुछ संस्कृत मुहावरों के विभिन्न प्रयोग और देखिये—

'मुखदर्शनम्' *'मुँह दिखलाना'*

प्रयोग—

"कथं सापत्न्या मित्राणां च मुखम् दर्शयिष्यामि"
"भोः कृतघ्न मा मे त्वं स्वमुखम् दर्शय" } —पंचतंत्र

संस्कृत मुहावरा—*'अरण्यरुदनम्'*; 'हिन्दी मुहावरा'—*'जंगल में रोना'* इसके तीन विभिन्न प्रयोग देखिये—

१—'अरण्यरुदितोपमम्'————पंचतंत्र

२—'अरण्ये मया रुदितमासीत्'————शकुन्तला नाटक

३—'अरण्यरुदितं कृतं'————कुवलयानन्द

उक्त संस्कृत मुहावरों की परिवर्तनशीलता आपने देखी। अब मैं संस्कृत की दो कहावतों को नीचे लिखता हूँ। इनको भी देखिये; इनका प्रयोग जहाँ होगा, इसी रूप में होगा; अन्तर की उसमें सम्भावना ही नहीं—

१—*'हस्तकंकणं किं दर्पणे प्रेक्ष्यसे'*

२—*'शीर्षे सर्पो देशान्तरे वैद्यः'*

प्रथम कहावत का हिन्दी रूप है 'हाथ के कंगन को आरसी क्या!'। दूसरे का प्राकृत रूप है—'सीसे सप्पो देसन्तरे वेज्जो'। आपने देखी कहावतों की अपरिवर्तनशीलता। कहीं कहीं कहावतों में ही परिवर्तन होता है, किन्तु विशेष कर पद्यों में ही, और वह भी बहुत साधारण; उस परिवर्तन में उनकी विशेषता सुरक्षित रहती है। दो पद्यों को देखिये—

१—'हाथ के कंगन को कहा आरसी'
२—'ऊँची दुकान की फीकी मिठाई'

इन दोनों पद्यों में से प्रथम में 'क्या' के स्थान पर 'कहा' हो गया है; दूसरे में 'ऊँची दुकान फीका पकवान' कहावत के 'पकवान' के स्थान पर 'मिठाई' अनुप्रास के झमेले से हुई और उसी सूत्र से फीका, 'फीकी' बन गया, और अक्षरों की पूर्ति के लिए बीच में 'की' आ गई। किन्तु यह परिवर्तन कितना साधारण है, इसको आप लोग स्वयं समझ सकते हैं।

कतिपय उर्दू प्रयोगों को भी देखिये—

'*अज़सरे चीज़े गुज़श्तन*'—फ़ारसी मुहावरा है। भावार्थ है—'दस्तबरदार होना' अथवा 'किनारा कर लेना'—'किसी चीज़ से गुज़र जाना'। सय्यद इन्शाँ लिखते हैं—

'ख़ोदा के वास्ते गुज़रा मैं ऐसे जीने से।'

× × ×

'पहले जबतक न दो आलम से गुज़र जायेंगे।
तू अपने शेवये जौरो जफ़ासे मत गुज़रे॥' }—ज़ौक

× × ×

आपसे हैं गुज़र गये कब के।—दर्द

'*अज़ जाँ गुज़श्तन*'—फ़ारसी मुहावरा का 'जान से गुज़र जाना' शब्दार्थ और 'जान पर खेल जाना' भावार्थ है। इसके भिन्न-भिन्न प्रयोग देखिये—

'ऐसा न हो दिलदादा कोई जाँ से गुज़र जाय'

× × ×

'अब जी से गुज़र जाना कुछ काम नहीं रखता'

'वहाँ जावे वही जो जान से जाये गुज़र पहले।'—ज़फ़र

उर्दू कविता में प्रयुक्त कुछ हिन्दी मुहावरों को देखिये—

'*कलेजा थामना*'—हिन्दी मुहावरा है, उर्दू में 'कलेजा थामना' अथवा 'दिल थामना' दोनों लिखते हैं। इसके विभिन्न प्रकार के प्रयोग देखिये—

'दिलें सितमज़दा को हमने थाम थाम लिया'—*मीर*

× × ×

'दिल को थामा उनका दामन थाम के।'

× × × —दाग़

'बात करता हूँ कलेजा थाम के।'

'*सर झुकाना*'—हिन्दी मुहावरा है। कुछ उसके प्रयोग ये हैं—

'ख़ुदा के आगे ख़िजालत से सर झुका के चले।'—अनीस

× × ×

'अदना से जो सर झुकाये आला है वह।'—दबीर

× × ×

'दुश्मन के आगे सर न झुकेगा किसी तरह।'—दाग़

'*मुँह फेरना*'—हिन्दी मुहावरा है। उसके विभिन्न व्यवहार—

'कोई उनसे कहे मुँह फेर कर क्यों क़त्ल करते हो।'—आतिश

× × ×

'न फेरो उससे मुँह आतिश जो कुछ दरपेश आ जावे।'

× × ×

'पड़ा तीर दिल पर जो मुँह तूने फेरा।'—अमीर

× × ×

'हाय मुँह फेर के ज़ालिम ने किया काम तमाम।'—आसी

'आँखें बिछाना'–हिन्दी मुहावरा है। इसके भी दो प्रयोग देखिये—

'निगाहों की तरह वह शोख़ फिरता है जो मुहफ़िल में।
कफ़े पा के तले महवे जमाल आँखें बिछाते हैं।' } —अमीर

'आँखें बिछायें हम तो उदू की भी राह में।
पर क्या करें कि तू है हमारी निगाह में।' } —दाग़

कुछ हिन्दी कविता के प्रयोगों को भी देखिये–

मुहावरा—'उर लाय लेना' अथवा 'उर लावना'।

'राम लखन उर लाय लये हैं।'
× × ×
'सनेह सों सो उर लाय लयो है।' } 'गीतावली' —तुलसीदास

× × ×
'जब सिय सहित बिलोकि नयन भरि राम लखन उर लैहौं।'—तुलसीदास

मुहावरा—'गलानि-गरना'।

'अब अनुज गति लखि पवनज भरतादि गलानि गरे है।'
× × ×
'सुकृत संकट पर्‌यो जात गलानिन गर्‌यो।'
× × ×
'गरत गलानि जानि सनमानि सिख देति।' } 'गीतावली' —तुलसीदास

मुहावरा—'रुख लिये रहना'।

'सासु जेठानिन सों दबती रहै लीने रहै रुख त्यों ननदी को।'
× × ×
'हरिचन्द तो दास सदा बिन मोल को बोलै सदा रुख तेरो लिये।' } —हरिश्चन्द्र

मुहावरा—'चबाव करना'।

'अब तो बदनाम भई ब्रज में घरहाई चबाव करौ तो करौ।'
× × ×
'जो सपनेहू मिलैं नंदलाल तो सौतुख मैं ए चबाव करैं।' } —हरिश्चन्द्र

मुहावरा—'*गरे परना*'।

'या मैं न और को दोख कछू सखि चूक हमारी हमारे गरें परी।'
× × ×
'हेरिबो हमारो तो हमारे गरे परिगो।'
—*हरिश्चन्द्र*

× × ×

'रहै गरे परि, राखिये तऊ हीय पर हार'—*बिहारी*

मुहावरा—'*मूँड़ चढ़ाना*'।

'मुँह लाये मूड़हि चढ़ि अंतहु अहिरिनि तोहि सूधी करि पाई—*तुलसीदास*

× × ×

मूँड़ चढ़ाये हूँ, रहै परो पीठ कच भार'—*बिहारी*

इन उदाहरणों से उन नियमों की पूरी पुष्टि हो गई जिनको मैंने मुहावरों की विशेषता बतलाई थी। यह बात कहावतों में नहीं पाई जाती। अधिकांश मुहावरों के अन्त में क्रियापद धातुचिह्न के साथ मिलता है, इस कारण उनका नाना रूप व्याकरण नियमानुसार होता रहता है; कहावतें भी इस प्रकार की मिलती हैं, पर कम। अनेक महाकवियों, और देश-कालज्ञ लोकप्रिय सुजनों की कविताएँ और रचनाएँ भी कहावत का काम देती हैं, और वे भी कहावतों में ग्रहण कर ली गई हैं, जैसे—'*होइहैं सोइ जो राम रचि राखा*', '*जो जस करै सो तस फल चाखा*'; इत्यादि। इस लिए उसमें नान्त क्रियापद का प्रायः अभाव है। नीचे कुछ कहावतों को उदाहरण के लिए लिखता हूँ। उनसे इस सिद्धान्त पर बहुत कुछ प्रकाश पड़ेगा।

'*आँख के अंधे गाँठ के पूरे*', '*आधा तीतर आधा बटेर*', '*इन तिलों तेल नहीं*', '*ईश्वर की माया कहीं धूप कहीं छाया*', '*करिया अच्छर भैंस बराबर*'; इत्यादि।

ऐसी भी कुछ कहावतें हैं, जिनके अन्त में क्रियापद है, उनको भी देखिये; किन्तु वे प्रायः अपरिवर्त्तनीय हैं।

'चमड़ी जाय दमड़ी न जाय', 'खरबूज़ा देख कर खरबूज़ा रंग पकड़ता है', 'पेट खाय आँख लजाय'; आदि।

नान्त क्रियापद-वाली कहावतें भी मिलती हैं, उनका स्वरूप भी व्याकरणानुसार कभी-कभी बदलता है, किन्तु मुहावरों के इतना नहीं। प्रायः ऐसी ही कहावतों में मुहावरों की भ्रान्ति होती है, किन्तु उनके वाक्यों की अधिकांश स्थिरता उनको मुहावरों से अलग कर देती है। कुछ ऐसी कहावतें नीचे लिखी जाती हैं—

'जिस पत्तल में खाना उसी में छेद करना', 'ओखली में सिर देना', 'कान पूँछ न हिलाना'; आदि।

मुहावरों के समान कहावतों के शब्द भी कभी कभी पद्यों में बदलते हैं। किन्तु प्रायः उनका वास्तविक रूप उनमें मौजूद रहता है। उदाहरण लीजिये—

"हाय सखी इन हाथन सों अपने पग आप कुठार मैं दीनों"—*हरिश्चन्द्र*

× × × ×

"पाँव कुल्हाड़ा देत हैं मूरख अपने हाथ"—वृन्द

कहावत है,–'अपने हाथ अपने पाँव में कुल्हाड़ा मारना'। दोनों पद्यों में शब्दान्तर अवश्य है, किन्तु कहावत का मुख्य रूप अक्षुण्ण है।

एक विशेष बात मुहावरों और कहावतों में अन्तर की यह पायी जाती है कि सम्पूर्ण कहावतों का अन्तर्भाव लोकोक्ति अलंकार में हो जाता है। कहावतों का प्रयोग मिलते ही, पद्य लोकोक्ति अलंकार का मान लिया जाता है। मुहावरों के लिए यह नियम नहीं है; वे लक्षणा और व्यंजना पर अवलम्बित हैं, अतएव लगभग

कुल अलंकार मुहावरों में आ जाते हैं। शब्दालंकार भी मुहावरों में मिलते हैं, किन्तु कहावत में उनका आधिक्य है। स्वभावोक्ति, ललित, गूढ़ोक्ति अलंकारों के अतिरिक्त मुहावरों में उपमा, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति आदि अलंकारों की भरमार है।

निम्नलिखित पद्यों को देखिये; इनमें लोकोक्तियों का प्रयोग है, अतएव ये पद्य लोकोक्ति अलंकार के माने जावेंगे। इस प्रकार के पद्यों में यदि दूसरा अलंकार मिलेगा भी, तो वह गौण माना जावेगा। 'एक जो होय तो ज्ञान सिखाइये कूप ही में यहाँ भाँग परी है', 'तेरी तो हाँसी उनैं नहिं धीरज नौ घरी भद्रा घरी में जरै घर', 'इहाँ कोहँड़ बतिया कोउ नाहीं', 'का बरखा जब कृषी सुखानी', 'घर घर नाचैं मूसरचन्द', 'घरकी खाँड़ खुरखुरी लागै, बाहर का गुड़ मीठा', 'जिसकी लाठी उसकी भैंस'; इत्यादि।

कुछ मुहावरों का अलंकारत्व देखिये—

उपमा—'आँख की पुतली, 'आँख का तारा', 'कलेजे की कोर'।

अत्युक्ति—'आसमान के तारे उतारना', 'आग बोना', 'आँख से चिनगारी निकलना', 'आग बबूला होना', 'उँगली पर नचाना', 'खड़े बाल निगलना'।

पदार्थावृत्ति दीपक—'आठ आठ आँसू रोना', 'बाल बाल बीनना'।

स्वभावोक्ति—'बाल का खिचड़ी होना', 'आँख लाल होना', 'होंठ काँपना', 'कलेजा धड़कना', 'गोल गोल बातें कहना'; आदि।

अब तक जो कुछ लिखा गया, आशा है उससे मुहावरा और कहावत की विशेषताओं पर बहुत कुछ प्रकाश पड़ा, विशेष लिखना बाहुल्य होगा।

मुहावरों का शब्द-संस्थान तथा शब्द-परिवर्तन

श्रीमान् 'मेक-मारडी' ने अपने 'इङ्गलिश इडियम' नामक ग्रन्थ में एक स्थान पर यह लिखा है—

* "चिर-प्रयोग के कारण मुहावरे स्थिर हो गये हैं, उनमें किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं किया जा सकता"।

किसी अंश में यह कथन सत्य है, सर्वांश में यह बात स्वीकार नहीं की जा सकती। मुहावरों का शब्द-संस्थान ही नहीं बदलता, उसके शब्द भी बदल जाते हैं। किन्तु इसके कुछ नियम हैं। गद्य में इस प्रकार का परिवर्तन कम मिलता है, वरन् प्रायः होता ही नहीं, किन्तु पद्यों में इस प्रकार का परिवर्तन अधिकतर देखा जाता है। वाक्य के शब्दों का संस्थान भाव-विकास का आधार होता है, उसके अनुसार व्याकरण-संगत स्थिति की रक्षा अनेक अवस्थाओं में नहीं होती। क्रुद्ध होकर जिस समय कोई कहता है,—"लगा दो उसको दो लात", "पकड़ लो उसका कान", "निकाल दो उसको घर में से"; उस समय, यह स्पष्ट है कि वह व्याकरण के नियमों की रक्षा नहीं करता। इसी प्रकार पद्य के नियमों की रक्षा के लिए प्रायः मुहावरों का शब्द-संस्थान भी बदल दिया जाता है, उनमें साधारण कतर-ब्योंत भी की जाती है, और आवश्यक परिवर्तन भी होता रहता है। इस प्रकार का शब्द-परिवर्तन कुछ विशेष कारणों से होता है, किन्तु उतना ही जितना प्रयोजनीय होता है। कभी-कभी शब्द-परिवर्तन इतना अधिक हो जाता है, कि एक

---

* "But long usage has fixed the idiomatic expression in each case, and from the idiom we may not swerve." (English Idioms and how to use them. Chap. I p. I5.)

मुहावरा दूसरेका अनुवाद मालूम होता है। इन सब बातों का प्रमाण मैं दूँगा। पहले मुहावरों का शब्द-संस्थान देखिये—

"तद्दीयताम् द्रागेतस्य चन्द्रार्द्धः"—पंचतंत्र

"अरण्ये मया रुदितमासीत्"—अभिज्ञान शाकुन्तल

"अन्यथावश्यं सिञ्चतं मे तिलोदकम्" " "

"तद्दीयते पिशुनलोकमुखेषु मुद्रा"—कर्पूरमंजरी

"मुष्टि ग्राह्यम् च मध्यम्" "

चन्द्रार्द्धः दीयताम्, मुद्रा दीयताम्, अरण्ये रुदित्, सिञ्चतं तिलोकदम्, मुष्टि ग्राह्यम् मध्यम् मुहावरे हैं; किन्तु उनका शब्द-संस्थान ऊपर की पंक्तियों में यथास्थान नहीं है, अन्य शब्द भी बीच बीच में हैं—जैसे दीयताम् और चन्द्रार्द्धः के मध्य में 'द्रागेतस्य'; दीयते और मुद्रा के बीच में 'पिशुनलोकमुखेषु'; मुष्टि ग्राह्यम् और मध्यम् के बीच में 'च' आदि; अतएव यह स्पष्ट है कि मुहावरों के शब्दों का प्रयोग यथास्थान और यथानियम नहीं है। यह बात प्रत्येक भाषा में पायी जाती है। अन्य भाषाओं का उदाहरण देने के लिए स्थान का संकोच है, उर्दू और हिन्दी भाषा के कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं, आशा है उनसे बहुत कुछ प्रकाश प्रस्तुत विषय पर पड़ेगा।

१—'बहार आई चमन होता है मालामाल दौलत से।
निकाला चाहते हैं ज़र गिरह गुंचों ने खोली है॥' }—अमीर

× × ×

२—'झाड़ती हैं कौन से गुल की नज़र।
बुलबुलें फिरती हैं क्यों तिनके लिये॥' }—अमीर

३—'तेग़ोखंजर से न झगड़ा सरो गर्दन का चुका।
चल दिये मोड़ के मुँह फैसला करने वाले॥' }—अमीर

× × ×

४—'दिल लगी दिल लगी नहीं नासेह।
तेरे दिल को अभी लगी ही नहीं॥' }—दाग़

× × ×

५—'खुलते नहीं हैं राज जो सोज़े निहाँ के हैं।
क्या फूटने के वास्ते छाले जुबाँ के हैं॥' }—दाग़

× × ×

६—'हाथ निकले अपने दोनों काम के।
दिल को थामा उनका दामन थाम के॥' }—दाग़

× × ×

७—'जहाँ लग गई कारगर हो गई।
मेरी आह तेरी नज़र हो गई॥' }—दाग़

× × ×

८—'जब पड़े उन पै गर्दिशे अफ़लाक।
अपनी आसाइशों प डाल दे ख़ाक॥' }—दाग़

ऊपर के पद्यों में जिन वाक्यों पर लकीर खींच दी गई है, उनमें कुछ तो ऐसे हैं, जो उलट कर लिखे गये हैं, जैसे—'होता है माला माल', 'मोड़ के मुँह', 'खुलते नहीं हैं राज', 'फूटने के वास्ते छाले' और 'डाल दे खाक'; इत्यादि।

कुछ ऐसे हैं, जिनके बीच में दूसरे वाक्य आ गये हैं, जैसे—'गिरह और खोली है' के बीच में 'गुंचों ने', 'झाड़ती हैं और नजर' के बीच में 'कौन से गुल की', 'झगड़ा और चुका' के बीच में 'सरो गर्दन का', 'दिल को और लगी ही' के बीच में 'अभी'; इत्यादि।

सातवें शेर में 'लग गई', पहले मिसरे में, और 'नज़र' दूसरे मिसरे में है। इससे क्या पाया जाता है? यही कि मुहावरों का शब्द-संस्थान स्थिर नहीं होता; वाक्यों के समान उनका स्थान पद्य में आवश्यकतानुसार बदलता रहता है। कतिपय हिन्दी भाषा के पद्यों को भी देखिये—

'क्यों न मारै गाल बैठो काल डाढ़नि बीच'
'बाहर बजावैं गाल भालु कपि काल बस' } —गीतावली

'गरैगी जीह जो कहौं और को हौं'
'लियो छड़ाइ, चले कर मीजत, पीसत दाँत गये रिस रेते' } —विनयपत्रिका
'द्वार द्वार दीनता कही काढि रद, परि पाहूँ'

× × ×

'आये उधो फिरि गये आँगन डारि गये गर फाँसी'
'षटपद करी सोऊ करि देखी हाथ कछू नहिं आये' } —सूरदास
'मधुबन बसत आस दरसन की जोइ नैन मगहारे'

× × ×

'तो लखि मो मन जो लही सो गति कही न जाति।
'ठोड़ी-गाड़ गड़्यौ तऊ उड़्यौ रहत दिन-राति ॥'
'दृग उरझत टूटत कुटुम जुरत चतुर-चित प्रीति। } —बिहारीलाल
परति गाँठि दुरजन-हियें दई नई यह रीति ॥'

'नहिं तो हँसी तुम्हारी ह्वै है।'
'तहँ को बिघन बनै कछु कहि कै एहि डर धरकत छाती।' } 'प्रेम फुलवारी' —हरिश्चन्द्र
'हेरि चुकी बहु दूतिन को मुख थाह सबनकी लीनी।'

जिन वाक्यों पर लकीर खिँची हुई है, उन सब वाक्यों में शब्द-संस्थान यथास्थान नहीं हैं; किसी किसी वाक्य में मुहावरे के शब्दों के बीच में अन्य वाक्य भी हैं। कविवर बिहारीलाल के पहले दोहे में 'मन' पहले चरण में हैं और उसके व्यापार तीसरे और चौथे चरण में हैं। इससे भी मुहावरों के शब्द-संस्थान के विषय में यही निश्चित होता है, कि वह प्रयोजनानुसार पद्य में बदलता रहता है। विशेष अवस्थाओं में गद्य में भी।

मुहावरों का शाब्दिक न्यूनाधिक्य

मुहावरों की शाब्दिक स्थिरता के विषय में यह भी कहा जाता है कि वह जितने शब्दों का होता है, उसमें न्यूनाधिक्य नहीं होता। यदि उसमें न्यूनाधिक्य किया जाता है, तो वह नियम-विरुद्ध बन जाता है। मुहावरों के शब्द परिमित होते हैं, इस लिए उनका परिमित रहना ही अपेक्षित है। जब इसमें व्याघात होगा, तब मुहावरा, मुहावरा न रह जावेगा; साधारण वाक्य बन जावेगा। जिनकी दृष्टि इस विशेषता पर नहीं होती, प्रायः उन पर मुहावरे का उचित ज्ञान न होने का लाञ्छन लगाया जाता है। मुशायरों में मैंने देखा है कि ऐसे अवसरों पर बड़ी ले-दे मचती है और चूकनेवाले को बेतरह बनाया जाता है। फिर भी यह स्वीकार करना पड़ेगा, कि पद्य में इस नियम की रक्षा कभी-कभी नहीं होती। कुछ उदाहरण लीजिये—

'*मुँह लाल करना*', एक मुहावरा है। इसी रूप में इसका प्रयोग होना उचित है। निम्नलिखित शेर में 'सौदा' ने इसका ठीक प्रयोग किया है।

'बराबरी का तेरे गुल ने जब ख़याल किया।
सबा ने मार थपेड़ा मुँह उसका लाल किया॥'

किन्तु नीचे लिखे गये शेर में उसका शुद्ध प्रयोग नहीं हुआ। 'मीर' ने मुहावरे के वाक्य के साथ 'खूब' बढ़ाकर नियम का पालन नहीं किया।

'चमन में गुल ने जो कल दाविये जमाल किया।
जमाल यार ने मुँह उसका ख़ूब लाल किया॥'

'*कलेजा थाम लेना*' या '*दिल थाम लेना*', मुहावरा है; 'दिल थाम थाम लेना', कोई मुहावरा नहीं है; परन्तु 'मीर' अपने एक शेर में इसका प्रयोग करते हैं—

'दिले सितमज़दा को हमने थाम थाम लिया।'

इस प्रकार का प्रयोग संस्कृत और हिन्दी में भी मिलता है; कुछ उदाहरण देखिये—

"मासानेतान् गमय चतुरो लोचने मीलयित्वा।"—*मेघदूत*

× × ×

"सहस्व कतिचिन्मासान् मीलयित्वा बिलोचने।"—*काव्य प्रभाकर*

पहले पद्य का 'लोचने' दूसरे पद्य में 'बिलोचने' हो गया है; यद्यपि यह साधारण अन्तर है, तथापि इस बात का प्रमाण है कि मुहावरों में शाब्दिक न्यूनाधिक्य भी होता है।

"फरकि सुअंग भये सगुन, कहत मनो मग मुद मङ्गल छायो।"

× × ×

"दसमुख तज्यो दूध माखी ज्यों आपु काढ़ि साढ़ी लई।"

× × ×

"बन्धु अपमान गुरु ग्लानि चाहत गरन।"

× × ×

"फरकन लगे सुअङ्ग कि दिसि दिसि मन प्रसन्न दुख दसा सिरानी।"

—तुलसीदास

"पै तौलौं जौलौं रावरे न नेकु नयन फेरे"
"नीच जन मन ऊँच जैसो कोढ़ में की खाज" } —विनयपत्रिका

× × ×

"भामिनि भयेहु दूध की माखी"—रामायण
"हाथ झार जस चलै जुआरी"—पद्मावत
"चले जुआरी दोउ हथझार"—ग्रन्थ साहब

× × ×

"बड़े पेट के भरन मैं है रहीम दुख बाढ़ि।
याते हाथी हहरिकै दये दाँत द्वै काढ़ि॥" } —रहीम

× × ×

"जब जब वै सुधि कीजियै तब तब सब सुधि जाहिँ।"—बिहारी

× × ×

"हरीचन्द पै केहि हित हम सों तुम अपनो मुख मोड़्यो।"

× × ×

"निज चबाव सुनि औरो हरखत करत न कछु मन मैल।" } —हरिश्चन्द्र

ऊपर के पद्यों में से दो पद्यों में 'फरकि सुअंग' और 'फरकन लगे सुअंग', इन दो मुहावरों का प्रयोग हुआ है। मुहावरा, 'अङ्ग फरकना' है; अतएव दोनों पद्यों में अंग के साथ 'सु' का प्रयोग असंगत है, वह अधिक है।

एक पद्य में 'दूध माखी' का प्रयोग है, और दूसरे में 'दूध की माखी' का। 'दूध की माखी', शुद्ध प्रयोग है। 'दूध माखी' में 'की' की न्यूनता है।

तीसरे पद्य में 'ग्लानि' के साथ 'गुरु' का, पाँचवें पद्य में 'नयन' के साथ 'नेकु' का, 'दये दाँत द्वै काढ़ि' में 'द्वै' का, 'सब सुधि-जाहिँ'

'सब' का, 'कछु मन मैल' में 'कछु' का प्रयोग अधिक है। क्योंकि मुहावरा 'गलानि गरना', 'नयन फेरना', 'दाँत काढ़ देना', 'सुध जाना' और 'मन मैला' करना है। इस लिए इनके साथ अन्य शब्दों का प्रयोग संगत नहीं।

मुहावरा है–'*कोढ़ की खाज*'–अतएव इस वाक्य में जो 'में' का प्रयोग छठे पद्य में हुआ है, वह छन्दोभंग की रक्षा के लिए ही हुआ है। मुहावरे की दृष्टि से उसमें 'में' की कोई आवश्यकता नहीं। 'दोउ हथझार' के स्थान पर 'हाथ झार' प्रयोग ही सङ्गत है, जैसा कि 'पद्मावत' का प्रयोग है। नवें पद्य में 'द्वै' शब्द अधिक है।

वास्तव बात यह है कि पद्य-रचना के समय छन्दोभंग का विचार अथवा पादपूर्ति की चिन्ता सर्वदा पद्यकार के सिर पर सवार रहती है, इस लिए पद्यकार प्रायः ऐसे कार्य्य करने के लिए विवश होता है, जो नियमानुकूल नहीं होते। इसी झमेले में पड़ कर वह शब्दों को भी तोड़ता-मरोड़ता, और कभी-कभी भावों का भी सर्वनाश कर बैठता है। ऐसी अवस्था में यदि मुहावरे उसके हाथों में पड़कर सुरक्षित न रहें और उनमें शाब्दिक न्यूनाधिक्य होत। रहे तो कोई आश्चर्य्य नहीं, किन्तु ऐसा क्वचित् होता है। अधिकांश पद्यों में मुहावरों का स्वरूप यथातथ्य मिलता है, और उनमें वे अविकृत रूप में ही पाये जाते हैं। हाँ, यह अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा कि गद्यों में मुहावरे जितना सुरक्षित रहते हैं, उतना पद्यों में नहीं। गद्यों में भी मुहावरों का स्वरूप बदलता है; जैसे– '*चुराओ आँख चुराओ*'–इत्यादि। किन्तु ऐसा अवसर विशेष अवस्थाओं में ही आता है। उदाहृत वाक्य इसका प्रमाण है, जिसका 'चुराओ' शब्द चुराने पर जोर देने के लिए आँख के पहले भी

आया है। कुछ ऐसे पद्य भी देखिये जिनमें मुहावरे शुद्ध रूप में व्यवहृत हैं—

'वह दिल लेके चुपके से चलते हुए।
यहाँ रह गये हाथ मलते हुए॥'

× × ×

'न इतराइये देर लगती है क्या।
ज़माने को करवट बदलते हुए॥'

× × ×

'करे वादा पर वादा वह हम को क्या।
ये चकमे ये फ़िकरे हैं चलते हुए॥'

× × ×

'ज़रा दाग़ के दिल पर रक्खो तो हाथ।
बहुत तुमने देखे हैं जलते हुए॥' —दाग़

× × ×

'सहर को दर प जाता हूँ तो फ़रमाते हैं अन्दर से।
अभी सो कर उठे हैं हाथ मुँह धोते हैं आते हैं॥' —अमीर

× × ×

'ओंठगी चनन केवरिया जोहौं बाट।
उड़गै सोन चिरैया पञ्जर हाथ॥' —रहीम

'क्यौं बसियै क्यौं निबहियै नीति नेह-पुर नाहिँ।
लगालगी लोयन करैं, नाहक मन बँधि जाहिँ॥'

× × ×

'कब को टेरत दीन रट होत न स्याम सहाय।
तुमहूँ लागी जगत-गुरु जगनायक जग-बाय॥' —बिहारीलाल

'देव जू जो चित चाहिये नाह तो नेह निबाहिये देह हर्‍यो परै।
जो समझाइ सुझाइये राह कुमारग मैं पग धोखे धर्‍यो परै॥
नीके मैं फीके ह्वै आँसू भरो कत ऊँची उसास गरो क्यों भर्‍यो परै।
रावरो रूप पियो अँखियान भर्‍यो सो भर्‍यो उबर्‍यो सो ढर्‍यो परै॥'—देव

× × ×

'अबहिँ उरहनो दै गई, बहुरो फिरि आई।
सुनु मैया तेरी सौं करौं, याकी टेव लरन की, सकुच बेंचि सी खाई॥'

× × ×

'या ब्रज में लरिका घने, हौंही अन्याई।
मुँह लाये, मुँड़हिँ चढ़ी अन्तहुँ अहिरिनि तोहिँ सूधी कर पाई॥'

—तुलसीदास

इन पद्यों में जिस शुद्धता के साथ मुहावरों का प्रयोग हुआ है, सच्चा आदर्श वही है। विवशतावश मुहावरों के शब्दों में जो न्यूनाधिक्य होता है, वह अच्छा नहीं समझा जाता, वह मान्य भी नहीं होता, इस लिए पद्यों का इस प्रकार का प्रयोग प्रमाण-कोटि में गृहीत नहीं हो सकता। कवि-कर्म्म की जटिलताओं के कारण कोई त्रुटि क्षम्य हो सकती है, किन्तु त्रुटि छोड़ वह और कुछ नहीं हो सकती। कवि-कर्म्म इतना गहन है कि वह सर्वथा निर्दोष नहीं हो सकता, किन्तु इस कारण किसी दोष को गुण नहीं कहा जा सकता, मेरा विचार है कि मुहावरे के शब्दों में न्यूनाधिक्य उचित नहीं; ऐसा होने पर मुहावरे की विशेषता लाञ्छित होती है। शब्द-संस्थान में अन्तर पड़ने पर मुहावरे का स्वरूप अक्षुण्ण रहता है, उसमें कुछ व्यतिक्रम भर हो जाता है, किन्तु मुहावरे के शब्दों में न्यूनाधिक्य होने पर उसकी प्रामाणिकता सन्दिग्ध होती है, जो संगत नहीं।

आदर्श अथवा मान्य कविगण का प्रयोग शिरोधार्य्य होता है, वही अन्धकारमय प्रदेश का प्रदीप है, किन्तु उनका व्यापक प्रयोग ही ग्राह्य है, अव्यापक प्रयोग नहीं। अनेक स्थान पर किये गये शुद्ध प्रयोग के सामने एक स्थान पर किया गया अशुद्ध प्रयोग मान्य नहीं हो सकता। मत-भिन्नता स्वाभाविक है; आचार्य्यों का पथ भिन्न हो सकता है, किन्तु प्रमाणभूत प्रायः अधिक सम्मति ही होती है। इस सिद्धान्त पर दृष्टि रख कर यह स्वीकार करना पड़ेगा कि मुहावरों के शब्दों का न्यूनाधिक्य नियमानुकूल नहीं।

इस अवसर पर यह प्रकट कर देना आवश्यक है, कि जो मुहावरा सूक्ष्म होकर अथवा कट-छँट कर छोटा हो जाता है और व्यवहार में आ जाता है, वह इस नियम में नहीं आता। 'दाँत काटी रोटी', एक मुहावरा है; जिस अर्थ में इस मुहावरे का प्रयोग होता है, उसी अर्थ में केवल 'दाँत काटी' का प्रयोग भी होता देखा जाता है। यह रूप मुख्य मुहावरे का संक्षिप्त रूप है, और उसी प्रकार सङ्गत है, जैसे अनेक वाक्यों और नामों का संक्षिप्त रूप।

मुहावरों का शाब्दिक परिवर्तन

अब इस विषय पर प्रकाश डालना और शेष रहा कि मुहावरों के शब्दों का परिवर्तन होता है या नहीं। मुहावरों के अनुवाद के विषय में मैं पहले बहुत कुछ लिख आया हूँ, परिवर्तन और अनुवाद में अन्तर है। अनुवाद एक भाषा से अन्य भाषा में होता है, किन्तु परिवर्तन भाषा की परिधि के भीतर ही हुआ करता है। परिवर्तन का अर्थ यह है कि 'मुँह बनाना' के स्थान पर 'बदन बनाना' अथवा 'आनन बनाना' लिख सकते हैं या नहीं? प्रयोजन यह कि मुँह को बदल कर उसके स्थान पर 'बदन' अथवा 'आनन' रख दें, तो 'मुँह

बनाना' मुहावरा सुरक्षित रहेगा या नहीं ? उसके भावार्थ में व्याघात होगा या नहीं ? अब हम इसी विषय की मीमांसा में प्रवृत्त होते हैं।

प्रत्येक मुहावरा शब्दों तक परिमित होता है, उसके शब्द रूढ़ होते हैं, इस लिए अपरिवर्तनीय होते हैं। ये मुहावरे के शब्द जिस भाव के द्योतक होते हैं, वे भाव उन्हीं शब्दों तक नियमित होते हैं, क्योंकि उनका सम्बन्ध उन्हीं शब्दों से होता है। कारण इसका यह है कि मुहावरे के रूप में वे उन्हीं शब्दों में गृहीत हुए हैं, और चिर-काल से साहित्य अथवा बोलचाल में उसी रूप में प्रचलित हैं। वे एक प्रकार के शाब्दिक संकेत हैं, जो कतिपय विशेष शब्दों से सम्बन्ध रखते हैं। वे उन पारिभाषिक शब्दों के समान होते हैं, जो परिवर्तित होने पर मुख्य अर्थों के बाधक बन जाते हैं। इसी लिए मुहावरों के शब्दों का परिवर्तन नियम-विरुद्ध माना जाता है। फिर भी ऐसे प्रयोग मिलते हैं, जिनमें मुहावरों के शब्द बदले दृष्टिगत होते हैं। इसके विशेष कारण हैं, मैं उन कारणों का उल्लेख करूँगा।

मूल भाषा के अनेक मुहावरे तत्प्रसूत भाषाओं में परिवर्तित रूप में पाये जाते हैं, वे अनुदित से ज्ञात होते हैं, किन्तु वास्तव में वे अनुदित नहीं होते; वे चिरकालिक क्रमिक परिवर्तन के परिणाम होते हैं। किसी मूल भाषा से सम्बन्ध रखनेवाली इस प्रकार की कई भाषाओं में जब एक ही मुहावरा विभिन्न शब्दों में पाया जाता है, तो प्रायः यह अनुमान होने लगता है, कि इनमें से कोई एक किसी दूसरे का अनुवाद है। परन्तु वास्तव में वह अनुवाद नहीं होता, वह अपने-अपने शब्दों में मूल भाषा के मुहावरे का क्रमागत रूपान्तर होता है। ऐसे रूपान्तर-भूत मुहावरों में जो शब्द-भिन्नता होती है, उसकी गणना परिवर्तन में नहीं हो सकती, अतएव परिवर्तन के

प्रमाण में इस प्रकार के रूपान्तर-भूत मुहावरे गृहीत नहीं हो सकते। परिवर्तन का प्रमाण हमको एक भाषा की परिधि के भीतर ही खोजना चाहिये। आशा है इस प्रकार के प्रमाण बहुत कम मिलेंगे, और यदि मिलेंगे तो किसी विशेष हेतु से मिलेंगे, इस लिए इसी सिद्धान्त को स्वीकार करना पड़ता है कि मुहावरे के शब्दों का परिवर्तन नहीं होता।

हिन्दी उर्दू पद्यों में अनेक मुहावरों के शब्द बदले पाये जाते हैं। हिन्दी में ही खड़ी बोली की कविता अथवा गद्य में जिस रूप में मुहावरे लिखे जाते हैं, ब्रजभाषा अथवा अवधी में वे मुहावरे उस रूप में नहीं मिलते, उनमें शाब्दिक परिवर्तन पाया जाता है, ऐसी अवस्था में यह कहा जा सकता है कि मुहावरों के शब्दों का परिवर्तन होता है। यह उचित तर्क है, मैं उसकी विवेचना करूँगा। मैं ऊपर कह आया हूँ कि मूल भाषा से तत्प्रसूत भाषाओं में जो मुहावरे क्रमशः रूपान्तरित हो कर आते हैं, वे परिवर्तन-कोटि में गृहीत नहीं हो सकते। क्योंकि वे चिरकालिक क्रमशः व्यवहार का परिणाम होते हैं, इस लिए वे स्वयं मुहावरे होते हैं, परिवर्तन अथवा अनुवाद नहीं। संस्कृत का मुहावरा *'जलाञ्जलिर्दीयते'* प्राकृत में 'जलंजली दिज्जदि' हुआ; हिन्दी में 'जल-अँजुली देना' बन गया। यह न तो अनुवाद है और न परिवर्तन। अपभ्रंश भाषा का एक दोहार्द्ध है—

"महि वीढह सचराचरह जिण सिर दिण्हा पाय"—*नागरी प्रचारिणी पत्रिका*

इसका 'सिर दिण्हा पाय' ही हिन्दी का 'सिर पर पाँव देना' है। किन्तु हिन्दी का यह मुहावरा न तो अनुवाद है, न उसमें शाब्दिक परिवर्तन हुआ है, वरन् दूसरा पहले के क्रमशः विकाश का ही फल है। इस लिए इस प्रकार के मुहावरे शाब्दिक परिवर्तन के अन्तर्गत

नहीं है। हिन्दी के निम्नलिखित पद्यों को देखिये; इनमें स्पष्ट शाब्दिक परिवर्त्तन हुआ है—

'तुम जनि मन मैलो करो लोचन जनि फेरो।'
'द्वार द्वार दीनता कही काढ़ि रद परि पाहूँ।'
'करत नहीं कान बिनती बदन फेरे।'
'मैं तो दियो छाती पवि।'
—विनयपत्रिका

× × ×

'देखो काल कौतुक पिपीलकनि पंख लागो।'—*गीतावली*
'है तव दसन तोरिबे लायक।'—*रामायण*
'नयन ये लगि कै फिर न फिरे।'—*हरिश्चन्द्र*

मुहावरा है—'*आँख फेरना*'। हिन्दी का एक कवि कहता है,—'साईं अँखियाँ फेरियाँ बैरी मुल्क जहान', उर्दू का एक मिसरा है—'आँख फेरी जिस घड़ी फिर काहे का नाता रहा',। 'आँख फेरो' के स्थान पर गोस्वामी जी ने 'लोचन फेरो' लिखा है। वे 'नयन फेरे' भी लिखते हैं—'पै तौलौं जौलौं रावरे न नेकु नयन फेरे'। इन प्रयोगों में मुहावरे के शब्दों का परिवर्तन स्पष्ट है। निम्नलिखित पंक्तियों को भी देखिये—

मुहावरों का वास्तविक रूप	पद्यों का प्रयोग
'दाँत काढ़ना' वा 'निकालना'	*'रद काढ़ि'*
'मुँह फेरना'	*'बदन फेरे'*
'पत्थर कलेजे पर रखना'	*'दियो छाती पवि'*
'चींटी को पंख निकलना' वा 'लगना'	*'पिपीलकनि पंख लागो'*

मुहावरों का वास्तविक रूप	पद्यों का प्रयोग
'दाँत तोड़ना'	*'दसन तोरिबे'*
'आँख लगना'	*'नयन लगना'*

हिन्दी के अधिकतर मुहावरे तद्भव शब्दों ही में पाये जाते हैं। व्यवहृत तत्सम अथवा अन्य भाषा के प्रचलित शब्दों से भी हिन्दी के मुहावरे बने हैं, परन्तु उनकी संख्या थोड़ी है। जो तत्सम अथवा अन्य भाषा के शब्द तद्भव शब्दों के समान ही व्यापक हैं, उन शब्दों का मुहावरों में पाया जाना स्वाभाविक है, क्योंकि हिन्दी भाषा के अङ्गभूत वे भी हैं। किन्तु अप्रचित संस्कृत शब्दों का हिन्दी मुहावरों में प्रायः अभाव है। गोस्वामी जी के 'रद काढ़ि' का 'रद', 'बदन फेरे' का 'बदन', 'पिपीलकनि पंख लागो' का 'पिपीलिका', 'दसन तोरिबे' का 'दसन' शब्द इसी प्रकार का है। सर्वसाधारण में इन शब्दों का प्रचार नहीं है, इस लिए मुहावरों में इनका प्रयोग नहीं हो सकता। किन्तु गोस्वामी जी ने ऐसा किया है, कारण पद्य के बंधनों की गहनता है। यदि इन वाक्यों में अभिधा-शक्ति से काम लिया गया होता, वे लक्षणा अथवा व्यञ्जनामूलक न होते, तो वे साधारण वाक्य माने जा सकते थे। किन्तु वे मुहावरे के रूप में ही व्यवहृत हैं, अतएव उनका शब्दान्तर चिन्तनीय हो जाता है। 'बदन फेरना' और 'दसन तोरना' का प्रयोग 'गीतावली' और 'विनयपत्रिका' में भी हुआ है, यथा—

'सुनु सुग्रीव साँचहूँ मो पर फेर्‍यो बदन बिधाता।'—*गीतावली*

"तौ तुलसिहिं तारिहौ विप्र ज्यों दसन तोरि जमगन के"—*विनयपत्रिका*

'दसन' के स्थान पर पद्य में निर्दोष भाव से 'दाँत' का प्रयोग हो सकता था, किन्तु नहीं किया गया। इससे यह कहा जा सकता

है कि इसमें शब्दान्तर नहीं है, वरन् प्रकृत रूप में ही इसका प्रयोग हुआ है, किन्तु यह ठीक नहीं। मैं ऊपर दिखला आया हूँ, गोस्वामी जी 'आँख फेरना' के स्थान पर 'लोचन फेरना' और 'नयन फेरना' दोनों लिखते हैं; यदि हो सकता है, तो मुहावरे के रूप में एक ही प्रयोग ठीक हो सकता है, दोनों नहीं। इसके अतिरिक्त अन्य उदाहरण भी ऐसे हैं, जिनमें गोस्वामी जी को शाब्दिक परिवर्तन करते देखा जाता है। *'सिर धुनना'*; एक मुहावरा है; गोस्वामी जी इस मुहावरे को शुद्ध रूप में भी लिखते हैं, और उसमें आवश्यकतानुसार शाब्दिक परिवर्तन भी कर देते हैं; जैसे—

'काल स्वभाव करम विचित्र फल दायक सुनि सिर धुनि रहौं।' }
'सिर धुनि धुनि पछितात मींजि कर।' } —*विनयपत्रिका*

× × ×

'बरज्यो न करत कितो सिर धुनिये।'—*कृष्ण गीतावली*

× × ×

'कोमल सरीर गभीर वेदन सीस धुनि धुनि रोवहीं।'—*रामायण*

× × ×

'बार बार कर मींजि सीस धुनि गीधराज पछिताई।'—*गीतावली*

तीन पद्यों में 'सिर' का प्रयोग है; दो पद्यों में 'सिर' के स्थान पर 'सीस' का। *'हाथ मलना'*; एक मुहावरा है; गोस्वामी जी इसे कभी 'कर मींजना' लिखते हैं, कभी 'हाथ मींजना'। ऊपर दूसरे और पाँचवें पद्य में 'कर मींजना' का प्रयोग आप देख चुके हैं; नीचे के पद्य में 'हाथ मींजना' का प्रयोग देखिये।

'तौ तू पछितैहैं मन मींजि हाथ।'—*विनयपत्रिका*

'कलेजे से लगाना' अथवा *'कलेजे लगाना'*; मुहावरा है; इस के प्रयोग को देखिये।

'सरल सुभाय भाय हिय लाये।'
'लिये उठाइ लगाइ उर लोचन मोचति वारि।' } —तुलसीदास
'कौशल्या निज हृदय लगाई।'

मेरा विचार है कि 'रद काढ़ि', 'बदन फेरे', 'दसन तोरि' आदि में शाब्दिक परिवर्तन ही हुआ है, वे मुख्य रूप में प्रयुक्त नहीं हैं। 'पिपीलिका' शब्द कठिन संस्कृत शब्द है, चींटी के स्थान पर इसका प्रयोग, मुख्यतः मुहावरे में कभी संगत नहीं है, किन्तु छन्दोगति की रत्ता के लिए ही उसका प्रयोग किया गया है। 'रद काढ़ि' भी ऐसा ही प्रयोग है। 'बदन फेरे' और 'दसन तोरि' के विषय में मैं इतना और लिख देना चाहता हूँ कि कबीर साहब की रचना में भी 'मुँह फेरना' मुहावरे का प्रयोग मिलता है, जो गोस्वामी जी से सौ वर्ष पहले हुए हैं; यथा—

'हौं वारी मुँह फेर पियारे। करवट दे मों को काहे को मारे।'—*ग्रन्थ साहब*

इस लिए यह अवश्य है कि आवश्यकतावश गोस्वामी जी ने 'मुँह' के स्थान पर "बदन" का प्रयोग किया है। 'दाँत' शब्द का प्रयोग करते और मुहावरे को शुद्ध रूप में लिखते भी गोस्वामी जी को देखा जाता है; यथा—

'तापर दाँत पीसि कर मींजत को जानै चित कहा ठई है।'—*विनयपत्रिका*

इस पद्य में 'दाँत पीसना' मुहावरे का शुद्ध प्रयोग है। गोस्वामी जी ने यहाँ मुहावरे की रत्ता की है, जिससे पद्य में जोर आ गया है। 'पीसि' के साहचर्य्य से यहाँ 'दसन' का प्रयोग अनुप्रास की दृष्टि से सुन्दर होता, किन्तु रसानुकूल न होता, इसी लिए गोस्वामी जी ने 'दाँत' शब्द का प्रयोग ही इस पद्य में किया। 'दसन तोरिबे' का प्रयोग भी ऐसा ही है, यद्यपि उसमें मुहावरे की रत्ता नहीं हुई।

'*दियो छाती पवि*', विचित्र प्रयोग है। अभिधा द्वारा इसका कुछ अर्थ नहीं होता, व्यंजना द्वारा इसका वही अर्थ होता है, जो अर्थ 'कलेजे पर पत्थर रखने' का है। मेरा विचार है, इसी मुहावरे के आधार से उक्त मुहावरे की सृष्टि गोस्वामी जी ने की है, उसमें प्रत्यक्ष प्रौढ़ोक्ति है, शाब्दिक परिवर्तन तो इतना अधिक है कि मुख्य मुहावरे की छाया तक उसमें नहीं मिलती। उसको एक स्वतंत्र मुहावरा भी कहा जा सकता है, जिसके आचार्य्य स्वयं गोस्वामी जी हैं। ऐसी अवस्था में उसको शाब्दिक परिवर्तन की परिधि से बाहर मानना होगा। '*वज्र की छाती करना*', एक मुहावरा है; यह मुहावरा भी इस मुहावरे का आधार हो सकता है।

'*नयन ए लगि कै फिर न फिरे*'; यह रचना बाबू हरिश्चन्द्र की है। इसमें 'आँख' के स्थान पर 'नयन' का प्रयोग हुआ है। 'आँख लगना' मुहावरा है; 'बिहारीलाल' लिखते हैं—'*आँखिन आँख लगी रहै आँखैं लागत नाहिँ*'; किन्तु हरिश्चन्द्र ने इस पद्य में मुहावरे की रक्षा नहीं की है। आवश्यकतावश 'आँख' को 'नयन' से बदल दिया है, यह स्पष्ट शाब्दिक परिवर्तन है।

प्रान्तिक शब्द-विभेद परिवर्तन नहीं होता

इस स्थल पर यह प्रकट कर देना भी युक्तिसंगत जान पड़ता है, कि हिन्दी भाषा के अनेक मुहावरे ऐसे हैं जो प्रान्तिक भाषाओं की दृष्टि से एक दूसरे का अनुवाद मालूम होते हैं, अथवा जिनमें शाब्दिक परिवर्तन पाया जाता है। किन्तु वास्तव में न तो वे अनुवाद होते हैं, और न उनमें शाब्दिक परिवर्तन होता है, वरन् वे क्रमागत विकाश का परिणाम होते हैं, और अपनी प्रान्तिकता का परिच्छद धारण किये हमारे सम्मुख आते हैं। उनमें से प्रत्येक की

स्वतंत्र सत्ता होती है। एक ही मुहावरे के ब्रजभाषा, अवधी, और खड़ी बोली में जो विभिन्न रूप मिलते हैं, वे ही इसके प्रमाण हैं। कुछ उदाहरण लीजिये—

'राम नाम जपे जैहै जिय की जरनि।'
'द्वार द्वार हीनता कहि काढ़ि रद परि पाहूँ।' —विनयपत्रिका

× × ×

'सूधो पाँय न महिँ परत सोभा ही के भार।'
''मूँड़ चढ़ायेहूँ रहै परयौ पीठि कच भार।
'रहै गरैं परि राखियै तऊ हियैं पर हार।'' —बिहारीलाल

× × ×

'मुँह लाये मूँडहिँ चढ़ी अन्तहुँ अहिरिनि तोहिँ सूधी कर पाई।'
'मूँड़ मारि हिय हारिकै हित हेरि हहरि।' —तुलसीदास

× × ×

'मधुबन बसत आस दरसन की नयन जोहि मग हारे।
'अवधि गनत इकटक मग जोहत तब एती नहिँ झूखी।' —सूरदास

× × ×

'अब मैं कब लौं देखूँ बाँट।'—हरिश्चन्द्र

× × ×

'नाथ कृपा ही को पन्थ चितवत दीन हौं दिन राति।'—विनयपत्रिका

उल्लिखित पद्यों में जो मुहावरे आये हैं, उनपर लकीर खींच दी गई है; खड़ी बोलचाल में उनका प्रयोग किस रूप में होगा, यह चेनी दिखाया जाता है।

पद्य के मुहावरे	खड़ी बोलचाल के रूप
'जिय की जरनि'	'जी की जलन'
'परि पा'	'पाँव पड़ कर'
'सूधो पाँय न परत'	'सीधा पाँव नहीं पड़ता'
'मूँड़ चढ़ाये'	'सिर चढ़ाये'
'गरें परि'	'गले पड़ कर'
'मुँह लाये'	'मुँह लगाये'
'मूँड़हिँ चढ़ी'	'सिर पर चढ़ी'
'मूँड़ मारि'	'सिर मार कर'
'जोहि मग'	'राह देख कर'
'मग जोहत'	'राह देखते'
'देखूँ बाट'	'राह देखूँ'
'पंथ चितवत'	'राह देखना'

पद्य के मुहावरे अवधी और ब्रजभाषा के हैं। खड़ी बोली में उनका व्यवहार जिस रूप में होता है, वह भी बतलाया गया। मेरा विचार है, कि इनमें से कोई एक दूसरे का अनुवाद नहीं है, और न इनमें शाब्दिक परिवर्तन हुआ है। दोनों ही स्वतन्त्र हैं, और उनकी अलग सत्ता है। मूल उनका एक है, किन्तु उनका विभिन्न रूप प्रान्त के अनुसार है। जिस प्रान्त का जिस प्रकार का शब्द-प्रयोग अथवा उच्चारण था, उसीके अनुसार उसकी परिणति है। इसमें मत-भेद हो सकता है, किन्तु मेरा विचार यही है। क्यों ? यह मैं बतलाता हूँ।

निम्नलिखित मुहावरों को देखिये—

पद्य के मुहावरे	खड़ी बोली के रूप
'जिय की जरनि'	'जी की जलन'
'परि पा'	'पाँव पड़ कर'
'सूधो पाँय न परत'	'सीधा पाँव नहीं पड़ता'
'गरें परि'	'गले पड़ कर'
'मुँह लाये'	'मुँह लगाये'

भाव-प्रकाशन, व्यञ्जना, और शब्दविन्यास में ये दोनों प्रकार के मुहावरे प्रायः एक हैं; इनमें यदि है तो थोड़ा प्रान्तिकता का ही अन्तर है। व्रज प्रान्त का 'जिय' दिल्ली प्रान्त में 'जी' हो जाता है, व्रज प्रान्त में 'ड़' एवं 'ल', के स्थान पर प्रायः 'र' का उच्चारण होता है। पा, पाय, पाव, एक ही हैं। उर्दू, फ़ारसी और कभी-कभी हिन्दी में भी 'पाय' के स्थान पर केवल 'पा' का प्रयोग होता है। पापोश, पाज़ेब, पालागन, इसके प्रमाण हैं। खड़ी बोली की क्रिया प्रायः दीर्घान्त और व्रज भाषा की प्रायः लघ्वन्त होती है, खड़ी बोली में पूर्वकालिक क्रिया का चिह्न, कर, के आदि हैं, व्रज भाषा में यह कार्य्य ह्रस्व 'इ' से ही चल जाता है। 'पड़ना' धातु की पूर्वकालिक क्रिया का रूप खड़ी बोली में 'पड़ कर' होगा, व्रज भाषा में वह केवल 'परि' होगा। 'ड़'कार हो जावेगा 'र'कार और उसमें ह्रस्व 'इ'कार मिल कर पूर्व कालिक क्रिया का काम देगी। 'मुँह लाये' और 'मुह लगाये' की क्रियाओं का अन्तर भी साधारण है। इस लिए यह स्पष्ट है कि दोनों प्रकार के मुहावरों में यदि अन्तर है तो प्रान्तिकता का; और यह स्वाभाविक है। वह इस बात का भी सूचक है, कि वास्तव में एक दूसरे के अनुवाद नहीं हैं, और न उनमें किसी उद्देश्य से शाब्दिक

परिवर्तन हुआ है, वरन् एक स्वरूप ही देश-सम्बन्धी विशेष कारणों से दो लिबासों में है।

कुछ मुहावरे ऐसे भी हैं, जिनमें शाब्दिक परिवर्तन हुआ ज्ञात होता है। जैसे-'मूँड़ चढ़ाये,' 'मूँड़हिँ चढ़ी, 'मूँड़ मारि'। इन मुहावरों में 'सिर' के स्थान पर 'मूँड़' का प्रयोग हुआ मालूम होता है, किन्तु वास्तव में यह बात नहीं है। सर्व साधारण में आज भी इन मुहावरों में मूँड़ का ही प्रयोग होता है। ब्रज भाषा अथवा अवधी की जितनी कविताओं में इस प्रकार के मुहावरों का व्यवहार हुआ है, उनमें से अधिकांश में 'मूँड़' का ही प्रयोग मिलता है। गोस्वामी जी यदि 'मूँड़हिँ चढ़ी' अथवा 'मूँड़ मारि' लिखते हैं, तो सौ सवा सौ वर्ष बाद इन्हीं प्रयोगों को इसी रूप में कविवर बिहारीलाल भी करते हैं। एक जगह वे लिखते हैं,—'मारौं मूँड़ पयोधि', इसका भी वही रंग है। इससे क्या पाया जाता है! यही कि इनमें शाब्दिक परिवर्तन नहीं है, वरन् बोलचाल के अनुसार उनका स्वाभाविक रूप यही है। उदाहृत मुहावरों के सब शब्द तद्भव हैं, तत्सम एक भी नहीं; इससे भी उनकी स्वाभाविकता की पुष्टि होती है। कविता-गत बंधनों के कारण जो इस प्रकार के प्रयोग होते हैं, उनमें एकदेशियता होती है, वे व्यापक नहीं होते। वे प्रयोगकर्ता तक ही प्रायः परिमित होते हैं, दूसरे कवियों को उस प्रकार का प्रयोग करते नहीं देखा जाता, अर्थात् उनकी पुनरावृत्ति नहीं होती, अकस्मात् की बात दूसरी है। बोलचाल में भी उनका पता नहीं चलता, कारण यह है कि वे कवि के स्वतंत्र प्रयोग होते हैं। इन बातों पर विचार करने से यही पाया जाता है, कि 'मूँड़ चढ़ाये' आदि मुहावरे गढ़े नहीं, वरन् बोलचाल से ही प्रसूत हैं।

कोमल कान्त पदावली के आचार्य्य जयदेवजी एक स्थान पर

लिखते हैं,—'*रचयति शयनं सचकितनयनं पश्यति तव पन्थानम्*'; 'पश्यति तव पन्थानम्', का अर्थ हुआ, 'तुम्हारा राह देखती है'। 'राह देखना' भी एक मुहावरा है, क्योंकि उसका अर्थ 'प्रतीक्षा करना' है, 'पथ को देखना' नहीं। गोस्वामी जी इस मुहावरे को एक स्थान पर इस रूप में लिखते हैं–'नाथ कृपाही को पन्थ चितवत दीन हौं दिन राति'। सूरदास जी इस मुहावरे को 'मग जोहना' के रूप में लिखते हैं,–'नयन जोहि मग हारे', 'अवधि गनत इकटक मग जोहत'; इसके प्रमाण हैं। रहीम खाँ खानखाना लिखते हैं–'औंठगी चनन केवरिया जोहौं बाट'; बाबू हरिश्चन्द्र कहते हैं–'अब मैं कब लौं देखूँ बाट'। एक मुहावरे का इतना विभिन्न रूप भ्रामक है, यदि उसको वाक्य मान लिया जावे, तो सब झगड़ा तै हो जाता है, किन्तु वास्तव में वह वाक्य नहीं है, मुहावरा है; क्योंकि उसका अर्थ व्यंजना अथवा लक्षणा द्वारा होता है, अभिधा-शक्ति द्वारा नहीं। सत्य बात यही है कि 'बाट जोहना' ब्रज भाषा का एक मुहावरा है। आजकल यह मुहावरा हिन्दी गद्य में भी प्रचलित है। गोस्वामी जी का, 'पन्थ चितवत' और सूरदास जी का 'मग जोहना' उसके रूपान्तर अवश्य हैं, किन्तु उनका आधार बोलचाल है। वे शब्दान्तरित अथवा गढ़े नहीं हैं। जयदेव जी के संस्कृत वाक्य से गोस्वामी जी के वाक्य का मेल हो सकता है, किन्तु 'पन्थ चितवत' गोस्वामी जी का निर्माण नहीं है, वास्वत में उसका सम्बन्ध बोलचाल से है, आज भी अवध प्रान्त में उसका व्यवहार देखा जाता है। 'मग जोहना' भी ऐसा ही वाक्य है। इसलिए यह भिन्नता स्वाभाविक है; इसका आधार शाब्दिक परिवर्तन नहीं। मेरा विचार है कि ऐसे मुहावरों को भी शाब्दिक परिवर्तन के अन्तर्गत न मानना चाहिए। बाबू हरिश्चन्द्र

का 'बाट देखूँ' अवश्य विचारणीय है। ब्रजभाषा-रूप उसका "बाट देखौं" होना चाहिये, किन्तु बाबू साहब ने अपने वाक्य को यह रूप नहीं दिया। यह भ्रम, प्रमाद अथवा छापे की अशुद्धि हो सकती है, तो भी यह विचार करना पड़ेगा कि ब्रजभाषा में "बाट देखौं' से 'बाट जोहौं' और खड़ी बोली में 'बाट देखूं' से 'राह देखूँ' लिखना अच्छा होगा, क्योंकि ऐसी अवस्था में दोनों में स्वाभाविकता होगी।

श्रीमान् बाबू श्यामसुन्दरदास अपने 'हिन्दी भाषा का विकास' नामक ग्रन्थ में एक स्थान पर यह लिखते हैं—

'प्राचीन समय में यमुना और गङ्गा की उपत्यका में दो प्रकार की प्राकृतें बोली जाती थीं—एक शौरसेनी प्राकृत थी जो पश्चिम में बोली जाती थी और दूसरी मागधी थी, जो पूर्व में बोली जाती थी। इन दोनों प्राकृत भाषाओं की प्रचार-सीमा के बीच में वह स्थान पड़ता है, जो अवधी की सीमा के अन्तर्गत आता है। यहाँ ऐसी भाषा का प्रचार था, जो कुछ तो शौरसेनी से मिलती थी, और कुछ मागधी से। इस बोलचाल की भाषा को अर्धमागधी नाम दिया गया है। इसी प्राचीन अर्धमागधी की स्थानापन्न अवधी भाषा है, कुछ विद्वानों ने पूर्वी हिन्दी, नाम भी दिया है।"

"अवधी के भी दो रूप मिलते हैं, एक पश्चिमी दूसरा पूर्वी। पश्चिमी अवधी लखनऊ से कन्नौज तक बोली जाती है, अतएव ब्रज भाषा की सीमा के निकट पहुँच जाने के कारण उसका इस पर बहुत प्रभाव पड़ा है, और वह उससे अधिक मिलती है।"—पृष्ठ ६३, ६४

इन अवतरणों से यह पाया जाता है कि ब्रज भाषा और खड़ी बोली दोनों शौरसेनी से उत्पन्न हैं, अर्थात् दोनों की जननी शौरसेनी है। ब्रजभाषा (शौरसेनी) का प्रभाव अवधी पर बहुत कुछ बतलाया

गया है, विशेष कर पश्चिमी अवधी पर। ब्रजभाषा और खड़ी बोली दोनों का आधार शौरसेनी प्राकृत का अपभ्रंश है, ब्रजभाषा के नाते अवधी पर भी उसका बहुत कुछ प्रभाव है। इससे यह स्पष्ट है कि इन बोलियों में जो मुहावरे आये हैं, वे अधिकांश शौरसेनी अपभ्रंश पर ही अवलम्बित हैं। और ऐसी अवस्था में उनके मुहावरों का प्रायः एक होना स्वाभाविक है। जहाँ यह सत्य है, वहाँ यह भी सत्य है कि प्रत्येक मुहावरे अपनी बोलियों के आकार में ही विकसित हुए हैं, और इसी लिए वे उसी रूप में पाये जाते हैं। ऐसी दशा में यह कहना संगत न होगा कि उनमें शाब्दिक परिवर्तन हुआ है, या उनमें से एक दूसरे का अनुवाद है। और यही मुझको प्रतिपादन करना था।

उर्दू का शाब्दिक परिवर्तन

उर्दू के विषय में यह बात नहीं कही जा सकती, उसमें बहुत शाब्दिक परिवर्तन मिलता है। जिस प्रकार फ़ारसी के बहुत से मुहावरे उर्दू में सम्मिलित कर लिये गये हैं, उसी प्रकार हिन्दी के बहुत से मुहावरों के शब्दों को बदल कर उनको उर्दू का रूप दे दिया गया है। यदि कहा जावे कि इस परिवर्तन का आधार भी बोलचाल है, क्योंकि उर्दू बोलनेवाली जनता भी तो है। तो इसका उत्तर यह है कि जिस प्रकार बहुत से फ़ारसी के मुहावरे साहित्यकों द्वारा उर्दू में बिना सर्वसाधारण अथवा उर्दू बोलनेवालों की बोल-चाल का ध्यान किये हुए सम्मिलित किये गये हैं, उसी प्रकार हिन्दी के अनेक मुहावरों के शब्दों को भी फ़ारसी के शब्दों से बदल दिया गया है। प्रमाण इसका यह है कि आज भी फ़ारसी के जो कठिन शब्द उर्दू बोलनेवाली जनता के व्यवहार में नहीं हैं, वे शब्द भी

हिन्दी मुहावरों में हिन्दी शब्दों के स्थान पर प्रयुक्त पाये जाते हैं, और ऐसे वाक्यों का उर्दू साहित्यिकों द्वारा मुहावरे के स्वरूप में व्यवहार किया जाता है। दूसरी बात यह कि नियम-विरुद्ध होने पर भी उर्दू कवियों को एक मुहावरे को दो दो रूप में प्रयोग करते पाया जाता है। यदि हिन्दी का कोई मुहावरा बोलचाल के आधार पर परिवर्तित होकर उर्दू में सम्मिलित हो गया है, तो उसका व्यवहार उसी रूप में होना चाहिए, किन्तु यह नहीं होता; उर्दू में उसका व्यवहार तो होता ही है, आवश्यकता पड़ने पर उस मुहावरे का हिन्दी रूप भी काम में लाया जाता है, और इस प्रकार सुविधा के अनुसार दोनों का व्यवहार होता रहता है। यह शाब्दिक परिवर्तन छोड़ और कुछ नहीं होता। कविता की सुविधाओं का सम्पादन ही उसका उद्देश्य कहा जा सकता है। यह मैं स्वीकार करूँगा कि पद्य में होते होते उसका व्यवहार गद्य में भी होने लगता है, किन्तु इससे भी शाब्दिक परिवर्तन का ही पक्ष पुष्ट होता है, क्योंकि यदि हिन्दी को फ़ारसी-शब्दमय बनाना इष्ट न होता, तो गद्य में उसके उर्दू रूप लिखने की क्या आवश्यकता थी! क्योंकि पद्य के समान उसमें कोई बन्धन होता ही नहीं। इन्हीं विचारों से मैं इस सिद्धान्त पर पहुँचा हूँ कि उर्दू में अधिकांश हिन्दी मुहावरों के शब्दों में जो परिवर्तन देखा जाता है वह शाब्दिक परिवर्तन होता है।

मैंने जो कुछ कथन किया है, उसका उदाहरण भी आप लोगों के सामने उपस्थित करता हूँ। हिन्दी का एक मुहावरा है—'*बिजली गिरना*' या '*गिराना*'। अकबर लिखते हैं—

'गिरा कीं चुपके चुपके बिजलियाँ दीनी अक़ायद पर।'

अमीर लिखते हैं—'आशिकों के दिल पै गिरती हैं हजारों बिजलियाँ।'

अकबर लिखते हैं—'जिसका ख़याल बर्क़ गिराता है होश पर।'

अन्तिम शेर में भी ऊपर के शेरों के समान 'बिजली गिराता है' लिखना चाहिए था, किन्तु बिजली के लिए स्थान नहीं था, इसलिए 'बर्क़ गिराता है' लिखा गया है। 'बर्क़' ऐसा शब्द है, जिसे साहित्यिकों को छोड़ कर अन्य उर्दू बोलनेवाले कदाचित् ही बोलते हैं, फिर भी उसका प्रयोग किया गया है। ग़ालिब का शेर है—

'इश्क़ पर जोर नहीं, है यह वह आतिश ग़ालिब।
कि लगाये न लगे और बुझाये न बने॥'

'आग लगाना' और 'आग बुझाना' हिन्दी मुहावरा है। 'आतिश लगाना या 'आतिश बुझाना' मुहावरा नहीं है, फिर भी ग़ालिब ने ऊपर के शेर में ऐसा ही प्रयोग किया है, कारण—पद्यगत संकीर्णता है। बोलचाल पर दृष्टि रख कर यह प्रयोग कदापि नहीं हुआ, मेरा मतलब किसी के घर की बोलचाल से नहीं, सर्वसाधारण की बोलचाल से है। 'आग लगाना' का ठीक प्रयोग देखिये। आतिश लिखते हैं—

"लगाती आग बिजली की चमक है ख़ानये तन में।"

फ़ारसी का एक मुहावरा है 'अज़ जाँ गुजश्तन'—उर्दू के शाअरों ने इस मुहावरा को उर्दू में दाख़िल कर लिया है। 'ज़फ़र' कहते हैं—

'वहाँ जाये वही जो जान से जाये गुज़र पहले।'

इस मुहावरे को 'मीर' ने यों बाँधा है—

'अब जी से गुज़र जाना कुछ काम नहीं रखता।'

'अज़ जाँ गुज़श्तन' अर्थात् 'जान से गुज़र जाना'; अर्थ है–'जी पर खेल जाना'। ज़फ़र ने मुहावरे को अपने पद्य में ठीक बाँधा है, किन्तु मीर ने 'जान' को बदल कर 'जी' कर दिया है। यद्यपि 'जी

से गुज़र जाना' कोई मुहावरा नहीं है, फ़ारसी के शब्दों के अनुसार 'जान से गुज़र जाना' ही ठीक है। किन्तु 'जान' का पर्यायवाची शब्द 'जी' है, इस लिए मीर ने पद्य के बन्धन में पड़ कर 'जी से गुजर जाना' लिखा। यहाँ स्पष्ट शाब्दिक परिवर्तन है।

हिन्दी मुहावरा है—'*कलेजा थामना*'। नीचे के पद्यों में इस का शुद्ध प्रयोग हुआ है—

'रह गया बस नाम लेते ही कलेजा थाम के।'—*जुरअत*

'बात करता हूँ कलेजा थाम के।'—*दाग़*

अब इसका परिवर्तित प्रयोग देखिये—

'दिले सितम ज़दा को हमने थाम थाम लिया।'—*मीर*

'दिल को थामा उनका दामन थाम के।'—*दाग़*

इन पद्यों में 'कलेजे' को 'दिल' से बदल दिया गया है।

मुसहफ़ी का शेर है—

'जी ही जी' बीच बहुत शाद हुआ करती है।'

दाग़ लिखते हैं—

'ऐ दाग़ दिल ही दिल में घुले जब से इश्क में।'

मुसहफ़ी का 'जी ही जी' दाग़ का 'दिल ही दिल', हो गया।

जुरअत लिखते हैं—

'हाथ हम अपने कलेजे पर धरे फिरते हैं'

दाग़ कहते हैं—

'ज़रा दाग़ के दिल पर रक्खो तो हाथ'

'कलेजे पर हाथ रखना' मुहावरा है, दोनों पद्यों का परिवर्तन स्पष्ट है। हिन्दी-शब्दसागर कोश को उठा कर आप देखें; और 'जी' व 'जान', 'दिल' और 'कलेजे' के मुहावरों को मिलावें, तो अधिकांश

मुहावरे दोनों के एक पाये जायँगे। 'जी' के मुहावरे के 'जी' को बदल कर 'जान' रख दीजिये, तो अनेक 'जी' के मुहावरे 'जान' के मुहावरे बन जावेंगे; इसी प्रकार 'कलेजे' के मुहावरे 'दिल' के मुहावरे हो जावेंगे। नीचे कुछ ऐसे उर्दू पद्य मैं लिखता हूँ जिनमें इतना अधिक स्पष्ट परिवर्तन है कि उसमें तर्क का स्थान नहीं। उर्दू का मुहावरा ही आपको बतला देगा कि उसका हिन्दी मुहावरा क्या है। तथापि उनका मुख्य स्वरूप भी मैं आपको बतलाऊँगा।

दाग़—"दिल टूट जायगा किसी उम्मेदवार का।
ग़श खाके दाग़ यार के क़दमों प गिर पड़ा॥"

× × ×

हाली—"ऐ शबे माहेताब तारों भरी।
अपने आशाइशों प डाल दे ख़ाक॥"

× × ×

अकबर—'फाँकिये ख़ाक आप भी साहब हवा खाने गये।'

× × ×

ज़ामिन—'करूँ ख़िदमत मैं आँखों से बिठालूँ चश्म पर पहले।'

× × ×

अकबर—'लेकिन मजाल क्या जो नज़र से नज़र मिले।'

× × ×

इन्शा—'ज़बाँ भी खैंच लेना तुम अगर मुँह से फ़ुग़ाँ निकले।'

× × ×

नासिख़—'दिल धड़कता है जुदाई की शबे तार न हो।'

× × ×

नूह—'बुलबुल को कोई समझा दे क्यों ख़ून के आँसू रोती हैं।'

दाग़ के शेरों में 'दिल' की जगह 'जी' और 'क़दमों' के स्थान पर

'पाँवों'; हाली के शेरों में 'शब' के स्थान पर 'रात' और 'ख़ाक' के स्थान पर 'धूल', अकबर के पहले शेर के 'ख़ाक' के स्थान पर 'धूल' दूसरे शेर में 'नज़र' के स्थान पर 'आँख'; ज़ामिन के 'चश्म', इन्शा की 'ज़बाँ', नासिख़ के 'दिल' और नूह के 'ख़ून' के स्थान पर क्रम से आँख, जीभ, कलेजा, और लहू लिखिये; उस समय मुहावरों का मुख्य रूप आप पर प्रकट हो जावेगा। ये शाब्दिक परिवर्तन विशेष उद्देश्य और पद्यों की उलझनों के कारण हुए हैं। ऐसे और बहुत से परिवर्तन बतलाये जा सकते हैं, किन्तु जितने प्रमाण दिये गये हैं, वे पर्याप्त हैं।

यदि कहा जावे कि ये वैसे ही शाब्दिक परिवर्तन हैं, जैसे— ब्रजभाषा के 'बाट जोहना' और 'मग जोहना, आदि; तो मैं कहूँगा यह ठीक नहीं; उनका आधार सर्वसाधारण की बोलचाल है, किन्तु उर्दू मुहावरों के परिवर्तित शब्दों के पास सर्वसाधारण के बोलचाल की सनद नहीं है। फिर भी मैं यह कहता हूँ कि उदाहृत मुहावरों में यदि इस प्रकार के कुछ मुहावरे हैं तो निकाल दिये जावें। उनके निकाल दिये जाने पर भी कुछ मुहावरे ऐसे बचते हैं, जिनमें शाब्दिक परिवर्तन स्वीकार करना होगा। मेरा वक्तव्य केवल इतना ही है कि उर्दू में कुछ मुहावरे हिन्दी से इस प्रकार के लिये गये हैं, कि उनमें शाब्दिक परिवर्तन हुआ है। मैंने कुछ ऐसे हिन्दी भाषा के पद्यों को भी दिखलाया है, जिनमें शाब्दिक परिवर्तन होना स्वीकार करना पड़ेगा। मैंने कुछ पद्य गोस्वामी जी के व एक पद्य बाबू हरिश्चन्द्र का उदाहरण में दिया है। गोस्वामी जी हिन्दी संसार के सर्वमान्य और सर्वप्रधान महाकवि हैं, बाबू हरिश्चन्द्र का स्थान आधुनिक कवियों में सबसे ऊँचा है; अतएव इन लोगों की कविताओं के उदाहरणों को ही मैंने पर्याप्त समझा है। और भी हिन्दी के महाकवियों और आचार्य्यों के उदाहरण भी उपस्थित किये जा सकते हैं, किन्तु यह

विस्तार मात्र होगा। हिन्दी का कोई कवि, महाकवि या आचार्य्य ऐसा नहीं है, कि जो आवश्यकता होने पर पद्यगत मुहावरों में शाब्दिक परिवर्तन न करता हो, अतएव ऐसे उदाहरणों की कमी नहीं है, किन्तु व्यर्थ विषय-कलेवर-वृद्धि संगत नहीं।

अन्तिम निष्पत्ति

प्रस्तुत विषय यह था कि मुहावरों में शाब्दिक परिवर्तन नहीं होता, किन्तु हिन्दी और उर्दू दोनों भाषाओं के मान्य और प्रतिष्ठित कवियों की पद-रचना में मुहावरों का शाब्दिक परिवर्तन पाया गया। मेरा विचार है पद्यगत यह शाब्दिक परिवर्तन प्रमाणकोटि में गृहीत नहीं हो सकता। कविकर्म्म की दुरूहता के कारण कवि को अनेक स्थानों पर नियमोल्लंघन करना पड़ता है, उनका यह नियमोल्लंघन निरंकुशता ही कही गई है, कभी प्रमाणकोटि में गृहीत नहीं हुई। मुहावरों का शाब्दिक परिवर्तन भी ऐसा ही है, इस लिए उसको भी प्रमाणकोटि में ग्रहण नहीं किया जा सकता। गद्य की ही प्रणाली को हम आदर्श मान सकते हैं, क्योंकि उसका पथ मुक्त होता है, और गद्य में कभी भी शाब्दिक परिवर्तन मुहावरों में नहीं किया जाता, इस लिए सिद्धान्त यही होता है कि मुहावरों में शाब्दिक परिवर्तन न होना चाहिए। यह मैं स्वीकार करूँगा कि उर्दू गद्य में यह विशेषता सर्वथा सुरक्षित नहीं होती, किन्तु उसका अधिकांश प्रयोग ही हमारे पक्ष को पुष्ट करता है, क्योंकि किसी उद्देश्य-विशेष से कथंचित् किया गया कोई कार्य्य सर्वसंगत सिद्धान्त के सामने मान्य नहीं हो सकता, चाहे वह गद्य-सम्बन्धी हो वा पद्य-सम्बन्धी। कहा जा सकता है कि वर्तमान हिन्दी अथवा उर्दू गद्य का प्रचार हुए अभी एक शतक भी नहीं हुआ, ऐसी अवस्था में

उसका आदर्श प्रमाणकोटि में नहीं आ सकता। मैं कहूँगा कि क्यों नहीं आ सकता! किसी आदर्श को लेकर ही तो दोनों गद्यों का आविर्भाव हुआ, फिर आदर्श मान्य क्यों नहीं? खड़ी बोली का नामकरण चाहे जब हुआ हो, किन्तु इस बोली का अस्तित्व नहीं था, यह नहीं कहा जा सकता। अस्तित्व होने पर ही नामकरण हो सकता है, इसके अतिरिक्त खड़ी बोली की प्राचीन रचनाओं का अभाव नहीं है। 'खुसरो' बहुत प्राचीन कवि हैं, वे कबीर साहब और हमारे समस्त हिन्दी के प्रतिष्ठित आचार्यों के पहले के हैं। उनकी हिन्दी-रचनाओं में सुन्दर खड़ी बोली का आदर्श मिलता है, कुछ प्रमाण लीजिये—

"बात की बात ठठोली की ठठोली।
मरद की गाँठ औरत ने खोली॥"

× × ×

"चार अंगुल का पेड़ सवा मन का पत्ता।
फल लगे अलग अलग पक जाय इकट्ठा॥"

× × ×

"एक कहानी मैं कहूँ तू सुनले मेरे पूत।
बिना परों वह उड़ गया बाँध गले में सूत॥"

× × ×

"नई की ढीली पुरानी की तंग।
बूझो तो बूझो नहीं चलो मेरे संग॥"

× × ×

"दानाई से दाँत उस पर लगाता नहीं कोई।
सब उसको भुनाते हैं पर खाता नहीं कोई॥"

देखिये, कैसी सुन्दर मुहावरेदार हिन्दी है, फिर कैसे कहें कि

वर्तमान खड़ी बोली की हिन्दी अथवा उर्दू-गद्य का कोई आदर्श नहीं। अवश्य आदर्श है; और मेरा विचार है कि मुहावरों के प्रयोग के लिए उक्त दोनों भाषाओं का गद्य ही आदर्श है। उनमें मुहावरों के शब्दों का परिवर्तन नहीं होता, अतएव मैं इसी सिद्धान्त को स्वीकार करने के लिए विवश हूँ कि मुहावरों में शाब्दिक परिवर्तन न होना चाहिए। यदि मुहावरों में स्वतंत्र भाव से शाब्दिक परिवर्तन होने लगेगा, तो मुहावरों का विशेषत्व नष्ट हो जावेगा, और वह साधारण वाक्य बन जायगा।

मुहावरों की उपयोगिता

श्रीमान् स्मिथ लिखते हैं—

*"शब्दों के अतिरिक्त भाषा की सौन्दर्य्यवृद्धि के लिए अन्य बातों की भी अपेक्षा होती है—वे परम आवश्यक हैं—इनको हम मुहावरा कह सकते हैं।"

एक दूसरे स्थान पर वे लिखते हैं—

†"मुहावरे हमारी बोलचाल के लिए जीवन की चमकती चिनगारी स्वरूप तथा स्फूर्ति हैं। वे भोज्य पदार्थों की उस जीवनप्रदायिनी सामग्री (Vitamins) के समान हैं, जो उनको सुस्वादु तथा लाभप्रद बनाती हैं। मुहावरों से शून्य भाषा या लेखनशैली अमधुर, शिथिल तथा असुन्दर हो जाती है।"

---

* "There is another element of enrichment which is of greater importance."

"This element is composed of what we call idioms." (Words and Idioms. p. 167).

† "Idioms are little sparks of life and energy in our speech; they are like, those substances called vitamins which make our food nourishing and wholesome; diction deprived of idiom

*"विज्ञानवेत्ताओं, पाठशाला के अध्यापकों तथा लकीर के फ़कीर व्याकरण के आचार्यों द्वारा मुहावरों के प्रयोग कम आदर से देखे जाते हैं परन्तु अच्छे लेखक उन्हें प्यार करते हैं। क्योंकि वास्तव में वे भाषा के जीवन एवं आत्मा हैं।"

† "मुहावरों को कविता की सहोदरा के समान हम मान सकते हैं, क्योंकि कविता के ही समान हमारे भावों को जीवित अनुभावों के रूप में वे प्रकाशित करते हैं।"

मौलाना हाली लिखते हैं—

"मुहावरा अगर उम्दा तौर से बाँधा जावे तो बिला शुबहा पस्त शेर को बलंद और बलंद को बलंदतर कर देता है।"

ऊपर की पंक्तियों में मुहावरों का जो महत्व बतलाया गया है, उससे उनकी उपयोगिता प्रकट है। जितने मुहावरे होते हैं, वे प्रायः व्यञ्जनाप्रधान होते हैं। हिन्दी शब्दसागर के प्रणेताओं ने भी यह बात मानी है। यह स्वीकृत है कि साधारण वाक्य से उस वाक्य में विशेषता होती है, और वह अधिक भावमय समझा जाता है, जिसमें लक्षणा अथवा व्यञ्जना मिलती है। ऐसे वाक्यों में भावुकता विशेष होती है, और अनेक भावों का वह सच्चा दर्पण भी होता है। उसमें थोड़े शब्दों में बहुत अधिक बातें होती हैं, और अनेक दशाओं

---

soon becomes tasteless, dull, insipid. This is why an infusion of foreign idiom is better than no idiom at all."

* "Idiom is held in little esteem by men of science, by schoolmasters, and old-fashioned grammarians, but good writers love it, for it is, in truth, "the life and spirit of language." It may be regarded as the sister of poetry, for like poetry it retranslates our concepts into living experiences." (Words and Idioms. pp. 276—277).

में वह कितने मानसिक भावों का सूचक होता है। यही कारण है कि आचार्य्यों ने व्यञ्जना को काव्य (कवितामय वाक्य-समूह) की आत्मा माना है। 'प्रतापरुद्रीय' ग्रंथकार लिखते हैं—

'शब्दार्थौ मूर्तिराख्यातौ जीवितं व्यंग्यवैभवम्।
हारादिवदलंकारास्तत्र स्युरुपमादयः॥'

काव्य की मूर्ति शब्द और अर्थ हैं। व्यंग्य, जीवन और उपमा आदिक हारादि के समान उसके आभूषण हैं।

साहित्यदर्पणकार ने व्यंजना को जो महत्व दिया है, वह भी साधारण नहीं। वे लिखते हैं—

"वाच्यातिशायिनि व्यंग्ये ध्वनिस्तत् काव्यमुतमम्"

जिस व्यंग्य में वाच्य से विशेषता हो वह ध्वनि है, ध्वनि-मूलक काव्य उत्तम समझा जाता है। 'अप्पय दीक्षित' भी उस व्यंजना को ध्वनि कहते हैं, जिसमें वाच्य से विशेषता होती है। यथा—

"यत्र वाच्यातिशायि व्यंग्यं स ध्वनिः"

यह ध्वनिमूलक व्यंजना ही अधिकतर मुहावरों का आधार होती है, ऐसी अवस्था में उनकी उपयोगिता अप्रकट नहीं। 'प्रतापरुद्रीय' ग्रंथ के कर्त्ता ने अलंकारों पर भी व्यंजना को प्रधानता दी है। व्यंजना का जिसमें अधिक विकास हो उसी काव्य को साहित्य-दर्पणकार ने उत्तम माना है। फिर व्यंजना-सर्वस्व मुहावरों की उपादेयता समर्थित क्यों न होगी? जब हम कहते हैं, 'तुम बाल की खाल निकालते हो', तो यही नहीं प्रकट करते कि वह असाध्य साधन में लगा हुआ है, या ऐसा कार्य्य कर रहा है जो कष्टसाध्य है, वरन् इस वाक्य के कहने के साथ, बाल के स्वरूप, उसकी बारीकी, उसकी खाल का अनस्तित्व, उसके उतारने की चेष्टा की निष्प्रयोजनीयता, कार्य्यकर्त्ता

की असमर्थता, और उसकी अनुचित प्रवृत्ति आदि सभी की सूचना अत्यन्त गुप्त रीति से हम उसको देते हैं, और इस प्रकार एक छोटे से वाक्य से बहुत बड़े वाक्य का कार्य्य लेते हैं। यह उपयोगिता थोड़ी नहीं। जब किसी कार्य्य की दुरूहता से घबड़ा कर कोई कहता है कि इसका करना 'टेढ़ी खीर' है, तो यही नहीं सूचित करता कि मुझसे यह कार्य्य नहीं हो सकता, यदि उसको इतना ही कहना होता, तो सीधे यह वाक्य ही वह कह देता, उसको 'टेढ़ी खीर' न बनाता। जब उसने उसको टेढ़ी खीर बनायी, तो अवश्य उसने इस संकेत-वाक्य द्वारा उन सब जटिलताओं को श्रवणकर्त्ता के सामने रखा, जिसका सम्बन्ध इस छोटे से वाक्य के साथ है। अनेक ऐसे पुरुष भी इस मुहावरे का प्रयोग करते देखे जाते हैं, जो इस मुहावरे से सम्बन्ध रखनेवाले कथानक को नहीं जानते। परन्तु उनको यह ज्ञात है कि इस मुहावरे का प्रयोग कैसे अवसर पर होता है। उनका यह ज्ञान ही उनके लिए पर्याप्त होता है और वही उनके समस्त मानसिक भावों को श्रोता पर प्रकट कर देता है। सबकी आत्मा किसी कार्य्य में अपनी असमर्थता प्रकट करने में संकुचित होती है, सभी यह चाहता है कि यदि असमर्थता प्रकट ही करनी पड़े, तो इस प्रकार प्रकट की जावे, जिसमें कलंक बहुत कुछ अस्पष्ट हो। इस लिए वह ऐसा ही वाक्य कहना चाहता है, जो उसके भाव को प्रकट भी कर दे और कलंक से उसको बहुत कुछ सुरक्षित भी रखे। 'टेढ़ी खीर', वाक्य किसी कार्य्य में असफलता-प्राप्त पुरुष के लिए ऐसा ही है। वह उसके मनोभाव को प्रकट भी कर देता है, और उसके लाञ्छन पर उस कार्य्य की दुरूहता का परदा भी डाल देता है। मुहावरों की उपादेयता इसी प्रकार की है, वे अनेक मानसिक भावों के थोड़े में प्रकट कर देने के साधन, और प्रायः आन्तरिक

अनेक उलझनों के निराकरण के हेतु होते हैं। मिस्टर स्मिथ एक स्थान पर इस विषय में अपने विचार इस रूप में प्रकट करते हैं—

* "वे मनोभाव जो विचार-नियम के विद्रोही हैं, जो कल्पना के बदले प्रतिकृति को, व्याकरण के बदले शब्द-रचना की स्निग्धता को और तर्क के बदले स्फूर्ति को उत्तम समझते हैं, यद्यपि तर्क की कसौटी पर नहीं कसे जा सकते, तो भी वे वस्तुओं का वह सजीव परिज्ञान हैं, जो यथार्थ भाषा के मुहावरा रूपी झरोखों से झलक जाते हैं।"

हिन्दी-संसार मुहावरों की उपयोगिता से अनभिज्ञ नहीं, वह चिरकाल से उनका प्रयोग करता आता है। प्राचीन कवियों और आधुनिक अनेक गद्य-लेखकों द्वारा भी वह आदृत है। किन्तु खड़ी बोली के कवियों की यथोचित दृष्टि अभी मुहावरों के प्रयोग पर नहीं पड़ी है, मुझे विश्वास है, यह उपेक्षा बहुत दिन न रहेगी। यदि खड़ी बोली की कविता को मधुर बनाना हमें इष्ट है; यदि कर्कश शब्दावली से उसको बचाना है, यदि बोलचाल के रंग में उसे रँगना है, यदि उसको प्रसादमयी, सम्पन्न, एवं हृदयहारिणी बनाने की इच्छा है, तो हमको मुहावरों का आदर करना होगा और उनके उचित प्रयोग से उसकी शोभा बढ़ानी होगी। साथ ही रोज़मर्रा अथवा बोलचाल का भी पूर्ण ध्यान रखना होगा। मुहावरों के उपेक्षित होने पर भाषा में उतना विप्लव नहीं होता, जितना उस

---

*"This element of thought which is rebellious to the laws of thought, which prefers images to abstraction, energy to logic, terseness to grammar—it is precisely this illogical but living sense of things which looks out at us through the idiomatic loopholes in national language. (Words and Idioms p. 276).

समय होता है, जब बोलचाल का प्रयोग करने में असावधानी की जाती है। मुहावरों का अशुद्ध प्रयोग भाषा को सदोष बनाता है, किन्तु रोज़मर्रा अथवा बोलचाल का अयथा व्यवहार उसके मूल पर ही कुठाराघात करता है। वह भाषा का जीवन है, उसके नाश से भाषा स्वयं नष्ट हो जाती है। बोलचाल का ठीक ठीक प्रयोग न होना वाक्य को दुर्बोध भी बनाता है।

आजकल प्रायः यह चर्चा सुनी जाती है कि खड़ी बोली की हिन्दी कविता, उर्दू भाषा जैसी सुन्दर और हृदयग्राहिणी नहीं होती। इस कथन में बहुत कुछ सत्यता है, कारण यह है कि बोलचाल अथवा रोज़मर्रा और मुहावरों पर जितना उर्दू कवियों का अधिकार है, जिस सुन्दरता से वे इनका प्रयोग अपनी कविताओं में करते हैं, खड़ी बोली के कवियों को न वह अधिकार ही प्राप्त है, न वह योग्यता ही। उनकी दृष्टि भी जैसी चाहिए वैसी इधर नहीं, इसलिए उन्हें उर्दू कवियों जैसी सफलता भी नहीं मिलती। नीचे के उर्दू पद्यों को देखिये, इनको रोज़मर्रा और मुहावरों ने कितना हृदयग्राही और सुन्दर बना दिया है—इनमें कैसा प्रवाह है और कितनी सरसता !

अनीस—"मिला जिन्हें उन्हें उफ़तादगी से औज मिला।
उन्होंने खाई है ठोकर जो सर उठाके चले ॥
अनीस दम का भरोसा नहीं ठहर जाओ।
चिराग़ लेके कहाँ सामने हवा के चले ॥"

× × ×

दबीर—"याँ शोर, वहाँ ग़ुल, इधर आई, उधर आई।
वह चमकी, वह तड़पी, वह छुपी, वह नज़र आई ॥

वह तेग़ गई खोद में वह सर में दर आई।
गर्दन से बढ़ी सीना लिया ता कमर आई॥
सिन उसका घटा था जो दिलेराना बढ़ा था।
मुँह की वही खाता था जो मुँह उसके चढ़ा था॥"

× × ×

नसीम—"जाँ निकल जावेगी तन से ऐ नसीम।
गुल को बूए गुल हवा बतलायेगी॥"

× × ×

सबा—"उठ गये हैं नसीम जिस दिन से।
ऐ सबा वह हवाय बाग़ नहीं॥"

× × ×

अमीर—"लाश पर इबरत यह कहती है अमीर।
आये थे दुनिया में इस दिन के लिये।"

× × ×

हसन—"चल दिल उसकी गली में रो आवें।
कुछ तो दिल का गुबार धो आवें॥
गो अभी आये हैं यह है जी में।
फिर भी टुक उसके पास हो आवें॥
गो ख़फ़ा सब हुआ करें पर हम।
एक ज़रा उसको देख तो आवें॥"

× × ×

दाग़—"तुमने हमसे बदले गिन गिन के लिये।
हमने क्या चाहा था इस दिन के लिये॥
फ़ैसला हो आज मेरा आप का।
यह उठा रक्खा है किस दिन के लिये॥"

मुहावरा के विषय में मौलाना हाली की सम्मति ऊपर उठा चुका हूँ, रोज़मर्रा के विषय में वे क्या कहते हैं, वह भी सुनिये—

"नज़्म हो या नसर (पद्य हो या गद्य) दोनों में रोज़मर्रा की पाबन्दी जहाँ तक मुमकिन हो निहायत ज़रूरी है"

"मुहावरा को शेर में ऐसा समझना चाहिए, जैसे कोई ख़ूबसूरत अज़ो (सुन्दर अंग) बदन इन्सान (मनुष्य-शरीर) में। और रोज़मर्रा को ऐसा जानना चाहिए जैसे तनासुब आज़ा (अवयव-संगठन) बदन इन्सान (मनुष्य-शरीर) में। जैसे बग़ैर तनासुब आज़ा के किसी ख़ास (मुख्य) अज़ो (अवयव) की ख़ूबसूरती (सुन्दरता) से हुस्न बशरी (मानस-सौंदर्य्य) कामिल (पूर्ण) नहीं समझा जाता। उसी तरह बग़ैर रोज़मर्रा की पाबंदी के महज़ (केवल) मुहावरों के जा बेजा रख देने से शेर में कुछ ख़ूबी (उत्तमता) पैदा नहीं हो सकती।" —मुकद्दमा शेर व शायरी, पृष्ठ-१४४

मीर अनीस उर्दू के प्रतिष्ठा-प्राप्त शायरों में हैं। मरसिया कहने में वे अपने समय के अद्वितीय थे। आज तक उनके जैसा करुणरस का आचार्य्य उर्दू संसार में उत्पन्न नहीं हुआ। जिस समय वे अपनी कविता पढ़ते, जनता पर जादू सा करते। मौलाना शिब्ली ने 'मवाज़िना अनीस व दबीर' नाम की एक पुस्तक लिखी है, इसमें उन्होंने प्रधानता का सेहरा अनीस के सर पर ही बाँधा है। क्यों! स लिए कि उनकी भाषा में रोज़मर्रा और मुहावरों की ही अधिकता होती थी। वे लिखते हैं—

"जो अलफ़ाज़ (शब्द-समूह) और जो ख़ास तरकीबें (मुख्य प्रयोग) अहलज़बान (भाषा-भाषियों) की बोलचाल में ज़ियादा मुस्तमल (व्यवहृत) और मुतदावल (गृहित) होती हैं, उनको रोज़मर्रा कहते हैं। रोज़मर्रा अगर्चे एक जुदागाना वस्फ़ (भिन्न गुण) समझा जाता है। लेकिन दरहक़ीक़त (वास्तव में) वह फ़साहत (प्रसादगुण) ही का एक फ़र्द ख़ास (अंग

विशेष) है। यह ज़ाहिर है कि आम बोलचाल में वही लफ़्ज़ (शब्द) ज़बान पर आवेंगे जो सदा साफ़ और सहल हों। और अगर उनमें कुछ सक्ल (क्लिष्टता) और गिरानी (गहनता) भी हो तो रात दिन की बोलचाल और कसरत इस्तेमाल (अधिक व्यवहार) से वह मँज कर साफ हो गये हों।"

"रोज़मर्रा के लिए फ़सीह (प्रसादगुण-सम्पन्न) होना लाज़िम (आवश्यक) है। मीर अनीस के कलाम में निहायत कसरत (बहुत अधिकता) से रोज़मर्रा और मुहावरा का इस्तेमाल (व्यवहार) पाया जाता है, इसपर उनको नाज़ (गर्व) भी था।"—मवाज़िना अनीस व दबीर, पृष्ठ—३१

अनीस के अतिरिक्त अमीर, दाग़ आदि उर्दू भाषा के जो अत्यन्त प्रसिद्ध और मान्य कवि हैं, उन सबकी रचनाओं में भी रोज़मर्रा और मुहावरों की अधिकता पायी जाती है। मीरहसन का 'सेहरुलबयान' और नसीम का 'गुलज़ार नसीम' ऐसी मसनवियाँ हैं, जो उर्दू में अपना जोड़ नहीं रखतीं। जिसने इन को एक बार पढ़ा है, वह उनकी शतमुख से प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकता। कहा जा सकता है, इसका भेद क्या है ? दूसरा कोई भेद नहीं, यही भेद है कि उनमें मुहावरों और रोज़मर्रा की वह बहार है, जो देखने से काम रखती है। प्रमाण भी लीजिये—

मीरहसन साहब लिखते हैं—

"वह जोगिन भी सौ सौ तरह कर अदा।
हरेक तान में उसको लेती लुभा॥
कभी तीखी चितवन से घायल किया।
कभी मीठी बातों से मायल किया॥
कभी तिरछी नज़रों से मारा उसे।
कभी सीधे दिल से पुकारा उसे॥

वह हरचंद आँखें दिखाती रही।
पर नज़रों से दिल को लुभाती रही।।"—*सेहरुल्बयान*

कुछ नसीम के पद्यों को भी देखिये—

"इनसाँ व परी का सामना क्या। मुट्ठी में हवा का थामना क्या।
रातों को जो गिनती थी सितारे। दिन गिनने लगी खुशी के मारे।
करती थी जो भूक प्यास बस में। आँसू पीती थी खा के क़समें।
जामा से जो ज़िन्दगी के थी तंग। कपड़ों के एवज़ बदलती थी रंग।"
—*गुलज़ार नसीम*

रोज़मर्रा अथवा बोलचाल की भाषा में क्या महत्व है, उर्दू के कविगण उसका कितना सूक्ष्म विचार करते हैं, और उसके विषय में कितने सावधान रहते हैं, कुछ उसके उदाहरण भी देखिये। रोज़मर्रा की पाबन्दी का प्रतिपादन करते हुए एक स्थान पर मौलाना हाली लिखते हैं—

"आज तक उनसे मिलने का मौका न मिला"; यहाँ 'न मिला' की जगह 'नहीं मिला' चाहिए। "खाबिन्द के मरने से दरगोर हुई"; यहाँ 'जिन्दा दरगोर हो गई' चाहिए। "सो गये जब बख़्त तब बेदार आँखें हो गईं"; 'हो गईं' की जगह 'हुईं' चाहिए। "देखते ही देखते यह क्या हुआ"; यहाँ 'क्या हो गया' चाहिए।—मुकद्दमा शेर व शायरी, पृष्ठ—१४३

मौलाना आज़ाद ने 'आबेहयात' नामक पुस्तक के ४७८ पृष्ठ में एक छेड़छाड़ की चर्चा यों की है—

एक दफ़ा शेख़ मरहूम (शेख़ इबराहीम–ज़ौक़) ने मशायरा में एक ग़ज़ल पढ़ी, मतला यह था—

"नरगिस के फूल भेजे हैं बटवे में डाल कर।
ईमाँ यह है कि भेज दो आँखें निकाल कर।"

शाह साहब (शाह नसीर) ने कहा कि मियाँ इबराहीम ! फूल बटवे में नहीं होते—यह कहो—

'नरगिस के फूल भेजे हैं दोने में डाल कर।'

उन्होंने कहा, दोने में रखना होता है, डालना नहीं होता; यों कहूँगा—

'बादाम दो जो भेजे हैं बटवे में डाल कर।'

रोज़मर्रा अथवा बोलचाल की इस सूक्ष्मता और गहनता की ओर हिन्दी भाषा के इने-गिने सुलेखकों और सुकवियों की ही दृष्टि है. अधिकांश इस विषय में निरपेक्ष अथवा असावधान हैं। वांछनीय यह है कि यदि अपनी भाषा को सम्मानित, सुशृंखलित और सम्पन्न बनाना है, यदि उसको राष्ट्र भाषा के प्रतिष्ठित पद पर बैठालना है, तो इस विषय में हम उर्दूवालों से पीछे न रहें।

इन दिनों दो प्रकृति बड़ी ही प्रबल है—पहली यह कि अपने वाक्य-विन्यास पर भरोसा रखना और उसीको साहित्य-सर्वस्व समझना। दूसरी यह कि नये मुहावरों का आविष्कार करना अथवा अँगरेज़ी मुहावरों का अधिक अनुवाद रख देना, और ऐसा करते समय अपनी भाषा की संस्कृति और सरणि का ध्यान बिल्कुल न रखना। किन्तु यह दोनों प्रकृति प्रशंसनीय नहीं। अपनी भाषा पर भरोसा रखना, बुरा नहीं; सब कवियों में यह विशेषता होती है, परन्तु रोज़मर्रा का त्याग भी उचित नहीं, क्योंकि वही किसी कवि के वाक्यों को विशेष प्रसाद-गुण-सम्पन्न कर सकता है। रोज़मर्रा का सहारा न लेने से प्रायः वाक्य जटिल हो जाता है, जो दुरूहता का कारण होता है। कवि का निज रचित वाक्य सुन्दर हो सकता है, किन्तु यदि उसमें रोज़मर्रा का पुट नहीं है, तो यह भी हो सकता है कि वह यथार्थ बोधगम्य न हो। इसके

अतिरिक्त यदि कहीं उसने रोज़मर्रा की टाँग तोड़ी, तब तो चन्द्रमा के समान वह उस कलंक से कलंकित हो जाता है, जिसपर प्रायः लोगों की दृष्टि पड़ती है। मुहावरों के विषय में भी ऐसी ही बात कही जा सकती है। मुहावरे भाषा के शृंगार हैं, सुविधा एवं सौंदर्य्य-सृष्टि अथवा भावविकास के लिए उनका सृजन हुआ है। उनकी उपेक्षा उचित नहीं। वे उस आधारस्तंभ के समान हैं, जिनके अवलम्ब से अनेक सुविचार-मन्दिर का निर्माण सुगमता से हो सकता है। भाव-साम्राज्य में उनके विशेष अधिकार हैं, उनको छोड़ हम अनेक उचित स्वत्वों से वंचित हो सकते हैं। कहा जाता है उनके प्रयोग भी कभी कभी भाव को जटिल बना देता है, और वाक्य को भी बोधगम्य नहीं रखते। यदि यह सत्य है, तो नये मुहावरों की सृष्टि क्यों की जाती है, उनमें तो ये दोष और अधिक हो सकते हैं। सच्ची बात यह है कि संसार में निर्दोष कौन पदार्थ है, साधारण दोषों के कारण महान् गुणों का त्याग नहीं हो सकता। कभी कभी अवश्य मुहावरों के समझने में उलझन होती है, और उस समय यथातथ्य भाव-विकास भी नहीं होता। किन्तु ऐसा विशेष कर वहीं होता है, जहाँ मुहावरों का समुचित व्यवहार नहीं होता, अथवा जहाँ किसीकी अनभिज्ञता उसका अर्थ समझने में समर्थ नहीं होती। इसलिए ऐसी बातें मुहावरों की उपयोगिता के विरुद्ध प्रमाणकोटि में ग्रहण नहीं की जा सकतीं। अठारहवीं सदी में इँगलैण्ड में इसी प्रकार के कई एक दोष मुहावरों पर लगा कर कुछ विद्वानों ने उनके वहिष्कार का आन्दोलन आरम्भ किया था, किन्तु यह आन्दोलन विफल हुआ, और मुहावरों की उपयोगिता ने उसको पूर्ववत् अपने प्रतिष्ठित सिंहासन पर समासीन रखा। मिस्टर स्मिथ लिखते हैं—

*"अठारहवीं शताब्दी की रुचि ने मुहावरों को, गँवारू तथा नियमविरुद्ध बतला कर बुरा कहा है। यहाँ तक कि एडिसन ने भी गद्य में मुहावरों को स्थान देते हुए, कवियों को इसके प्रयोग करने में सावधान किया है। डाक्टर जानसन ने अपने कोष में मुहावरों को व्याकरण के नियमों के विरुद्ध, तथा दूषित आदि विशेषणों से कलंकित कर, अँगरेज़ी भाषा से उन्हें दूर करने का प्रयत्न किया है।"

†"यद्यपि यह आक्षेप अब पुराना हो गया है, और हम लोग लॉण्डर के इस विचार से सहमत हैं कि "प्रत्येक अच्छा लेखक मुहावरों का अधिक प्रयोग करता है, और मुहावरे भाषा के जीवन तथा आत्मा हैं, तथापि अठारहवीं शताब्दी के विचार का कुछ असर अभी तक विद्यमान है। यद्यपि हम लोग विपक्षियों के दिये हुए कारणों का विश्वास अब नहीं करते"।

कुछ दिनों से एक और प्रवृत्ति भी प्रबलभूत है, लोग अपनी अज्ञता अथवा अनभिज्ञता को स्वीकार करना पसंद नहीं करते।

---

† "The taste of the eighteenth century on the whole condemned it, regarding idiomatic phrases as vulgarisms, and as offences against logic and human reason. Even Addison, while employing idioms in his prose, warned poets against their use, and Dr. Johnson more ambitiously attempted to banish them from our language, often stigmatizing them as "low" and "ungrammatical" in his Dictionary".

*"Although this point of view is now an obsolute one, and we should all probably agree with Landor's saying that "every good writer has much idiom, it is the life and spirit of language", even when they have been shown to be devoid of valid ground and reason ; still often leave behind a slight stigma of disapprobation". (Words and Idioms p. 264),

उनकी कल्पित आत्समर्यादा उनको ऐसा करने के लिए विवश करती है। अपनी असमर्थता स्वीकार करने के स्थान पर उनको 'अंगूर को खट्टा' कहना ही प्रिय है। यदि किसी विषय में उनको क्षमता नहीं है, अथवा साहित्य के किसी अंग पर वे अधिकार नहीं रखते, तो वे उसीको कलंकित और दूषित बनाने की चेष्टा करेंगे, उसीको अव्यवहार्य्य और अप्रयोज्य बतलावेंगे, अपनी त्रुटि पर दृष्टिपात न करेंगे। यदि छन्दोज्ञान ठीक ठीक नहीं, तो कहेंगे वर्ण और मात्राओं की नियमबद्धता अग्राह्य है, स्वतंत्र विचार के लोग उन्मुक्त पथ को ही उत्तम समझते हैं। पिंगल अथवा साहित्य के नियमों की अनुगामिता को वे दुर्बलता का चिह्न मानते हैं, उनकी स्वयं स्वीकृत सबल आत्माएँ उनका तिरस्कार करती हैं, और निज निर्माण किये हुए स्वतंत्र पथ पर स्वच्छन्द विचर कर ही आनन्द लाभ करती हैं। सब नवीन विचार वाले ही ऐसा कहा करते, नियमबद्धता से घबड़ाते, और उसका प्रतिपालन नहीं करना चाहते, यह बात नहीं कही जा सकती। उनमें भी विवेकशील और विचारमान सज्जन एवं सुकवि हैं, जो साहित्य के नियमों पर पूरा ध्यान रखते, और सफलता के साथ भगवती वीणापाणि की सेवा करते हैं। किन्तु आजकल व्यापकता इसी प्रकार के विचारों की देखी जाती है। ऐसी अवस्था में मुहावरों और रोजमर्रा पर वक्र दृष्टि होना स्वाभाविक है। किन्तु मैं इसको शुभ लक्षण नहीं मानता, इससे साहित्य का प्रसाद-गुण नष्ट हो रहा है। और उसका सुन्दर और सज्जित मार्ग, कंटकाकीर्ण और असुन्दर बनता जाता है।

प्रायः यह तर्क किया जाता है कि क्या रोजमर्रा अथवा बोलचाल के शब्द परिमित होते हैं? क्या उनमें वृद्धि नहीं होती? क्या नवीन मुहावरे नहीं बनते? यदि बनते हैं, तो इस प्रकार का तर्क

कहाँ तक उचित है ? उत्तर यह है कि बोलचाल के शब्द परिमित नहीं होते, उनकी वृद्धि होती रहती है, किन्तु उनके वर्द्धन का अधिकार सर्वसाधारण को प्राप्त है, किसी कवि अथवा ग्रंथकार को नहीं। जो कवि बोलचाल का अनुसरण करना चाहते हैं, वे जनता के वाग्विलास पर दृष्टि रखते हैं, उसीसे प्रचलित भाषा की शिक्षा पाते हैं। जनता की भाषा कवि की कविता की अनुगामिनी नहीं होती। कवि स्वतंत्र भाषा का प्रयोग कर सकता है, और अपनी रचना को मनोभिलषित शब्दमाला से सजा सकता है। किन्तु उसकी भाषा जितनी ही बोलचाल से दूर होगी, उतनी ही उसकी रचना दुर्बोध और जटिल हो जायगी, और उतनी ही उसकी लोकप्रियता में न्यूनता होगी। कविता का उद्देश्य मनोविनोद ही नहीं है, समाज-उत्थान, देश-सेवा, लोकशिक्षण, परोपकार और सदाचार-शिक्षा आदि भी है। जिस कविता में प्रसाद-गुण नहीं उससे ठीक-ठीक मनोविनोद भी नहीं हो सकता, इसलिए यथार्थ कविता वही है, जो अधिकतर सरल और बोधगम्य हो और ऐसी कविता तभी होगी, जब उसमें बोलचाल का रंग होगा। जो 'स्वान्तः सुखाय' का राग गाते हैं उनसे मुझको इतना ही कहना है कि इस विचार में घोर स्वार्थपरता की बू आती है। किसीके विशेष विचार पर किसी को अधिकार नहीं, किन्तु कविता के उद्देश्यों पर दृष्टि रखकर ही कोई मीमांसा की जा सकती है। उक्त बातों के औचित्य का ध्यान करके मेरा विचार है कि कविता की भाषा को रोज़मर्रा का त्याग न करना चाहिए। आवश्यकता पड़ने पर हम कुछ स्वतंत्रता ग्रहण कर सकते हैं, किन्तु बोलचाल की भाषा से बहुत दूर पड़ जाना, अथवा उसका अधिकांश त्याग समुचित नहीं।

मैं यह भी स्वीकार करता हूँ कि नये मुहावरे बनते हैं, और

एक भाषा से अनुदित होकर दूसरी भाषा में भी आते हैं। इस विषय में पहले मैं बहुत कुछ लिख आया हूँ। यहाँ विशेष लिखने की आवश्यकता नहीं। तथापि इतना निवेदन करूँगा कि नियमित बातें ही ग्राह्य होती हैं, और उचित आविष्कार ही यथाकाल आदृत होते हैं। सबके स्वत्व समान नहीं होते, योग्यता भी सबकी एक-सी नहीं होती, सब आविष्कारक नहीं होते, और न सभी के शिर पर महत्ता की पगड़ी बाँधी जाती है। सब कार्य्यों में अधिकारी भेद होता है, और जिस विषय में जिसका पूर्ण अधिकार स्वीकृत होता है, उस विषय में उसी की प्रणाली स्वीकृत और गृहीत होती है।

श्रीमान् स्मिथ कहते हैं—

* 'नवीन शब्दों का आविष्कार कठिन नहीं, कविता में एक ऐसी पंक्ति का लिख देना, जो सर्वसाधारण में प्रचलित हो जावे दुष्कर नहीं। परन्तु भाषा में एक नये मुहावरे की उत्पत्ति के लिए कुछ वैसी ही शक्ति आवश्यक जान पड़ती है, जो या तो शेक्सपियर में मिलती है, अथवा बहुत से ऐसे अनपढ़ नर-नारियों में जिनके नाम सर्वदा अज्ञात की गोद में रहेंगे।"

यह लिख कर कि—

---

*"It is possible to invent a new word, it is possible to write a line of poetry which will go to increase the stock of English quotations, but to add a new idiom to the language seems almost to require powers such as were only possessed by Shakespeare, and by thousands of illiterate men and women whose names will never be known". (Words and idioms. p. 231).

* "बाइबिल के बाद शेक्सपियर की नाटकावली अँगरेज़ी भाषा के मुहावरों की सबसे बड़ी जन्मस्थली है"

"यह विशेषकर शेक्सपियर का ही गौरव है कि उसके शब्द तथा प्रयोग हमारी बोलचाल की भाषा में मिल कर एक हो गये हैं"

श्रीमान् स्मिथ यह भी लिखते हैं—

† "जितने मुहावरे तथा उक्तियाँ शेक्सपियर की लेखनी से निकली हैं, वे सब उसके आविष्कृत किये नहीं हैं। उसके नाटक नित्य की बोलचाल की भाषा से भरे हैं। "Out of joint" शब्द का प्रयोग शेक्सपियर ने 'हैमलेट' नामक नाटक में किया है, परन्तु शेक्सपियर के तीन सौ वर्ष पूर्व की पुस्तक में भी उसका पता लगता है।"

इन वाक्यों से क्या पाया जाता है, यही न कि शेक्सपियर जैसे महाकवि और क्षमताशाली लेखक द्वारा जो मुहावरे आविष्कृत माने जाते हैं, उनके विषय में भी यह नहीं कहा जा सकता कि वे सबके सब उन्हींके आविष्कार हैं, क्योंकि उनमें से कितनों का पता उनसे सैकड़ों वर्ष की पूर्व की पुस्तकों में मिलता है। इससे

---

*"After the Bible, Shakespeare's plays are, as we might expect, the richest literary source of English idioms". (Words and idioms. p. 227).

"They have as Dr. Bradley puts it, "entered into the texture of the diction of the literature and daily conversation".

† "While, however, these expessions are familiar to us from Shakespeare's writings, it by no means follows that they are all of his invention; his plays arc full of tags from popular speech; the idiom "Out of joint", has been found three hundred years before the date of Hamlet". (Words and idioms. p. 229).

यही सिद्ध होता है, कि मान्य विद्वानों के नाम से जो मुहावरे प्रसिद्ध हो जाते हैं, उनमें से भी कितनों का आधार बोलचाल होती है, और खोजने पर उनमें से कितनों का पता पूर्व के ग्रंथों में भी चलता है। मुहावरों का विषय ऐसा ही जटिल है, उनका निर्माण आसान नहीं, मनः-कल्पित विचित्र वाक्य आग्रहपूर्वक मुहावरे नहीं बनाये जा सकते। बोलचाल के आधार से ही मुहावरे गढ़े जा सकते हैं, और वे ही मुहावरों का आविष्कार कर सकते हैं, जो शेक्सपियर जैसे सर्वमान्य विद्वान हों, सबका यह काम नहीं। उर्दू में भी कुछ उस्तादों ने मनमाने मुहावरे गढ़े, पर उपयुक्त न होने के कारण थोड़े ही दिनों में वे लोप हो गये, उनका प्रचार न हो सका। मौलाना आज़ाद अपने आबेहयात नामक ग्रंथ के ४५ पृष्ठ में लिखते हैं—

"बाज़ फ़ारसी के मुहावरे या उनके तरज़ुमे ऐसे थे कि मीर व मिरज़ा वग़ैरह उस्तादों ने उन्हें लिये मगर मुतअख़िरीन ने छोड़ दिये।"

ये मुहावरे मनःकल्पित नहीं थे। एक सम्पन्न भाषा उनका आधार थी, फिर भी वे प्रचलित न हो सके। जिनका आधार केवल मनःकल्पना है, उनकी बात ही क्या! फ़ारसी का एक मुहावरा है—'बू करदन', इसका अर्थ है सूँघना। सौदा लिखते हैं—

"देखूँ न कभी गुल को तेरे मुँह के मैं होते।
संबुल के सिवा ज़ुल्फ़ तेरी बू न करूँ मैं॥"

मीरसाहब कुछ आगे बढ़ते हैं और यों लिखते हैं—

"गुलको महबूब हम क़यास किया।
फ़र्क़ निकला बहुत जो बास किया॥"

पहले पद्य में 'बू करना' और दूसरे पद्य में 'बास किया' सूँघने के अर्थ में लिखा गया है। आप देखें ये प्रयोग कितने भ्रामक हैं।

यही कारण है कि एक विशेष भाषा का सहारा पाने पर भी इनका प्रचार नहीं हुआ। यही बात उन मुहावरों के विषय में भी कही जा सकती है, जो मनःकल्पित होते हैं, अथवा जो वाक्यरचना का बल अथवा अपना शब्दवैभव प्रकट करने के लिए बिना उचित आधार के गढ़े जाते हैं। जिन गढ़े मुहावरों का अवलंब कोई अत्यन्त प्रचलित अथवा शासक की भाषा होती है, और जो बोलचाल की भाषा से अधिकतर मिलते-जुलते और उसकी प्रकृति के अनुकूल होते हैं, वे ही मुहावरे काल पाकर प्रचलित हो जाते हैं। जिन मुहावरों में ये बातें नहीं होतीं, वे क्षणस्थायी होते हैं, और बुलबुलों के समान बनते बिगड़ते रहते हैं। वरन् एक भ्रान्त लेखक के उपेक्षित लेख के ही सम्बल होते हैं, कवि-सम्प्रदाय अथवा सर्वसाधारण की दृष्टि उधर जाती ही नहीं। उर्दू में सैकड़ों मुहावरे ऐसे पाये जाते हैं, जो नवीन हैं, और आवश्यकतानुसार अथवा किसी विशेष उद्देश्य से गढ़े गये हैं; किन्तु वे गृहीत हैं और उनका चलन हो गया है। कारण इसका यह है कि उनका आधार वह फ़ारसी भाषा है, जो उस समय के शासकों की आदृत भाषा थी। दूसरी बात यह कि उनका स्वरूप उस समय की बोलचाल की भाषा के ढाँचे में ढला हुआ है। अनेकों में केवल हिन्दी शब्दों का शाब्दिक परिवर्तनमात्र है, ऐसी अवस्था में उनका प्रचार हो जाना स्वाभाविक था, विशेषकर इसलिए कि उनके आविष्कार और प्रचार में उस समय के वावदूक विद्वानों और कविसम्प्रदाय के प्रतिष्ठित और मान्य आचार्यों का विशेष हाथ था। हवा बाँधना, हवा बतलाना, गुल खिलाना, जान से गुज़रना, दिल धड़कना, आदि ऐसे ही मुहावरे हैं। इस समय भी नवीन मुहावरों का आविष्कृत होकर प्रचलित हो जाना अस्वाभाविक नहीं, किन्तु उनमें

आवश्यक नियमबद्धता अपेक्षित है। अँगरेजी भाषा वर्तमान शासकों की भाषा है, उसके कुछ मुहावरों का हिन्दी अथवा उर्दू में प्रचलित हो जाना विचित्र नहीं, किन्तु उसकी हिन्दी प्रकृति होनी चाहिए। सर्वसाधारण में प्रचलित हुए बिना ही, कविसम्प्रदाय अथवा लेखक-मण्डल में ही इस प्रकार के कुछ मुहावरों का प्रचार हो सकता है, यदि उसमें सभी अपेक्षित बातें मौजूद हों। आजकल हिन्दी और उर्दू दोनों में कई एक अँगरेज़ी मुहावरे अनुदित होकर प्रचलित हैं; उनमें एक 'सफ़ेद झूठ' भी है। अँगरेजी के 'ह्वाइट लाई' (White lie) मुहावरे का यह अनुवाद है। हिन्दी अथवा उर्दू में जिस अर्थ में 'बिल्कुल झूठ' का प्रयोग होता है, उसी अर्थ में आजकल इस मुहावरे का प्रचलन है। मेरा तो विचार यह है कि 'बिल्कुल झूठ' वाक्य के मौजूद होते, 'सफ़ेद झूठ' के व्यवहार की आवश्यकता नहीं, किन्तु समय-प्रवाह को कौन रोके, सभी विजित जाति जेता का पदानुसरण अनेक बातों में करती है, हम लोग इस छूत से कैसे बचते! काल नवीनता-प्रिय होता है, बहुत से भावुक नये भावों के भूखे होते हैं, नई बातें सामने लाकर कितने महत्वाकांक्षी महत्व लाभ के लिए भी लालायित रहते हैं, ऐसी दशा में इस प्रकार का प्रवाह रोका नहीं जा सकता। 'सफ़ेद झूठ' का व्यवहार ऐसे ही विचारों का परिणाम है। इस प्रकार के शब्द अथवा वाक्य जब पहले-पहल किसी बोलचाल की भाषा में आते हैं, तो उनके अर्थबोध में व्याघात होता है, किन्तु इस संकट का निवारण वे ही लोग करते हैं, जो एक प्रकार से उसके आविष्कारक अथवा प्रचारक होते हैं। उनका मूल भाषा का ज्ञान ही उसकी दुर्बोधता को दूर करता है, फिर धीरे-धीरे वह शब्द अथवा वाक्य अन्यों का भी परिचित हो जाता है, और इस प्रकार एक नवीन

मुहावरे के प्रचार का सूत्रपात होता है। 'सफ़ेद झूठ' का प्रचार पहले कुछ अँगरेज़ी के विद्वानों में पीछे क्रमशः उन लोगों से मिलने-जुलनेवालों में, बाद को जनता में हुआ, अब हिन्दी और उर्दू की लिखित भाषा में भी उसका व्यवहार होने लगा है। इस प्रकार के व्यवहार का कोई विरोध नहीं, यह स्वाभाविक है। कवि-सम्प्रदाय के कुछ मुहावरे निजके होते हैं, उनका व्यवहार उनके सम्प्रदाय तक परिमित होता है। उर्दू में 'फ़लक को खबर न होना', 'हरफ़ आना', 'पैमाना पुर करना', आदि ऐसे ही मुहावरे हैं। ऐसे मुहावरे सर्वमान्य नहीं होते, फिर भी उतने निन्दनीय नहीं, क्योंकि एक विशेष सीमा में उनका प्रचार रहता है। निन्दनीय तो वे गढ़े वाक्य हैं, जिनकी सृष्टि निराधार अनर्गल शब्द-योजना द्वारा होती है, और उनको मुहावरा नाम इसलिए दिया जाता है कि जिसमें उसके अयोग्य और भ्रान्त उद्भावक महाकवि कालिदास और माघ एवं ब्राउनिंग अथच शेक्सपियर के उच्च सिंहासन पर विराजमान हो सकें। यह वामन होकर चाँद छूने का साहस है। ऐसी अनधिकार चेष्टा सदा हास्यास्पद होती है और आदर की दृष्टि से नहीं देखी जाती।

मैं अध्यवसाय का विरोधी नहीं हूँ और न उद्योगशीलता का शत्रु। मैं उस जाति की पदधूलि अपने शिर पर वहन करता हूँ, जो चिन्ताशीलता का परिचय देती है। मैं उन सहृदय और मननशील विबुधों की नतमस्तक होकर वन्दना करता हूँ जो अपनी भाषा में संजीवनी शक्ति का संचार करने और उसको नित्य नूतन अलङ्कारों से अलंकृत बनाने के लिए उत्सुक हैं। मैं नव नव भावोन्मेष को भाषा का जीवन, और अभिनव आविष्कारों को भावुकता-युवती का शृंगार समझता हूँ। प्राचीनता और नवीनता दोनों के लिए स्थान है, और यथास्थान दोनों

अभिनन्दनीय हैं। कविता-कामिनी को सुसज्जित देख कौन-सा हृदय प्रफुल्लित न होगा, किसकी धमनी में आनन्दधारा का प्रवाह न होगा। प्रतिभा का विकास किसको विकसित नहीं बनाता, और सहृदयता किसको विमुग्ध नहीं करती। आज का अल्पज्ञ कल विशेषज्ञ हो सकता है। किसी समय जो कवि-कर्म्म आदर की दृष्टि से नहीं देखा जाता, कालान्तर में उसी पर सम्मान-पुष्पवृष्टि होती दिखलाई पड़ती है। जो उद्भावना कभी लाञ्छित और अपमानित होती देखी गयी, कुछ दिनों बाद उसी के सामने बड़े-बड़े विरोधियों को नतमस्तक होते देखा गया। कालीदास और माघ को समय फिर उत्पन्न कर सकता है और ब्राउनिंग एवं शेक्सपियर जैसी सत्कीर्ति उनके अन्य उत्तराधिकारी भी प्राप्त कर सकते हैं। किसी मनुष्य विशेष पर ही कोई विशेष महत्ता नहीं हो गयी, और न किसी प्रधान पुरुष के हाथ संसार की समस्त प्रधानता बिक गयी। यह मैं स्वीकार करता हूँ और इस प्रकार के समस्त सिद्धान्तों से सहमत हूँ। किन्तु अहम्मन्यता और उच्छृङ्खलता का समर्थन इन बातों से नहीं हो सकता। कोई भी साहित्यमर्मज्ञ और भाषा-हिताभिलाषी यह न चाहेगा, कि उसका सुन्दर अंग-प्रत्यंग छिन्न भिन्न कर दिया जावे, और शृंगार के बहाने उसका संहारपथ प्रशस्त बनाया जावे। वृथा आस्फालन अच्छा नहीं, अथवा ज्ञान उत्तम नहीं; न तो अल्पज्ञ का विशेषज्ञ बनना समर्थनीय है, न मंद को कविकीर्ति-कामना अभिनन्दनीय। साहित्य राज्य में अराजकता वांछनीय नहीं होती, न ज्ञान लव दुर्विदग्ध का विदग्धताभिमान प्रशंसनीय, और न उल्लेखनीय है आत्माभिमान प्रसूत उद्भावना। यदि निन्दा की जाती है तो इसीकी, और यदि तीव्र दृष्टिपात किया जाता है तो इसी पर। किसी दुर्भाव से नहीं, ईर्षा-द्वेषवश नहीं

केवल साहित्य की मंगल-कामना, और अपनी मातृभाषा की हितदृष्टि से। प्रार्थना यही है कि जो कुछ किया जावे नियमानुकूल किया जावे, चित्त की किसी अयथावृत्ति के वशवर्ती हो कर वह पथ न ग्रहण किया जावे, जिससे उपकार के बदले साहित्य का अपकार हो, और उसका कान्त कलेवर कलुषित बन जावे।

मुहावरों की उपयोगिता और उपकारिता सर्व स्वीकृत है, इस पर यथेष्ट प्रकाश डाला गया। उधर उचित दृष्टि भी साहित्य-सेवियों की आकृष्ट की गयी। आजकल उसके व्यवहार में जो शैथिल्य अथवा उच्छृङ्खलता है, उसके विषय में भी जो वक्तव्य था, वह कहा गया। किन्तु मुहावरों की उपयोगिता का लाभ उसी समय होगा, जब हम उसके यथार्थ ज्ञान का उद्योग, और उचित रीति से उसका व्यवहार करें। मुहावरों का अङ्ग-भङ्ग करना अथवा उनको बिगाड़ कर लिखना उचित नहीं, इससे बोध में व्याघात होता है, और इष्ट-प्राप्ति नहीं होती। नये मुहावरों की कल्पना अथवा आविष्कार अनुचित नहीं, ऐसा उद्योग बराबर होता आया है। किन्तु अधिकारी पुरुष को ही, समस्त नियमों पर दृष्टि रख कर ऐसा करना चाहिए। अन्यथा सफलता नहीं मिलती और उपहास अलग होता है। अपना व्यापक ज्ञान-प्रदर्शन अथवा पाण्डित्य प्रकट करने के लिए, लोगों से आविष्कारक-जन का गौरव लाभ करने की कामना से, अयोग्य पुरुषों द्वारा जो मुहावरों के निर्माण का उद्योग किया जाता है, न तो उसमें कृतकार्य्यता होती है, और न कीर्ति। इसलिए इस प्रकार के दुस्साहस से बचना चाहिए। वह बुद्धिमान् कदापि न माना जावेगा जिसका परिश्रम तो व्यर्थ होवे ही, साथ ही जिसकी अपकीर्ति भी हो।

विशेष वक्तव्य

मनुष्य को कभी कभी ऐसा कार्य हाथ में लेना पड़ता है, जिसमें उसकी स्वाभाविक प्रवृत्ति नहीं होती, अब मैं एक ऐसा ही विषय हाथ में ले रहा हूँ, जिसपर मैं कुछ लिखना नहीं चाहता था। किन्तु कतिपय आवश्यक बातों पर प्रकाश डालना, उचित बोध हो रहा है, अतएव मैं अब इसी अप्रिय कार्य्य में प्रवृत्त होता हूँ। यह 'बोलचाल' नामक ग्रन्थ जिस भाषा में लिखा गया है, उसी भाषा में मेरे दो ग्रन्थ 'चुभते चौपदे'* और 'चोखे चौपदे'* नामक अबसे चार वर्ष पहले प्रकाशित हो चुके हैं। कुछ सामयिक पत्रों में उनकी आलोचना हुई है, उचित आलोचना के विषय में मुझको कुछ वक्तव्य नहीं। किन्तु एक दो पत्रों ने आलोचना करते-करते उक्त ग्रंथों के विषय में ऐसी बातें लिख दी हैं, जिनसे ज्ञात होता है कि उन्होंने उनके प्रकाशन का उद्देश नहीं समझा। किसी किसी ने कुछ शब्दों के प्रयोग पर भी तर्क किये हैं। मैं इन्हीं बातों पर कुछ लिखने की चेष्टा करता हूँ। यद्यपि ऐसा करना रूपान्तर से अपने ग्रंथों की आलोचना में आप प्रवृत्त होना है, किन्तु मेरा लक्ष्य यह नहीं है, मैं कतिपय आवश्यक और तथ्य बातों पर प्रकाश डालने का ही इच्छुक हूँ। मैं यह भी जानता हूँ कि अपनी आलोचना आप करना, आजकल बुरा नहीं माना जाता, क्योंकि इससे कितनी अज्ञात बातें अंधकार से प्रकाश में आ जाती हैं। तथापि मैं यही कहूँगा कि इस पथ का पथिक नहीं हूँ; कतिपय विशेष बातों के विषय में ही कुछ कहना चाहता हूँ।

रोजमर्रा अथवा बोलचाल और मुहावरों की उपयोगिता के

---

* ये दोनों ग्रंथ भी जहाँ से यह ग्रंथ प्रकाशित है वहीं से छपे हैं।

विषय में पहले मैं बहुत कुछ लिख चुका हूँ। यथाशक्ति मैंने उसकी उपयोगिता का प्रतिपादन भी किया है प्रसाद-गुण ही ऐसा गुण है जिसका आदर सब रसों में समान भाव से होता है, प्रसाद-गुण उस समय तक आ ही नहीं सकता, जब तक कि कविता का ऐसा शब्दविन्यास न हो, जिसको सुनते ही लोग समझ जावें। ऐसी सरलता कविता में तभी आवेगी, जब उसकी रचना बोलचाल के आधार पर होगी, अन्यथा उसका तत्काल हृदयंगम होना संभवपर न होगा, क्योंकि अपरिचित शब्द तात्कालिक बोध के बाधक होते हैं। शब्द-बोध के बाद ही भाव का बोध होता है, जहाँ शब्द-बोध में बाधा पड़ी, वहीं भाव के समझने में व्याघात उपस्थित होता है, जहाँ यह अवस्था हुई, वहाँ प्रसाद-गुण स्वीकृत नहीं हो सकता। साहित्यदर्पणकार ने प्रसाद-गुण का जो लक्षण लिखा है, उससे अक्षरशः इस विचार की पुष्टि होती है; वे लिखते हैं—

चित्तं व्याप्नोति यः क्षिप्रं शुष्केन्धनमिवानलः।
स प्रसादः समस्तेषु रसेषु रचनासु च।
शब्दास्तद्व्यञ्जका अर्थबोधकाः श्रुतिमात्रतः॥

"जैसे सूखे ईंधन में अग्नि झट से व्याप्त होती है, इसी प्रकार जो गुण चित्त में तुरंत व्याप्त हो, उसे प्रसाद कहते हैं। यह गुण समस्त रसों और सम्पूर्ण रचनाओं में रह सकता है। सुनते ही जिनका अर्थ प्रतीत हो जाय ऐसे सरल और सुबोध शब्द प्रसाद के व्यञ्जक होते हैं"—साहित्यदर्पण द्वितीय भाग पृष्ठ ६४

यही कारण है कि कविता वही आदरणीय और प्रशंसनीय मानी जाती है, जिसके शब्द सरल और सुबोध हों। लगभग प्रत्येक भाषा के विद्वान् इस विचार से सहमत हैं। कविवर मिल्टन लिखते हैं—

'Poetry ought to be simple, sensuous and impassioned'

"कविता को सरल, बोधगम्य और भावपूर्ण होना चाहिए।"

अँगरेज़ी का एक दूसरा विद्वान् कहता है "Simplicity is the best beauty"—सरलता (सादगी) सबसे बड़ी सुन्दरता है—

गोस्वामी तुलसीदासजी लिखते हैं—

"सरल कवित कीरति बिमल, तेहि आदरहिं सुजान"

हिन्दी भाषा का एक दूसरा सुकवि कहता है—

"जाके लागत ही तुरत, सिर डोलैं न सुजान।
ना वह है नीको कवित, ना वह तान न बान॥"

उर्दू के एक सहृदय कवि यह कहते हैं—

"शेर दर-अस्ल हैं वही हसरत।
सुनते ही दिल में जो उतर जाये"

महा कवि अकबर क्या कहते हैं उसको सुनिये—

"समझ में साफ़ आ जाये फ़साहत, इसको कहते हैं।
असर हो सुनने वालों पर 'बलाग़त' इसको कहते हैं॥
तुझे हम शायरों में क्यों न अकबर मुन्तख़ब समझें।
बयाँ ऐसा कि दिल माने, ज़बाँ ऐसी कि सब समझें।"

इन दोनों शेरों में रूपान्तर से वे यही कहते हैं कि कविता की भाषा ऐसी ही होनी चाहिए जिसको सब समझ सकें। इसी का नाम फ़साहत है, जिसे हम प्रसाद-गुण कहते हैं।

मिर्ज़ा ग़ालिब उर्दू-संसार के माघ हैं। वे कविवर केशवदास के समान गूढ़ कविता के आचार्य्य हैं। अपनी गूढ़ कविताओं से लोगों को उद्विग्न होते देख कर एक बार उनको स्वयं यह कहना पड़ा था—

"मुश्किल है ज़ेबस कलाम मेरा ऐ दिल।
सुन सुन के उसे सख़ुनवराने कामिल॥
आसाँ कहने की करते हैं फ़र्मायश।
गोयम मुश्किल वगर न गोयम मुश्किल॥"

भाव के साथ उनका शब्द-विन्यास भी दुरूह होता था, जैसा ऊपर के पद्य से प्रकट है। एक दिन उनकी इन बातों से घबरा कर उनके सामने ही हकीम आग़ा जान ने भरे मुशायरे में ये शेर पढ़े थे—

"मज़ा कहने का जब है यक कहे औ दूसरा समझे।
अगर अपना कहा तुम आप ही समझे तो क्या समझे॥
कलामे मीर समझे औ ज़बाने मीरज़ा समझे।
मगर अपना कहा यह आप समझें या ख़ुदा समझे।"

भरी सभा में एक प्रतिष्ठित कवि को इस प्रकार लांछित क्यों होना पड़ा था? इसलिए कि उसकी कविता में सरलता नहीं होती थी। यह प्रसंग भी प्रसाद-गुणमयी कविता की ही महत्ता प्रकट करता है।

उर्दू संसार में मीर अनीस की फ़साहत प्रसिद्ध है। मौलाना शिबली लिखते हैं—

"मीर अनीस के कमाल शायरी (महान कविकर्म) का बड़ा जौहर (गुण) यह है कि बावजूद इसके कि उन्होंने उर्दू शुअरा (कवियों) में से सबसे ज़ियादा अलफ़ाज (शब्द) इस्तेमाल किये और सैकड़ों मुख़्तलिफ़ वाक़ेआत (विभिन्न प्रसंग) बयान करने की वजह से, हर किस्म और हर दर्जा के अलफ़ाज (शब्द) उनको इस्तेमाल करने पड़े, ताहम उनके कलाम में ग़ैरफ़सीह (प्रसाद-गुणरहित) अलफ़ाज (शब्द) निहायत कम पाये जाते हैं।"

"मीर अनीस साहब के कलाम का बड़ा ख़ास्सा (गुण) यह है कि वह हर मौक़ा पर (प्रत्येक अवसर पर) फ़सीह से फ़सीह (अधिक प्रसादगुण सम्पन्न) अलफ़ाज (शब्द) ढ़ू कर लाते हैं"—मवाज़िना दबीर व अनीस

मीर अनीस अपने विषय में स्वयं क्या कहते हैं उसको भी सुन लीजिये—

'मुरग़ाने खुशइलहान चमन बोलें क्या।
मर जाते हैं सुन के रोज़मर्रा मेरा॥'

मौलाना शिबली साहब ने जिसे मीर अनीस की फ़साहत बतलाई है, उसे स्वयं मीर साहब अपना रोज़मर्रा कहते हैं। इससे भी यही पाया जाता है, कि सरल, सुबोध, बोलचाल (रोज़मर्रा) की भाषा में ही फ़साहत मिलती है और सर्वप्रिय एवं आदरणीय प्रायः ऐसी ही भाषा की कविता होती है।

जो भाषा परिचित होती है, जिस भाषा के शब्द अधिकतर जिह्वा पर आते रहते हैं, जिनको कान प्रायः सुनता रहता है, वे ही शब्द सुबोध हो सकते हैं और इन्हीं में सरलता भी होती है। ऐसे शब्द उसी भाषा के होते हैं, जो बोलचाल की है। इसीलिए उत्तम कविता वही मानी जाती है, जिसमें बोलचाल का रंग रहता है। भाषा बोलचाल से जितनी ही अधिक दूर होती जाती है, उतनी ही उसकी दुरूहता बढ़ती जाती है। कवि और ग्रन्थकार विशेष अवस्थाओं में ऐसी दुरूह भाषा लिखने के लिए भी बाध्य होता है, किन्तु उसमें व्यापकता कम होती है और विशेष अवस्थाओं में उसमें प्रसाद-गुणमयी भाषा के समान स्थायिता भी नहीं होती।

यह बात उसी भाषा के लिए कही जा सकती है, जिसका सम्बन्ध प्रायः सर्वसाधारण से होता है। दर्शन अथवा विज्ञान आदि गंभीर विषयों के सम्बन्ध में यह बात नहीं कही जा सकती, उनकी भाषा प्रायः दुरूह होती ही है। कविता का सम्बन्ध अधिकतर सर्वसाधारण से होता है, उनकी शिक्षा-दीक्षा अथवा उनके आमोद-प्रमोद एवं उत्थान के लिए वह अधिक उपयोगिनी समझी जाती

है, इसलिए उसका सरल और सुबोध होना आवश्यक है। इन्हीं सब बातों पर दृष्टि रख कर और हिन्दी-संसार के साहित्य-सेवियों और प्रेमियों की दृष्टि बोलचाल और मुहावरों की ओर विशेषतया आकृष्ट करने के लिए मुझको ऐसी पुस्तक लिखने की आवश्यकता जान पड़ी, जो कि बोलचाल में हो, और जिसमें मुहावरों का पुट पर्याप्त हो। मैं इसी चिन्ता में था कि अकस्मात् एक दिन एक नमूना मेरे सामने उपस्थित हो गया, मैं उसी को आदर्श मान कर कार्य्य-क्षेत्र में उतरा, और उसी के फल, 'चुभते चौपदे', 'चोखे चौपदे' और यह 'बोलचाल' नामक ग्रंथ हैं। पूरा विवरण इसका मैं ग्रन्थ के आदि में लिख चुका हूँ।

इस बोलचाल नामक ग्रंथ में निम्नलिखित विशेषताएँ हैं—

१—ग्रन्थ आदि से अंत तक हिन्दी तद्भव शब्दों में लिखा गया है, संस्कृत के तत्सम शब्द बहुत कम आये हैं, अधिकांश वे ही तत्सम शब्द गृहीत हैं, जो तद्भव शब्दों के समान ही व्यापक और सर्वसाधारण में व्यवहृत हैं।

२—ग्रन्थ में आदि से अंत तक बोलचाल की रक्षा की गई है, सर्व-साधारण की खड़ी बोली ही उसका आदर्श है, यदि कहीं कुछ थोड़ा अन्तर है तो उसके कारण पद्यगत और कवितागत विशेषताएँ हैं।

३—ग्रन्थ में बाल से तलवे तक, अंगों के जितने मुहावरे हैं, उनमें से अधिकांश आ गये हैं। पद्य में उनका, प्रयोग प्रायः इस प्रकार किया गया है, कि वह पद्य ही उसके व्यवहार प्रणाली का शिक्षक हो सके।

४—अन्य भाषा के शब्द तथा दूसरे देशज वे सब शब्द भी ले लिये गये हैं, जो सर्वसाधारण में प्रचलित हैं और जिनका व्यवहार हिंदी तद्भव शब्द के समान जनता में होता है, केवल इतना ध्यान अवश्य रखा गया है कि वे हिंदी 'टाइप' के हों।

५—बोलचाल में प्रचलित अनेक शब्द ऐसे हैं जो बहुत व्यापक हैं, भावमय हैं, विशेषार्थ के द्योतक हैं और अधिक विचार थोड़े में प्रकट करने के साधन हैं, किंतु लिखित भाषा में उनका स्थान नहीं है, मैंने कुछ ऐसे शब्द भी ग्रहण कर लिये हैं। अपनी संकीर्णता का दूरीकरण और उनकी रक्षा की ममता इसके हेतु हैं।

जिन विशेषताओं का मैंने उल्लेख किया है, उनकी विस्तृत व्याख्या करने की आवश्यकता नहीं जान पड़ती, प्रस्तुत ग्रंथ के कुछ पद्य ही उसके प्रमाण हैं। कुछ बातें ऐसी हैं, जिनको मैं और अधिक स्पष्ट कर देना चाहता हूँ। हिन्दी के मुख्य आधार उसके तद्भव शब्द हैं, उनके स्थान पर तत्सम शब्दों का प्रयोग करना उसके वास्तविक रूप को विकृत करना है। आज कल की हिन्दी कविता को उठा कर देखिये तो उसमें प्रतिशत ७५ संस्कृत के तत्सम शब्द मिलेंगे, किसी-किसी पद्य में वे प्रतिशत ६५ पाये जाते हैं। हिन्दी की जो बहुत सरल कविता होती है, उसमें भी प्रतिशत २५ से कम संस्कृत के तत्सम शब्द नहीं होते। कदाचित् ही कोई ऐसी कविता मिलेगी, जिसमें वे प्रतिशत १० हों। ब्रजभाषा की कितनी कविताएँ अवश्य ऐसी हैं, जिनमें प्रतिशत ५ या इससे भी कम संस्कृत के तत्सम शब्द पाये जाते हैं, किन्तु उसमें प्रायः अर्द्धतत्सम शब्दों की अधिकता है। उर्दू गद्य पद्य की अवस्था हिन्दी के वर्त्तमान गद्य पद्य की सी है, उसमें संस्कृत के तत्सम शब्दों के स्थान पर अरबी फ़ारसी शब्दों की भरमार है। फिर भी उर्दू में रोज़मर्रा का बड़ा ध्यान है, इसलिए उसमें कुछ शेर ऐसे मिल जाते हैं, जिनमें केवल हिन्दी के तद्भव शब्दों का प्रयोग होता है, किन्तु पूरी ग़ज़ल ऐसी नहीं मिलती, किताब ऐसी मिलेगी ही नहीं। हिन्दी में भी खोजने पर ऐसी दो चार कविताओं का मिल जाना असंभव न होगा, जो

तद्भव शब्दों में लिखी गई हों। किन्तु इधर दृष्टि किसीकी नहीं गई। अतएव किसी ने तद्भव शब्दों में सौ दो सौ पद्य लिखने का उद्योग नहीं किया, और न इस बात का ध्यान रखा कि तद्भव शब्दों में कविता लिखने के समय उसमें अप्रचलित तत्सम शब्द आवें ही नहीं। मैंने इस बात का उद्योग किया और तद्भव शब्दों में ही बोलचाल नामक ग्रन्थ को लिखा। अधिकांश कविता इस ग्रन्थ की ऐसी ही है, यदि किसी कविता में अप्रचलित तत्सम शब्द आ भी गये हैं, तो वे शायद ही प्रतिशत ५ से अधिक होंगे, ऐसे पद्य भी प्रतिशत एक से अधिक न पाये जावेंगे। इसीलिए मैंने यह लिखा है, कि प्रस्तुत ग्रन्थ की विशेषता यह है कि वह तद्भव शब्दों में लिखा गया है।

दूसरी, तीसरी और चौथी विशेषताओं के विषय में कुछ लिखना आवश्यक नहीं। मैं कुछ पद्य आगे चलकर लिखूँगा, उनके द्वारा आप लोग स्वयं यह निश्चय कर सकेंगे कि मेरे कथन में कितनी सत्यता है। पाँचवीं विशेषता के विषय में केवल इतना निवेदन करना मैं उचित समझता हूँ कि अव्यवहृत कुछ शब्दों को ग्रहण करके मैंने कोई अनुचित कार्य्य नहीं किया है। यदि लिखित अथवा काव्य की भाषा को बोलचाल की भाषा रखना है, या अधिकतर उसको उसका निकटवर्ती बनाना है, तो बोलचाल के व्यापक और विशेषार्थ-द्योतक शब्दों का त्याग न होना चाहिये। देखा जाता है कि हिन्दी के अनेक शब्दों का तिरस्कार इसलिए किया जा रहा है, कि उनके स्थान पर हम अन्य भाषा के शब्दों से काम ले रहे हैं, और दिन दिन उनको भूलते जा रहे हैं। ऐसा करना अपनी मातृ-भाषा पर अत्याचार करना है। मैंने अनेक उर्दू बोलनेवालों और बोलचाल में अधिकतर अँगरेजी-शब्द प्रयोग करनेवाले सज्जनों को

देखा है, कि कभी-कभी चेष्टा करने पर भी न तो उन को हिन्दी-शब्द याद आते हैं, और न वे उनका प्रयोग कर सकते हैं। यह हमारी दुर्बलता है, और इससे हमारी जातीयता कलंकित होती है। मेरा विचार है कि हिन्दी के उपयोगी और व्यापक शब्दों को मरने न देना चाहिये, और पूर्ण उद्योग के साथ उनको जीवित रखना चाहिये। यह सजीवता का चिह्न है, संकीर्णता का नहीं। जितनी सजीव जातियाँ हैं, उन सबमें इस प्रकार की ममता पायी जाती है। यदि कोई न्यूनता हमारे शब्दों अथवा भाषा में हो तो उसका सुधार हम कर सकते हैं, किन्तु उनका त्याग उचित नहीं। मैंने इसी विचार से अनेक शब्दों के जीवित रखने की चेष्टा की है। बोलचाल की भाषा लिखने का उद्योग करके मुझको कहीं-कहीं विवश होकर ऐसा करना पड़ा है। इसका यह अर्थ नहीं कि ग्रामीण शब्दों का प्रयोग करके मैंने अपने शब्दाधिकार को कलंकित किया है, और काव्य-शास्त्र के एक विशेष नियम को तोड़ा है। वरन् इसका यह अर्थ है कि मैंने एक उपयुक्त शब्द की जीवन-रक्षा करके अपनी मातृभाषा की सेवा की है और उसको विस्तृत बनाने का उद्योग किया है। इस प्रकार का प्रयत्न अनुचित नहीं वरन् विद्वानों द्वारा समर्थित है। मिस्टर स्मिथ कहते हैं—

*"ड्राइडेन के समय के पश्चात् अँगरेजी भाषा में मुहावरों की संख्या बहुत बढ़ी है, विशेषतया १९ वीं शताब्दी में इनकी बहुत वृद्धि हुई। पुराने

---

*Since the time of Dryden, the number of idioms in the English language has greatly increased, and in the nineteenth century in especial, very great additions were made to this part of our vocabulary. The study of our older literature restored to us not only words which had fallen obsolete, but

अँगरेजी-साहित्य के अध्ययन ने केवल लुप्त शब्दों का ही नहीं, प्रत्युत पुराने शब्द-समुदाय का भी–जिन्हें हम आधा भूल चुके थे—पुनरुद्धार किया है।"

कतिपय अव्यवहृत शब्द के व्यवहार के विषय में मैंने जो कुछ लिखा, आशा है उसके औचित्य को विचार-दृष्टि से देखा जावेगा। संभव है कुछ भाषा-मर्मज्ञ मेरे विचार से सहमत न हों, किन्तु यह मतभिन्नता है, जो स्वाभाविक है।

जिन पद्यों के लिखने का उल्लेख मैं पहले कर आया हूँ वे अब लिखे जाते हैं।

१—हैं गये तन बिन बहुत, सब छिन गया। लोग काँटे, हैं घरों में बो रहे॥
है मुसीबत का नगाड़ा बज रहा। पाँव पर रख पाँव हम हैं सो रहे॥

× × ×

२—लुट गये पिट उठे गये पटके। आँख के भी बिलट गये कोये॥
पड़ बुरी फूट के बखेड़ों में। कब नहीं फूट फूट कर रोये॥

× × ×

३—जो हमें सूझता, समझ होती। बैर बकवाद में न दिन कटता॥
आँख होती अगर न फूट गई। देखकर फूट क्यों न दिल फटता॥

× × ×

४—है टपक बेताब करती बेतरह। हैं न हाथों से बला के छूटते॥
टूटते पाके पके जी के नहीं। हैं नहीं दिल के फोफले फूटते॥

× × ×

५—बेबसी बाँट में पड़ी जब है। जायगी नुच न किसलिए बोटी॥
चोट पर चोट तब न क्यों होगी। जब दबी पाँव के तले चोटी॥

---

also many old terms of phrase which had been half forgotten. (Words and idioms. P. 274).

६—कर सकें हम बराबरी कैसे। हैं हमें रंगतें मिलीं फीकी॥
हम कसर हैं निकालते जी से। वे कसर हैं निकालते जी की॥

× × ×

७—बात अपने भाग की हम क्या कहें। हम कहाँतक जी करें अपना कड़ा॥
फट गया जी फाट में हमको मिला। बँट गया जी बाँट में मेरे पड़ा॥

× × ×

८—देखिये चेहरा उतर मेरा गया। हैं कलेजे में उतरते दुख नये॥
फेर में हम हैं उतरने के पड़े। आँख से उतरे उतर जी से गये॥

× × ×

६—हैं बखेड़े सैकड़ो पीछे पड़े। हैं बुरा काँटा जिगर में गड़ गया॥
फँस गये है उलझनों के जाल में। है बड़े जंजाल में जी पड़ गया॥

× × ×

१०—हैं लगाती न ठेस किस दिल को। टेकियों की ठसक भरी टेकें॥
है कपट काट छाँट कब अच्छी। पेट को काट कर कहाँ फेंकें॥

दूसरी तीसरी और चौथी विशेषताओं पर इन पद्यों को कसिये, उस समय आप समझ सकेंगे, कि उनमें वास्तवता है या नहीं। मैं एक-एक पद्य की आलोचना करके अपने दावा को सिद्ध करने में प्रवृत्त नहीं होना चाहता, क्योंकि न तो ऐसा करना उचित जान पड़ता है और न इस भूमिका में इतना स्थान है। जो बात सत्य है, खोजियों की सूक्ष्मदृष्टि से वह छिपी न रहेगी, सत्य में स्वयं शक्ति होती है, वह बिना प्रकट हुए नहीं रहता। समय समय पर कुछ सज्जनों ने इस प्रकार के पद्यों के भाव, भाषा और ढंग के विषय में जो सम्मति मुझसे प्रकट की है, उसकी चर्चा इस अवसर पर मैं अवश्य करना चाहता हूँ, जिससे उनकी सम्मति के विषय में अपना वक्तव्य प्रकट कर सकूँ।

एक हिन्दी भाषा के प्रसिद्ध विद्वान् ने मेरे चौपदों की चर्चा करके मुझसे एक बार कहा—'मैं उसकी भाषा को हिन्दी नहीं कह सकता। मैंने कहा उर्दू कहिये। उन्होंने कहा, उर्दू भी नहीं कह सकता। मैंने कहा, हिन्दुस्तानी कहिये। उन्होंने कहा, मैं इसको हिन्दी उर्दू के बीच की भाषा कह सकता हूँ। मैंने कहा, हिन्दुस्तानी ऐसी ही भाषा को तो कहते हैं। उन्होंने कहा, हिन्दुस्तानी में उर्दू का पुट अधिक होता है, इसमें हिन्दी का पुट अधिक है। मैंने निवेदन किया, फिर आप इसको हिन्दी ही क्यों नहीं मानते! उन्होंने कहा, चौपदों की बह्र उर्दू, उसके कहने का ढंग उर्दू उसमें उर्दू की ही चाशनी और उर्दू का सा ही रंग है, उसकी भाषा चटपटी भी वैसी है, उसे हिन्दी कहूँ तो कैसे कहूँ! मैंने कहा, तो इस उलझन को आप सुलझाना नहीं चाहते। उन्होंने कहा, उलझन सुलझते ही सुलझते सुलझती है, शायद कभी सुलझ जावे। आपके चौपदों को पढ़ कर मेरे हृदय की विचित्र गति हो जाती है, मैं उसकी भाषा को विचित्र ही कहूँगा।'

मौलवी अहमद अली फ़ारसी के विद्वान् और उर्दू के एक सहृदय कवि थे, ख़ास निज़ामाबाद के रहनेवाले थे, हाल में उनका स्वर्गवास हो गया। वे मेरे पास आज़मगढ़ में जब आते, तब कुछ चौपदे मुझसे सुनते। कभी प्रसन्न होते, कभी कहते—यह तो 'उलटी गंगा बहाना है' भई; इसको तो मैं कोई ज़बान नहीं मान सकता। यदि मैं पूछता क्यों? तो कहते, यह हिन्दी तो है नहीं, उर्दू भी नहीं है, यह तो एक मनगढ़न्त भाषा है। यदि मैं पूछता, आप हिन्दी किसे मानते हैं और किसे उर्दू, तो कहते हिन्दी मैं उसे मानता हूँ, जिसमें संस्कृत शब्द हों, जैसे गोस्वामीजी की रामायण। उर्दू वह है जो फ़ारसी अरबी शब्दों से मालामाल हो, इसमें दोनों बातें नहीं

हैं, इससे मैं इसको कोई ज़बान नहीं मान सकता। एक दिन मैंने उनको निम्नलिखित पद्य सुनाये, और पूछा कृपा कर बतलाइये ये किस भाषा के पद्य हैं ?

आके तब बैठता है वह हम पास।
आपमें जब हमें नहीं पाता ॥
क्या हँसे अब कोई औ क्या रो सके।
जो ठिकाने हो तो सब कुछ हो सके ॥
मुँह देखते ही उसका आँसू मेरा बहाना।
रोने का अपने या रब ! अब क्या करूँ बहाना ॥—हसन

× × ×

लोग घबरा के यह कहते हैं कि मर जायेंगे।
मर के गर चैन न पाया तो किधर जायेंगे ॥—ज़ौक़

कहने लगे—'उर्दू के'। मैंने कहा—क्यों ? पहले, दूसरों पद्यों में एक भी फ़ारसी अरबी का शब्द नहीं है. तीसरे, चौथे पद्यों में एक एक शब्द अरबी फ़ारसी का है, ये कुल पद्य हिन्दी शब्दों ही से मालामाल हैं, इन्हें आप उर्दू पद्य क्यों कहते हैं ? ऐसे ही पद्य मेरे भी तो हैं। कहने लगे कि-हाँ, ऐसे ही पद्य आपके भी हैं, किन्तु उनमें बहुत से हिन्दी के ऐसे शब्द आये हैं, जिनका व्यवहार उर्दू में नहीं होता, जैसे—नेह, पत इत्यादि। आप कभी-कभी संस्कृत शब्दों का भी व्यवहार करते हैं, जैसे वीर, अनेक आदि। यह बात उर्दू के नियम के अनुकूल नहीं, इसलिए मैं चौपदों को उर्दू का पद्य नहीं मान सकता। मैंने कहा—मौलाना अकबर और मौलाना हाली के नीचे लिखे पद्यों को आप किस भाषा का कहेंगे। दोनों के पद्यों में 'परोजन', 'भोजन', 'कथा' और 'अटल' ऐसे ठेठ हिन्दी और संस्कृत के शब्द मौजूद हैं—

दुनिया तो चाहती है हंगामये परोजन।
याँ तो है जेब खाली जो मिल गया वह भोजन ॥—अकबर

× × ×

चाहो तो कथा हमसे हमारी सुन लो।
है टैक्स का वक्त भी इसी तरह अटल।—हाली

बोले,—उर्दू ही कहूँगा, दो एक संस्कृत शब्दों के आने से वे हिन्दी के पद्य थोड़े ही हो जावेंगे! मैंने कहा, चौपदों पर आपकी ऐसी निगाह क्यों नहीं पड़ती! कहने लगे—चौपदों के वाक्यों में उर्दू तरकीब बिल्कुल नहीं मिलती, उसकी वाक्य-रचना अधिकतर हिन्दी के ढङ्ग की है. हिन्दी का कोई अच्छा शब्द न मिलने पर आपने उसके स्थान पर पद्य में संस्कृत का शब्द ही रखा है, फ़ारसी अरबी का शब्द कभी नहीं रखा, फिर मैं उसे उर्दू कैसे कह सकता हूँ! उर्दू के ढंग की रचना चौपदों की अवश्य है, परन्तु रंग उस पर हिन्दी का ही चढ़ा है। मैंने कहा तो उसे हिन्दुस्तानी कहिये, उन्होंने कहा. मैं हिन्दुस्तानी कोई ज़बान नहीं मानता; खिचड़ी ज़बान मैं उसे अवश्य कह सकता हूँ। वे ऐसी ही बातें कहते कहते उठ पड़ते, चलते चलते कहते,—"आप इसे नई हिन्दी भले ही मान लें, पुरानी हिन्दी तो यह हरगिज़ नहीं है और न उर्दू है।

एक दिन खड़ी बोली के कट्टर प्रेमी एक नवयुवक आये; छेड़ कर चौपदों की चर्चा की, और बातों बातों में ही कह पड़े,—"चौपदों की भाषा वेजान-सी मालूम पड़ती है। मैंने कहा, उसकी जान मुहावरे हैं। वे बोले, जिसके पास शब्दभाण्डार है, वह मुहावरों को कुछ नहीं समझता। मैंने कहा, आप लोग तो ब्रजभाषा जैसी मधुर भाषा को भी निर्जीव मानते हैं। उन्होंने कहा, निस्सन्देह! उसके जितने शब्द

हैं सब ऐसे ज्ञात होते हैं, मानों उनपर ओस पड़ गयी है। मैंने कहा, शायद आप 'शुभ्रज्योत्स्ना, 'दीर्घ उच्छ्वास' 'प्रचण्ड दोर्दण्ड' और 'विचारोत्कृष्टता' जैसे शब्दसमूह को पसंद करते हैं। उन्होंने कहा, अवश्य, देखिये न शब्दों में कितना ओज ज्ञात होता है। उसास और उच्छ्वास को मिलाइये, पहले शब्द की साँस निकलती जान पड़ती है, दूसरा शब्द ओज-गिरिशिखर पर चढ़ता ज्ञात होता है। मैंने कहा, यह आपका संस्कार है, किन्तु आपको यह जानना चाहिये कि साहित्य-संसार में सरल, सुबोध और कोमल पदावली ही आदृत होती आती है। गौड़ी से वैदर्भी का ही स्थान उच्च है। जिन रसों में परुष शब्दयोजना संगत मानी गयी है, उन रसों का वर्णन करते समय परुष शब्दावली में सरल, सुबोध शब्दमाला का अन्तर्निहित चमत्कार ही लोगों को चमत्कृत करता है। ब्रजभाषा संसार की समस्त मधुर भाषाओं में से एक है, उसके शब्दों पर ओस नहीं पड़ गयी है, वे सुधा से धुले हुए हैं। यह दूसरी बात है कि हम फूल को फूल न समझ कर काँटा समझें। मयंक में यदि किसीको कलंक-अंक ही दिखलाई पड़ता है, तो यह उसका दृष्टिदोष है, मयंक का इससे कोई क्षति नहीं। मेरी बातों को सुनकर उन्होंने जी में यह तो अवश्य कहा होगा, कि आपका भी तो यह एक संस्कार ही है, परन्तु प्रकट में यह कहा,—चौपदे सरल सुबोध अवश्य हैं, परन्तु हम लोगों को उतने रोचक नहीं जान पड़ते। मैंने कहा, यह भी रुचि की बात है, "भिन्न रुचिर्हिलोकः"।

चौपदों की भाषा के विषय में आये दिन इसी प्रकार की बातें सुनी जाती हैं, अपना विचार प्रकट करने का अधिकार सब को है, किन्तु तर्क करनेवालों की बातों में ही रूपान्तर से मेरा पक्ष मौजूद है। वास्तव बात तो यह है कि चौपदों की भाषा ऐसी है कि उसको

हिन्दी में छाप दीजिये तो वह हिन्दी और फ़ारसी अक्षरों में छाप दीजिये तो उर्दू बन जावेगी। थोड़े से अव्यवहृत शब्दों के झगड़े कोई झगड़े नहीं; उर्दू के बड़े बड़े कवि भी इस प्रकार के तर्कों से नहीं छूटे। यदि हिन्दुस्तानी भाषा हो सकती है, तो ऐसी ही भाषा हो सकती है। किन्तु मैं तो उसे तद्भव शब्दों में लिखी गयी, सरल और सुबोध हिन्दी ही मानता हूँ, अधिकतर पद्यों में बोलचाल का निर्वाह होने से वह और साफ़ सुथरी हो गयी है। बहुतों को वह पसंद आई है, कुछ लोग उससे नाक भौं सिकोड़ें तो यह कोई आश्चर्य की बात नहीं। सब वस्तु सबको प्यारी नहीं होती।

पद्यों के कवित्व के विषय में 'काव्य की भाषा', शीर्षक स्तंभ में अपना वक्तव्य प्रकट कर आया हूँ, यहाँ इतना और लिख देना चाहता हूँ कि प्रस्तुत ग्रन्थ का कोई पद्य शब्दालंकार और अर्थालंकार से रहित नहीं है। उसके पद्यों में शिक्षा, उपदेश, सदाचार और लोकाचार का सुन्दर चित्र है, उसमें अनेक मानसिक भावों का उद्घाटन है। ग्रन्थ में शृंगार रस का लेश नहीं, न उसमें कहीं अश्लीलता है। कितने भाव उसमें नये हैं, इतने नये कि कदाचित् ही किसी लेखनी ने उसको स्पर्श किया हो। उदाहरण स्वरूप इस प्रकार के कुछ पद्य नीचे उद्धृत किये जाते हैं:—

१—पास तक भी फटक नहीं पाते। सैकड़ों ताड़ झाड़ सहते हैं॥
आप में कुछ कमाल ऐसा है। फिर भी सिर पर सवार रहते हैं॥

× × ×

२—जो बहुत बनते हैं उनके पास से। चाह होती है कि कब कैसे टलें॥
जो मिलें जी खोल कर उनके यहाँ। चाहता है जी कि सिर के बल चलें॥

३—चाह जो यह है कि हाथों से पले। पेड़ पौधों से अनूठे फल चखें।
तो जिसे हैं आँख में रखते सदा। चाहिये हम आँख भी उस पर रखें॥

× × ×

४—किस तरह से सँभल सकेंगे वे। अपने को जो नहीं सँभालेंगे॥
क्यों न खो देंगे आँख का तिल वे। आँख का तेल जो निकालेंगे॥

× × ×

५—जो रही मा मकान की फिरकी। वह मिले कुछ अजीब बहलावे॥
हो गई सास गेह पर लट्टू। पाँव कैसे न फेरने जावे॥

इतना गुण होने पर भी यदि कुछ सज्जन यही समझें कि मैंने चौपदों को लिख कर अपना समय नष्ट किया है; यदि 'चुभते चौपदे' के देशदशा और समाज-दुर्दशा सम्बन्धी पद्य उनके हृदय को न लुभावें, यदि 'चोखे चौपदे' के भावमय पद्य उनकी भावुकता पर प्रभाव न डालें, यदि 'बोलचाल' के पद्यों से मुहावरों के व्यवहार की शिक्षा उनको न मिले, यदि उसके कवित्व-गुण उनके मन को विमुग्ध न करें, और वे अपनी भौंहों की बांकमता को अधिक बंक बनाने में ही अपनी साहित्य-मर्मज्ञता समझें तो मैं यही कहूँगाः—

न सितायश की तमन्ना न सिला की पर्वा।
न सही गर मेरे अशआर में मानी न सही॥—*ग़ालिब*

सामयिक अवज्ञा से कोई नहीं बचा, इसकी ओट में ईर्षा, द्वेष, अहम्मन्यता, असहिष्णुता और मानसिक दुर्बलता भी छिपी रहती है, इसलिए इसमें विलक्षण व्यापकता है। संस्कृत संसार के अभूतपूर्व महाकवि भवभूति भी इसकी चपेटों से न बचे, अपने क्षोभ को इन शब्दों में प्रकट करते हैंः—

'ये नाम केचिदिह नः प्रथयन्त्यवज्ञां जानन्तु ते किमपि तान्प्रति नैष यत्नः।
उत्पत्स्यतेपि मम कोपि समानधर्मा कालोप्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी॥'

ऐसी अवस्था में कोई साहित्यिक अपनेको सुरक्षित नहीं समझ सकता, और न मैंने सुरक्षित रहने के उद्देश्य से प्रस्तुत ग्रंथ का कुछ परिचय देने की चेष्टा की है। मेरा लक्ष्य उसका वास्तविक स्वरूप प्रकट कर देने का है, जिससे उसके सिद्धान्तों और भाषा आदि के विषय में भ्रान्ति न हो। कवियों की प्राचीन परम्परा यह भी है कि वे अपने मुख से अपनी बहुत कुछ प्रशंसा करते हैं। पण्डितराज-जगन्नाथ अपने विषय में यह लिखते हैं:—

'गिरां देवी वीणा गुणरणनहीनादरकरा।
यदीयानां वाचाममृतमयमाचामति रसम् ॥
वचस्तस्या कर्ण्यं श्रवणसुभगं पण्डितपते।
रधुन्वन्मूर्धानं नृपशुरथवायं पशुपतिः ॥'

सुधावर्षी सुकवि जयदेवजी अपने विषय में यह कहते हैं:—

'यदि हरिस्मरणे सरसं मनो यदि विलासकलासु कुतूहलम्।
मधुरकोमलकान्तपदावलीं शृणु तदा जयदेव सरस्वतीम् ॥'

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र की आत्मश्लाघा देखिए:—

'परम प्रेमनिधि रसिकवर, अति उदार गुनखान।
जग जनरंजन आशु कवि, को हरिचन्द समान ॥
जग जिन तृण सम करि तज्यो, अपने प्रेम प्रभाव।
करि गुलाब सों आचमन, लीजत वाको नाँव ॥'

उर्दू कवियों में यह रंग बहुत गहरा है। अनीस और मौलाना अकबर की आत्मप्रशंसा आप सुन चुके हैं, कुछ कवियों की और सुनिये। ग़ालिब कहते हैं:—

'रेख़्ता के तुम्हीं उस्ताद नहीं हो ग़ालिब।
सुनते हैं अगले ज़माने में कोई मीर भी था ॥'

दाग़ का का दिलदिमाग़ देखिए:—

'तेरी आतिश बयानी दाग़ रोशन है ज़माने पर।
पिघल जाता है मिस्ले शमा दिल हर इक सखुनदाँ का॥'

इन्शाअल्लाह खाँ की ऊँची उड़ान विचित्र है:—

'यक तिफ़्ले दबिस्ताँ है फलातूँ मेरे आगे।
क्या मूँ है अरस्तू जो करे चूँ मेरे आगे॥
बोले है यही खामः कि किस किस को मैं बाँधूँ।
बादल से चले आते हैं मज़मूँ मेरे आगे॥'

किन्तु मैं इस पथ का पथिक नहीं.—'नवै सो गरुआ होय' सिद्धान्त ही मुझको प्यारा है, यही मेरा जीवनमंत्र है। इष्ट यह था कि चौपदों की भाषा, भाव आदि के विषय में जो अयथा बातें कहीं गयी हैं, उनको मैं स्पष्ट कर दूँ। मैंने उनका पूरा स्पष्टीकरण करके यही किया है। यदि ऐसा करने में कुछ अनौचित्य हुआ हो तो वह परिमार्जनीय है।

कुछ शब्दों के व्यवहार और उनके लिंग के विषय में भी तर्क किये गये हैं। ऐसे शब्दों के विषय में मेरा वक्तव्य क्या है, उसे प्रकट कर चुका हूँ। एक शब्द को उदाहरण की भाँति उपस्थित करके मैं इस विषय को और स्पष्ट करूँगा। मैंने कहीं कहीं 'कचट' शब्द का प्रयोग किया है' जैसे—'जी की कचट'। जनता की बोलचाल में यह शब्द व्यवहृत है, किन्तु लिखित भाषा में इसका प्रयोग लगभग नहीं पाया जाता किन्तु 'कचट' शब्द जिस भाव का द्योतक है, उस भाव का पर्यायवाची शब्द न मुझको संस्कृत में ही मिलता है, न अरबी अथवा फ़ारसी ही में। अँगरेज़ी में भी शायद न मिलेगा। ऐसी अवस्था में यदि उसका प्रयोग हिन्दी कविता में किया गया, तो मेरा विचार है कि यह कार्य्य अनुचित नहीं हुआ। कविता के

लिए लम्बे-लम्बे वाक्यों से एक उचित शब्द का प्रयोग अधिक उपकारक और भावमय होता है, इस बात को कौन सहृदय न मानेगा! फिर 'कचट' जैसा शब्द क्यों छोड़ा जावे, विशेष कर बोलचाल की भाषा लिखने में। 'कचट' शब्द ग्रामीण नहीं है, नागरिक है; इस प्रान्त के पूर्व भाग के कई नगरों में वह बोला जाता है, इस लिए ग्राम्य-दोष से दूषित भी वह नहीं माना जा सकता। यदि ग्राम्य-दोष -दूषित भी वह होता तो भी व्यापकता और भावमयता की दृष्टि से उसका त्याग उचित न कहा जाता, क्योंकि यही तो सहृदयता है। भाव और विचार की दृष्टि से जब ग्राम्य कविता भी आदरणीय हो जाती है, तो उपयुक्त ग्राम्य शब्द का आदर न करना क्या सुविवेक होगा! ऐसे कतिपय शब्दों के ग्रहण का उद्देश, आशा है, इन पंक्तियों से स्पष्ट हो गया होग। संभव है यह मत सर्वमान्य न हो, किन्तु औचित्य और न्याय-दृष्टि से ही मैं अपना मत व्यक्त करने के लिए बाध्य हुआ।

मैं पवन और वायु शब्द को स्त्रीलिङ्ग लिखता हूँ। मेरी यह सीनाजोरी नहीं है; अधिकांश प्राचीन कवियों ने इन शब्दों को स्त्रीलिङ्ग ही लिखा है, फिर भी इसके स्त्रीलिङ्ग लिखने पर तर्क किया गया है; प्राचीन प्रतिष्ठित लेखकों के कुछ पद्य प्रमाण-स्वरूप नीचे उद्धृत किये जाते हैं: —

'अकेली भूलि परी बन माँह।
कोऊ बाय बही कतहूँ की छूटि गई पिय बाँह॥'—*सूरदास*

'तुमहूँ लागी जगत गुरु, जगनायक जग बाय।'—*बिहारी*

'चली सीरी बाय तू चली नभो विहान री-*गंग*—*कविता कौमुदी*, पृ० २६४

'बाँस की पवन लागे कोसन भगत है'—बेनी—कविता कौमुदी, पृ० ३६०

'बिना डुलाये ना मिलै, ज्यों पंखा की पौन'-वृन्द--कविता कौमुदी, पृ० ३८६

'तैसी मंद सुगंध पौन दिनमनि दुख दहनी'—नागरी दास—कविता कौमुदी, पृ० ४०९

पौन बहैगी सुगंधि 'ममारख' लागैगी ही मैं सलाक सी आयकै—
ममारख—सुन्दरी तिलक

"घनी घनी छाया में बन की पवन लागे झुकि झुकि आवै नींद कल ना गहति है—"

इसका अर्थ गद्य में यों करते हैं—

"घनी छाया में मन्दी और ठंढी पवन पाटलि के फूलों की सुगंध लिये आती है, जिसके लगने से हृदय को सुख होता है"—राजा लक्ष्मण सिंह

"एक ओर से शीतल मन्द सुगन्ध पवन चली आती थी, दूसरी ओर से मृदंग और बीन की ध्वनि"—राजा शिवप्रसाद—हिंदी निबंधमाला, प्रथम भाग, पृ० ४०

"फूले रैन फूल बागन में सीतल पौन चली सुखदाई"-हरिश्चंद्र-कर्पूर मंजरी

"सन सन लगी सीरी पवन चलन"-हरिश्चंद्र—नील देवी

"तथा सिन्धु से चली वायु तहाँ पंखा शीत चलाती है"
"अभाव से नहिं बुझे नहीं लालसा पवन जिसको लागी"
—पं० श्रीधर पाठक 'श्रान्त पथिक' पृ० ६, ११

"पवन तीन प्रकार की होती है. शीतल, मन्द, सुगन्ध—जल स्पर्श करती हुई जो पवन चलती है उसे शीतल पवन कहते हैं। ठहर ठहर

कर धीमी गति से चलनेवाली पवन को मन्द पवन कहते हैं, इत्यादि—भानु कवि—काव्य प्रभाकर, पृष्ठ ३६१

श्रीधर भाषाकोष (पृ० ३६६) में पवन को स्त्रीलिङ्ग लिखा है।

पं० कामताप्रसाद गुरु ने अपने हिन्दी व्याकरण में पवन को संस्कृत में पुल्लिङ्ग और हिन्दी में स्त्रीलिङ्ग माना है।

बात यह है कि हिन्दी भाषा में बयार और बतास शब्द स्त्रीलिंग है, इन्हींके साहचर्य्य से वायु और पवन को भी स्त्रीलिंग लिखा जाने लगा। कोई कोई कहते हैं कि हवा, शब्द के संसर्ग से ही, पवन और वायु को भी स्त्रीलिंग लोग लिखने लगे, किन्तु मैं इसको स्वीकार नहीं करता। 'हवा' फारसी शब्द है, उसका व्यापक प्रचार होने के पहले ही उक्त शब्दों का स्त्रीलिंग लिखना प्रारम्भ हो गया था; सूरदासजी की कविता इस बात का प्रमाण है। पुस्तक, जप, औषध, आत्मा, विनय आदि शब्द संस्कृत में पुल्लिङ्ग लिखे जाते हैं, हिन्दी में स्त्रीलिंग। देवता संस्कृत में स्त्रीलिंग है, हिंदी में पुल्लिङ्ग। यदि ये प्रयोग तर्कयोग्य नहीं, तो पवन और वायु का स्त्रीलिंग में व्यवहार करना भी आक्षेपयोग्य नहीं। इस समय कुछ हिन्दी लेखक इन शब्दों को संस्कृत के अनुसार पुल्लिङ्ग लिखते हैं, किन्तु अधिकांश लोग अब भी इनको स्त्रीलिंग ही मानते हैं। यदि खड़ी बोली और सामयिक शुद्ध परिवर्तनों की दुहाई देकर उक्त शब्दों का पुल्लिंग लिखना उचित समझा जावे, तो संस्कृत के उन अनेक शब्दों के लिङ्ग को भी बदलना होगा, जिनका व्यवहार हिन्दी में उनके प्रयोग के प्रतिकूल किया जाता है। यदि सर्वसम्मत हो तो ऐसा करना, अथवा हो जाना असम्भव नहीं, किन्तु मैं समझता हूँ इसमें एकवाक्यता न होगी, क्योंकि यह आवश्यक नहीं है कि संस्कृत के अनुसार ही हिन्दी भाषा के सब प्रयोग हों। दोनों

भाषाएँ भिन्न-भिन्न हैं; सुविधा के अनुसार हिन्दी भाषा स्वतंत्र पथ ग्रहण कर सकती है। भाषा का नियम ही यही है, एक भाषा अन्य भाषा से आवश्यक शब्द लेती है, परन्तु उसको अपने रङ्ग में ढाल देती है, और अपनी अवस्था के अनुसार उसमें परिवर्तन भी कर लेती है। मैं समझता हूँ, वायु और पवन शब्द अथवा इसी प्रकार के शब्दों को भी उभयलिङ्गी मान लेना ही उत्तम है। प्रत्येक भाषा में ऐसे शब्द मिलेंगे। उर्दू का 'बुलबुल' शब्द भी ऐसा ही है। लखनऊवाले कवि उसको पुलिंग और देहलीवाले स्त्रीलिङ्ग लिखते हैं। ऐसे ही दूसरी भाषाओं के भी अनेक शब्द बतलाये जा सकते हैं।

कर्तव्यसूत्र से मुझको 'बोलचाल' नामक ग्रन्थ के कतिपय विषयों पर प्रकाश डालना, और कतिपय शब्दों के प्रयोग के विषय में भी अपना विचार प्रकट करना आवश्यक बोध हुआ। आशा है विबुधजन उसी भाव से इन बातों को ग्रहण करेंगे, जिस भाव से कि वे लिखी गयी हैं। किसी विवाद के वशीभूत होकर मैंने ऐसा नहीं किया है; भ्रम, प्रमाद यदि कहीं दृष्टिगत हो तो, सूचना मिलने पर मैं उसको सच्चे हृदय से स्वीकार करने के लिए प्रस्तुत हूँ।

मैंने इस भूमिका के लिखने में अनेक ग्रन्थों से सहायता ली है। मैंने उनके अवतरण भी आवश्यक स्थलों पर उठाये हैं, इसके लिए मैं उक्त ग्रन्थों के रचयिताओं का हृदय से कृतज्ञ हूँ, और विनीत भाव से उनके प्रति कृतज्ञता प्रकाश करता हूँ।

'काशी धाम' **"हरिऔध"**

—:※:—

बोलचाल

बाल

देव देव

चौपदे

बात कैसे बता सकें तेरी।
हैं मुँहों में लगे हुए ताले॥
बावले बन गये न बोल सके।
बाल की खाल काढ़नेवाले॥ १॥

पाँव मेरे हिले नहीं वाँ भी।
थे बखेड़े जहाँ अनेक मचे॥
हर जगह मिल गये तुमारा बल।
सब बलाओं से बाल बाल बचे॥ २॥

ठीक लौ जो लगी रहे हरि ओर।
तो करेगा न कुछ जगत–जंजाल॥
जो न होती रहे कपट की काट।
क्या रखे और क्या कटाये बाल॥ ३॥

पा तुम्हें जो भूल अपने को गया।
वह डराये, कब किसी से डर सका॥
जो कि प्यारे हाथ तेरे बिक गये।
कौन उनका बाल बाँका कर सका॥४॥

conhgrol

सब जगह जिसकी दिखाती है झलक।
जान उसको वे न जो अब तक सके॥
तो हुए बूढ़े बने पक्के नहीं।
धूप में ही बाल उनके हैं पके॥ ५॥

निराले नगीने

कर रहे हैं न भूल, भूलों को।
जो भली बात हैं बता आते॥
क्या बहुत ही मलीन होने से।
बाल मैले मले नहीं जाते॥ ६॥

बात बूढ़े जवान की क्या है।
टल सकीं कब बुरी लतें टाले।
बाँकपन को सुपेद होकर भी।
छोड़ते हैं न बाल घुँघुराले॥ ७॥

काम अपना निकालने में कब।
और पर और को दया आई॥
दे सदा हाथ से जड़ों में जल।
काटते बाल कब कँपा नाई॥ ८॥

पाप को पाप जो न मानें, वे।
क्यों किसी पाप में न ढल जाते॥
देख कर बाल क्यों न वे निगलें।
जो खड़े बाल हैं निगल जाते॥ ९॥

बने बरतन

मैं नहीं चाहता जवान बना।
क्या करें पेट सब कराता है॥
कब भला सादगी - पसंदों को।
बाल रँगना पसंद आता है॥१०॥

है उन्हें काम मतलबों से ही।
वे करें क्यों सलूक किस नाते॥
आँख से देख कर बिना हिचके।
जो खड़े बाल हैं निगल जाते॥११॥

लानतान

पढ़ चुके सारी कमाई हो चुकी।
हाथ सब कुछ हम अभागों के लगा॥
जब तुमारा इस तरह आठो पहर।
बाल की ही खूँटियों पर जी टँगा॥१२॥

मीठी चुटकी

बाप दादों की छोटाई की कभी।
इस छँटाई में न कुछ परवा रहे॥
पर बता दो तज छटापन यह हमें।
हो छँटे क्यों बाल हो छँटवा रहे॥१३॥

बोझ लादे हुए फिरे सिर पर।
दूसरों का बिगाड़ क्या पाये॥
वह तुम्हीं को लिपट गई उलटे।
बाल रख कर भली बला लाये॥१४॥

बात बात में बात

उस्तुरों से उड़े हवा में उड़े।
और दो चार पौडरों से उड़े।
इस तरह से उड़ा किये लेकिन।
पर लगाकर कभी न बाल उड़े॥१५॥

contrd.

रूप औ रंगतें बदलने के।
लग गये हैं उन्हें अजब चसके ॥
बाल में बात यह मिली न्यारी।
बँध गये कस गये मगर खसके ॥१६॥

लताड़

एक बेमुँहको किसी दुवमुँही पर।
यों बिपत ढाना न तुमको चाहिये ॥
चूसने को उस बिचारी का लहू।
बाल चुनवाना न तुमको चाहिये ॥१७॥

बुरी लत

संगतें कीं भली सँभाल चले।
पर भला किस तरह कुबान छुटे ॥
जी करे है चपत जमाने को।
देख करके किसीके बाल घुटे ॥१८॥

दुनियादारी

टूटना जब कि चाहिये था जाल।
तब गया और भी जकड़ जंजाल ॥
बढ़ गई और भी सुखों की भूख।
जब कि खिचड़ी हुए हमारे बाल ॥१९॥

अन्योक्ति

क्यों न लहरा लहर उठायें वे।
साँप कह लोग तो डरे ही हैं ॥
आँख में धूल क्यों न वे झोंकें।
बाल तो धूल से भरे ही हैं ॥२०॥

हैं अगर बारबार धुल निखरे।
तो करें बेतरह न नखरे ए॥
जो खरे हैं न तो खरे मत हों।
बिख बिखेरें न बाल बिखरे ए॥२१॥

बीर जैसा जमा उन्हें देखा।
जब कटे आन बान साथ कटे॥
कब दबे बाल के बराबर भी।
बाल भर भी कभी न बाल हटे॥२२॥

है बुराई में भलाई रंग भी।
नेह में 'रूखा बहुत बनकर' सना॥
है छँटाने से छटा उसको मिली।
जब बना तब बाल बनवाये बना॥२३॥

जब मिले तब मिले बड़े सीधे।
चौगुने नेह चाह को देखो॥
हैं धुले धूल से भरे भी हैं।
बाल के बालभाव को देखो॥२४॥

गूँध डाले गये गये खोले।
तेल उन पर मले गये तो क्या॥
वे जगह पर जमे रहे अपनी।
बाल पर जो छुरे चले तो क्या॥२५॥

आप उन पर पड़ी न अच्छी आँख।
दूसरों को दिया भरम में डाल॥
छोड़ अपना सियाह असली रंग।
हैं खटकते किसे न भूरे बाल॥२६॥

छूटना है मुहाल खोटा रंग।
जल्द आई पसंद गंदी चाल ॥
धो सियाही सके न धुल सौ बार।
भर गये धूल में भले ही बाल ॥२७॥

चोटी

सूझ-बूझ

चोट जी को जब नहीं सच्ची लगी।
प्रेमधारा जब नहीं जी में बही ॥
चोंचलों से नाथ रीझेगा न तब।
है गई यह बात चोटी की कही ॥२८॥

सूरमे

खौलता जिनकी रगों का है लहू।
है दिलेरी बाँट में जिनके पड़ी ॥
डाँट सुनकर सूरमापन से भरी।
कब न उनकी हो गई चोटी खड़ी ॥२९॥

लानतान

धर्म की वे दूह क्यों पोटी न लें।
चौगुनी जब चाह रोटी की रखें।
जब चटोरे बन कटा चोटी सकें।
किस तरह तब लाज चोटी की रखें ॥३०॥

बेबसी

सब सहेंगे पर करेंगे चूँ नहीं।
बेबसी होगी बहुत हम पर फबी ॥
सिर सकेंगे किस तरह से हम उठा।
जो तले हो पाँव के चोटी दबी ॥३१॥

हितलटके

मर मिटे पर छोड़ दे हिम्मत नहीं।
एक भी साँसत न सीधे से सहे॥
है न खोटी बात इससे दूसरी।
हाथ में जो और के चोटी रहे॥३२॥

पछतावा

रंगरलियाँ मना जनम खोया।
रंग लाती रही समझ मोटी॥
तब खुली आँख और सुध आई।
जब कि ली काल ने पकड़ चोटी॥३३॥

लताड़

अब तो चूड़ी पहन हाथ में दोनों।
रहा माँग में सेंदुर ही का भरना॥
तब से सारा मरदानापन भागा।
जब से सीखा कंघी-चोटी करना॥३४॥

सिर

देव देव

पा गये तेरा सहारा सब सधा।
पार पाया प्यारधारा में बहे॥
एक तेरे सामने ही सिर नवा।
सिर सबों के सब जगह ऊँचे रहे॥३५॥

डूब जाये या कि उतराता रहे।
क्या उसे जो प्यारधारा में बहा॥
बेंच तेरे हाथ जिसने सिर दिया।
फिर उसे क्या सिर गया या सिर रहा॥३६॥

एक से एक हैं बढ़े दोनों।
ढूँढ उनके सके न पैमाने ॥
चूक अपनी, न चूकना प्रभु का।
सिर लगा सोच सोच चकराने ॥३७॥

फूल गेंदे गुलाब बेले के।
एक ही सूत में गये गाँथे ॥
आपकी सूझ को कहें क्या हम।
आपकी रीझ बूझ सिर माथे ॥३८॥

अपने दुखड़े

सब तरह से दबे हुए जो हैं।
वे नहीं दाँत काढ़ते थकते ॥
क्यों न उन पर सितम करे कोई।
वे कभी सिर उठा नहीं सकते ॥३९॥

क्या छिपाये रहे बचाये क्या।
सब घरों बीच जब कि लूट पड़े ॥
क्या करे औ किसे पुकारे क्या।
जब कि सिर पर पहाड़ टूट पड़े ॥४०॥

सजीवन जड़ी

किस लिये सिर को नवाता तब फिरे।
जब कि सिर पर सब बलाओं को लिया ॥
मूसलों की तब करे परवाह क्या।
जब किसीने ओखली में सिर दिया ॥४१॥

हितगुटके

दूसरे उसको सतायेंगे न क्यों।
जो सताता और को है हर घड़ी॥
किस लिये यों आप हैं सिर धुन रहे।
आपके सिर आपकी करनी पड़ी॥४८॥

चाहता है जो भला अपना किया।
आप भी वह और का चाहे भला॥
जो फँसाते हैं बला में और को।
क्यों भला आती न उनके सिर बला॥४९॥

नीच सिर पर जब चढ़ा सोचा न तब।
सिर पकड़ते हो भला अब किस लिये॥
जब कि धूआँ उठ सका ऊँचा कभी।
तब किसे छोड़ा बिना मैला किये॥५०॥

छोड़ दो बान बात गढ़ने की।
रेत पर भीत रह सकी कब थिर॥
कुछ तुम्हीं हो नहीं समझवाले।
यह समझ लो कि है समझ सिर सिर॥५१॥

उँगलियाँ जो कड़ी मिलीं तुमको।
तोड़ते मत फिरो नरम पंजा॥
है बुरी बात जो किसीका सिर।
मारते मारते करें गंजा॥५२॥

है निठुरपन औ बड़ा ही नीचपन।
है नहीं कोई बड़ा इससे सितम॥
पाँव का ठोकर जमाने के लिये।
क्यों किसीका सिर बना दें गेंद हम॥५३॥

तीन पन तो पाप करते ही गया।
सब तरह की की गयी सबसे ठगी॥
तब भला क्या मन मनाने तुम चले।
जब कि सिर पर मौत मँडलाने लगी॥५४॥

थपेड़े

वह खुले आम हो गया नीचा।
आँख से नेकचलनियों की गिर॥
बात की सूझ बूझ की तुमने।
जो बड़ों को नहीं नवाया सिर॥५५॥

पास तक भी फटक नहीं पाते।
सैकड़ों ताड़ झाड़ सहते हैं॥
आपमें कुछ कमाल है ऐसा।
फिर भी सिर पर सवार रहते हैं॥५६॥

धूल में मिल जाय वह सुकुमारपन।
जो किसीकी धूल उड़वाने लगे॥
फूल ही तो टूट कर उस पर गिरा।
किस लिये सिर आप सहलाने लगे॥५७॥

औरों की चुटकी लेते लेते ही।
तुम ने ही सब अपने परदे खोले॥
इसको ही कहते हैं कहनेवाले।
जादू वह जो सिर पर चढ़ कर बोले॥५८॥

तोड़ देंगे सिर बड़प्पन का न क्यों।
लड़ बड़ों के साथ जड़पन के सगे॥
है उन्हींकी चूक पत्थर क्या करे।
टूट जावे सिर अगर टक्कर लगे॥५९॥

जी कड़ाई में निरे जड़ जीव का।
पत्थरों से है बढ़ा होता कहीं॥
भाग से आई मुसीबत टल गई।
सिर अगर टकरा गये टूटा नहीं॥६०॥

धूल में ही आपने रस्सी बटी।
दैव से भी आपकी है चल गई॥
क्या हुआ जो और पर आई बला।
आपके सिर की बला तो टल गई॥६१॥

मर्य्यादा

जो अदब के सामने हैं झुक चुके।
जो सके मरजाद के ही संग रह।
रँग जमाने को बड़ों के सामने।
सिर उठायेंगे भला वे किस तरह॥६२॥

पड़ सकती जो नहीं किसी पर सीधी।
क्यों न धूल उन आँखों में देवें भर॥
प्यार छलकता है जिनकी आँखों में।
रखें लोग क्यों उन्हें न सिर आँखों पर॥६३॥

छेड़छाड़

चाहिये था इस तरह हिलना उसे।
जो कि देता फूल सा सबको खिला॥
देख जिसको मुँह बहुत कुम्हला गये।
इस तरह से आपका सिर क्यों हिला॥६४॥

चाँदनी कितने कलेजों में पसार।
सैकड़ों ही आँख से मोती निकाल॥
सब निराले ढंग के पुतले हैं आप।
सिर हिलाना भी दिखाता है कमाल॥६५॥

झिड़की

देखिये, मत टालिये, कर दीजिये।
राह में काँटें हमारी बो गये॥
कह दिया था हो सकेगा अब न कुछ।
आज फिर क्यों आप यों सिर हो गये॥६६॥

वे कभी फूले फलेंगे ही नहीं।
जो बिपत हैं दूसरों पर ढाहते॥
जो नहीं तुम मानते यह बात हो।
तो नहीं हम सिर खपाना चाहते॥६७॥

जोखों

बेबसी से आज जोखों में पड़े।
नीच हैं धन चाहते दुख झेल कर॥
क्या हमें थोड़ा मिला लाखों मिले।
सिर गँवाया जो न सिर से खेलकर॥६८॥

अभागे

आज मैं बेचैन क्यों इतना हुआ।
इस तरह से क्यों घड़ों आँसू बहा॥
एक पल भी आँख लग पाई नहीं।
रात भर सिर दर्द क्यों होता रहा॥६९॥

दुख बहुत भोगे, बड़ी साँसत सही।
आँसुओं की धार ही में नित बहे॥
टूट पड़ती ही रही सिर पर बिपद।
सिर पटकते कूटते ही हम रहे॥७०॥

जी कड़ाई में निरे जड़ जीव का।
पत्थरों से है बढ़ा होता कहीं॥
भाग से आई मुसीबत टल गई।
सिर अगर टकरा गये टूटा नहीं॥६०॥

धूल में ही आपने रस्सी बटी।
दैव से भी आपकी है चल गई॥
क्या हुआ जो और पर आई बला।
आपके सिर की बला तो टल गई॥६१॥

मर्य्यादा

जो अदब के सामने हैं झुक चुके।
जो सके मरजाद के ही संग रह।
रँग जमाने को बड़ों के सामने।
सिर उठायेंगे भला वे किस तरह॥६२॥

पड़ सकती जो नहीं किसी पर सीधी।
क्यों न धूल उन आँखों में देवें भर॥
प्यार छलकता है जिनकी आँखों में।
रखें लोग क्यों उन्हें न सिर आँखों पर॥६३॥

छेड़छाड़

चाहिये था इस तरह हिलना उसे।
जो कि देता फूल सा सबको खिला॥
देख जिसको मुँह बहुत कुम्हला गये।
इस तरह से आपका सिर क्यों हिला॥६४॥

चाँदनी कितने कलेजों में पसार।
सैकड़ों ही आँख से मोती निकाल॥
सब निराले ढंग के पुतले हैं आप।
सिर हिलाना भी दिखाता है कमाल॥६५॥

झिड़की

देखिये, मत टालिये, कर दीजिये।
राह में काँटें हमारी बो गये॥
कह दिया था हो सकेगा अब न कुछ।
आज फिर क्यों आप यों सिर हो गये॥६६॥

वे कभी फूले फलेंगे ही नहीं।
जो बिपत हैं दूसरों पर ढाहते॥
जो नहीं तुम मानते यह बात हो।
तो नहीं हम सिर खपाना चाहते॥६७॥

जोखों

बेबसी से आज जोखों में पड़े।
नीच हैं धन चाहते दुख झेल कर॥
क्या हमें थोड़ा मिला लाखों मिले।
सिर गँवाया जो न सिर से खेलकर॥६८॥

अभागे

आज मैं बेचैन क्यों इतना हुआ।
इस तरह से क्यों घड़ों आँसू बहा॥
एक पल भी आँख लग पाई नहीं।
रात भर सिर दर्द क्यों होता रहा॥६९॥

दुख बहुत भोगे, बड़ी साँसत सही।
आँसुओं की धार ही में नित बहे॥
टूट पड़ती ही रही सिर पर बिपद।
सिर पटकते कूटते ही हम रहे॥७०॥

दिनों का फेर

मुँह दिखातीं नहीं उमंगें अब।
सब बड़े चाव हो गये सपने॥
है बुढ़ापा डरावना इतना।
सिर लगा बात बात में कँपने॥७१॥

है दिनों के फेर से किसकी चली।
थे पड़े नुच धूल में बेले खिले॥
ताज थे जिन पर कभी हीरे जड़े।
उन सिरों को पाँव ठुकराते मिले॥७२॥

सिर सूँघना

गोद में चाव से सभों को ले।
नेह की बेलि सींच देते हैं।
प्यार की बास से न बस में रह।
सिर उमग लोग सूँघ लेते हैं॥७३॥

अपना मतलब

दी गई क्यों डाल मेरे सिर बला।
बच गये हम आज सिर से खेल के॥
दूसरों की आँख में सब दिन रहे।
दूसरों के सिर बराबर बेल के॥७४॥

तरह तरह की बातें

दुख-हवायें हैं बहुत झकझोरतीं।
क्यों नहीं सुख-पेड़ की हिलतीं जड़ें॥
है मुसीबत की घटा घहरा रही।
क्यों न ओले सिर मुड़ाते ही पड़ें॥७५॥

खायँगे मुँह की पड़ेंगे पेंच में।
जो खिजाने और बहकाने लगे॥
कोढ़ की तो खाज हम हैं बन रहे।
किस लिये सिर आप खुजलाने लगे॥७६॥

जो बला जाने बिना ही सिर पड़े।
क्यों भला उससे न जाते लोग घिर॥
किस तरह बन्दर बिचारा जानता।
है तवेले की बला बन्दर के सिर॥७७॥

दूसरों को देख फलते फूलते।
मुँह बना जिसका रहा सब दिन तवा॥
क्यों कलेजे के बिना जनमा न वह।
सिर सुबुकपन पर दिया जिसने गँवा॥७८॥

है बुरा कुछ धन जगह के ही लिये।
बेंच करके नाम जो कोई जिये॥
नामियों ने राज की तो बात क्या।
नाम पाने के लिये सिर तक दिये॥७९॥

चूक है तब भी अगर सँभले नहीं।
जब कि ऊँचे पर हुए आकर खड़े॥
भूल है तब भी न जो भारी बने॥
जब कि सारा भार सिर पर आ पड़े॥८०॥

थे अभी कल तक रगड़ते नाक वे।
आज इतना किस तरह जी बढ़ गया॥
कर उतारा हम उतारेंगे उसे।
भूत सिर पर जो किसीके चढ़ गया॥८१॥

बन गईं चाहतें चुड़ैलों सी।
रँग चढ़ा सूरतें निवानी का ॥
चोचले चल गये उमंगों के।
भूत सिर पर चढ़े जवानी का ॥८२॥

जो कि उकठा काठ है बिल्कुल उसे।
क्यों खिलाना या फलाना हम चहें ॥
क्या करेंगे तीर पत्थर पर चला।
कूढ़ से सिर मारते कब तक रहें ॥८३॥

सिर और बाल

तब हरा कुँभला गया जी भी बना।
क्यों भला उनसे न रस बूँदें चुयें ॥
सिर! बले तुम में दिये जो ज्ञान के।
जब उन्हींके बाल काले हैं धुँएँ ॥८४॥

देख कर उनका कड़ापन रूप रँग।
बात सिर! मैंने कही कितनी सही ॥
हो बुरे कितने बिचारों से भरे।
बाल बन कर फूट निकले हैं वही ॥८५॥

जब कि सिर बो दिये बदी के बीज।
जब बुरे रंग में सके तुम ढाल ॥
तब भला किस लिये न लेते जन्म।
बाल जैसे कुरूप काले बाल ॥८६॥

सिर और पाँव

जोहते मुँह दिन बिताते एक हैं।
एक के जी की नहीं कढ़ती कसर ॥
पाँव सिर को हैं लगाते ठोकरें।
सिर सदा गिरते मिले हैं पाँव पर ॥८७॥

तुम उसे भी कभी न हीन गिनो।
जो दबा नित रहे बहुत ही गिर॥
पाँव ने ठोकरें लगा करके।
कर दिये चूर चूर कितने सिर॥८८॥

घट सकेगा पद न भारी का कभी।
बात लगती कह भले ही ले छटा॥
जो लगादीं पाँव ने कुछ ठोकरें।
तो भला सिर मान इससे क्या घटा॥८९॥

तुम न भारीपन गँवा हलके बनो।
मत किसीको प्यार करने से रुको॥
हैं अकड़ते पाँव तो अकड़े रहें।
पर सभी के सामने सिर तुम झुको॥९०॥

अन्योक्ति

थी कभी चमकी जहाँ पर चाँदनी।
देख पड़ती है घटा काली वहीं॥
धूल सिर! तुम पर गिरी तो क्या हुआ।
फूल चन्दन ही सदा चढ़ते नहीं॥९१॥

मत करो हर बात में चालाकियाँ।
साथ में पड़ तुम किसी सिरफिरे के॥
हैं बनी बातें बिगड़ जातीं कहीं।
सिर! बने चालाक परले सिरे के॥९२॥

गोद में गिर प्यार के पुतले बने।
जंग में गिर कर सरगसुख से घिरे॥
पर उसी दिन सिर! बहुत तुम गिर गये।
पाजियों के पाँव पर जिस दिन गिरे॥९३॥

यों न थोड़ा मान पा इतरा चलो।
धूल उड़ती कब नहीं है धूल की ॥
सिर अगर फूले समाते हो नहीं।
फूल की माला पहन तो भूल की ॥९४॥

था भला तुम खुल गये होते तभी।
जब तुमारा ढब न जाता था सहा ॥
चोट खाई तर लहू से हो गये।
तब अगर सिर! खुल गये तो क्या रहा ॥९५॥

जब बुरी रुचि-कीच में डूबे रहे।
तब हुआ कुछ भी नहीं नित के धुले ॥
सिर! यही था ठीक खुलते ही नहीं।
बेपरद करके किसीको क्या खुले ॥९६॥

साधते निज काम वैसे ही रहे।
जब तुमारा काम जैसे ही सधा ॥
सिर कभी तुम पर बँधी सेल्ही रही।
मोतियों का था कभी सेहरा बँधा ॥९७॥

जब पड़े लोग टूट में तुमसे।
तब अगर टूट तुम गये तो क्या ॥
जब रहे फूट डालते घर में।
तब अगर फूट तुम गये तो क्या ॥९८॥

झोंक दो उन मतलबों को भाड़ में।
उन पदों को तुम गिनो मुरदे सड़े ॥
मान खो अभिमानियों के पाँव पर।
सिर! तुम्हें जिनके लिये गिरना पड़े ॥९९॥

सब तरह की की गई करनी व फल।
रात दिन सम साथ दोनों हैं जुड़े॥
सिर रहे जब दूसरों को मूँड़ते।
तब भला तुम भी न क्यों जाते मुड़े॥१००॥

जब कलेजा ही तुमारे है नहीं।
तब सकोगे किस तरह तुम प्यार कर॥
सिर! जले वह सुख तुम्हें जो मिल सका।
वार अपने को छुरे की धार पर॥१०१॥

जब सके बाँध पूच मंसूवे।
तब तुम्हें क्यों न हम बँधा पाते॥
जब कि अन्धेर कर रहे हो सिर!
तब न क्यों बाल बाल बिन जाते॥१०२॥

लोग बेजोड़ चाल चलते ही।
चट लगा जोड़ बन्द लेवेंगे॥
सिर अगर तोड़फोड़ भाता है।
तो तुम्हें तोड़ फोड़ देवेंगे॥१०३॥

सिर भलाई हाथ में ही सब दिनों।
सब निराले रंग की ताली रही॥
कब भला उजले हुए जल से धुले।
कब लहू से लाल हो लाली रही॥१०४॥

सिर बहुत से बंस को तुमने अगर।
कर दिया बरबाद आपस में लड़ा॥
तो तुमारी बूझ मिट्टी में मिली।
औ तुमारी सूझ पर पत्थर पड़ा॥१०५॥

सादगी में कब भले लगते न थे।
बाँकपन किसने दिया तुमको सिखा ।।
सिर अगर पट्टा लिया तुमने रखा।
तो बनावट का लिया पट्टा लिखा ।।१०६।।

बाल जूड़े में अभी तो थे बँधे।
छूटते ही क्यों उन्हें लटका दिया ।।
भूल अपनापन फबन की चाह से।
सिर तुम्हीं सोचो कि तुमने क्या किया ।।१०७।।

हो सनक सिड़ सेवड़ापन से भरे।
सब तरह की हैं बहुत तुममें कसर ।।
पर सराहे सिर गये सबमें तुम्हीं।
यह सरासर है कमालों का असर ।।१०८।।

खोपड़ी

हितगुटके

आँच में पड़ लाल जब लोहा हुआ।
मार पड़ती है तभी उस पर बड़ी ।।
जब कि होते हो तमक कर लाल तुम।
लाल हो जाती न तब क्यों खोपड़ी ।। १ ।।

डाँट के साथ बेधड़क मुँह से।
जब कि हैं गालियाँ निकल आती ।।
लट्ठ का सामना हुए पर तो।
खोपड़ी लाल क्यों न हो जाती ।। २ ।।

फल उसीकी करनियों का वह रही।
जब कभी जिसको भुगुतनी जो पड़ी॥
गंज उसमें है बुराई का न कम।
हो गई गंजी इसीसे खोपड़ी॥३॥

क्यों बिठाली तभी नहीं पटरी।
जब बढ़ा बैर था न थी पटती॥
जब कि रिस से रही फटी पड़ती।
तब भला क्यों न खोपड़ी फटती॥४॥

जड़ लड़ाई की कहाती है हँसी।
लत हँसी की छोड़ दो, मानो कही॥
क्यों खिजाते खीजनेवालों को हो।
खोपड़ी तो है नहीं खुजला रही॥५॥

सुनहली सीख

है बुरे संग का बुरा ही हाल।
कब न उसने दिया बिपद में डाल॥
थी चली तो कुचालियों ने चाल।
खोपड़ी हो गई हमारी लाल ६॥

फूल बरसे, फूलही मुँह से झड़े।
कब नहीं लोहा लिये लोहू बहा॥
चाहिये था रंग बिगड़े ही नहीं।
रँग गई जो खोपड़ी तो क्या रहा॥७॥

काम कब जागे मसानों में सधे।
भाग जागे कब किये भूलें बड़ी॥
हो जगाते खोपड़ी क्यों मरमिटी।
छोड़ जीती जागती निज खोपड़ी॥८॥

जो कि बेचारपन सिखाती है।
मिल न जिसमें सके बिचार बड़े॥
खोपड़ी कौन काम की है वह।
दे सके काम जो न काम पड़े॥९॥

निराले नगीने

कौन केवल नाम पाने के लिये।
साँसतें अपनी कराता है बड़ी॥
हम कहे जावें धनी, इस चाह से।
कौन गंजी है कराता खोपड़ी॥१०॥

दूसरों के ही गुनाहों से कभी।
बेगुनाहों ने उठाये दुख बड़े॥
मुँह सुनाता बेतुकी गाली रहा।
पर थपेड़े खोपड़ी ही पर पड़े॥११॥

बेढंगे

कह सुनायेंगे न मानेंगे कभी।
बात चाहे हो न कितनी ही सड़ी॥
कुछ अजब है खोपड़ी उनकी बनी।
जो कि खा जाते हैं सबकी खोपड़ी॥१२॥

कह बड़ी पूच बेतुकी बातें।
बेतुकापन बहुत दिखाते हैं॥
है अजब चाट लग गई उनको।
खोपड़ी जो कि चाट जाते हैं॥१३॥

दिनों का फेर

फूल की माला कभी जिस पर फबी।
कँलगियाँ जिस पर रहीं सब दिन ठटी॥
धूल में मिल कर पड़ी थी खेत में।
एक दिन वह खोपड़ी टूटी फटी॥१४॥

बीत सकते एकसे सब दिन नहीं।
एकसी होती नहीं सारी घड़ी॥
बास से जो थी फुलेलों के बसी।
बाँस खाये थी पड़ी वह खोपड़ी॥१५॥

तरह तरह की बातें

डाल कितने बल बुलाया है उसे।
है बला सिर पर हमारे जो पड़ी॥
हम भला कैसे न औंधे मुँह गिरें।
है अजब औंधी हमारी खोपड़ी॥१६॥

लोग कितने लुट हँसी में ही गये।
खेल में फुँकती है कितनी झोंपड़ी॥
कौनसे अँधेर अंधाधुंध को।
कर दिखाती है न अंधी खोपड़ी॥१७॥

सोच कर अपनी गई-बीती दशा।
है नहीं जिसमें कि हलचल सी पड़ी॥
मैं कहूँगा तो हुआ कुछ भी नहीं।
जो न सौ टुकड़े हुई वह खोपड़ी॥१८॥

क्यों कढ़ेंगे चिलचिलाती धूप में।
वे सहेंगे किस तरह आँचें कड़ी॥
भाग से ही धूप थोड़ी सी लगे।
है चिटिक जाती न जिनकी खोपड़ी॥१९॥

माथा

देव देव

देखनेवाली अगर आँखें रहें।
तो कहाँ पर नाथ दिखलाये नहीं॥
बीच ही में घूम है माथा गया।
लोग माथे तक पहुँच पाये नहीं॥१॥

दिल के फफोले

कल नहीं जिसके बिना पल भर पड़ी।
देख कर जिसका सदा मुखड़ा जिये॥
जो वही दे आँख में चिनगी लगा।
तो भला माथा न ठनके किस लिये॥२॥

पीस डाला है जिन्होंने जाति को।
फिर मचाने वे लगे ऊधम नये॥
देख कर यह घूम सिर मेरा गया।
बैठ माथे को पकड़ कर हम गये॥३॥

करतबी

क्या नहीं है कर दिखाता करतबी।
कब कमर कस वह नहीं रहता खड़ा॥
उलझनें आईं बहुत सी सामने।
बल न माथे पर कभी उसके पड़ा॥४॥

पाठ जिसने कर दिखाने का पढ़ा।
संकटों में जो सका जीवट दिखा॥
काम करके ही जगह से जो टला।
वह सका है टाल माथे का लिखा॥१॥

हैं चिमट कर काढ़ लेतीं चींटियाँ।
धूल में मिलजुल गई चीनी छिँटी॥
है भला किस काम का वह, जो कहे।
कब किसीसे लीक माथे की मिटी ॥ ६ ॥

धाक जिनकी मानती दुनिया रही।
साध कर सब काम जो फूले फले॥
वे भला कब छोड़ अपने पंथ को।
मान माथे की लकीरों को चले ॥७॥

काम की धुन में लगे हँसते हुए।
सब तरह की आँच को जिसने सहा॥
लीक माथे की कुचल कर जो बढ़े।
कब भला उनके न माथे धन रहा ॥ ८ ॥

दूर कर दूँगा उपायों से उन्हें।
बासमझ यह बात जी में ठान ले॥
उलझनें जितनी कि माथे पर पड़ें।
फेर माथे का न उनको मान ले ॥९॥

नई पौध

हैं नई पौधें बिगड़ती जा रहीं।
क्या कहूँ यह रोग उपजा है नया॥
देख कर उनका निघरघटपन खुला।
लाज से माथा हमारा झुक गया ॥१०॥

निज धरम से ए खिँचे ही से रहे।
खिँच नहीं आये इधर खींचा बहुत॥
देख इनका इस तरह माथा फिरा।
आज माथा हो गया नीचा बहुत ॥११॥

आजकल के छोकरे सुनते नहीं।
हम बहुत कुछ कह चुके अब क्या कहें॥
मानते ही वे नहीं मेरी कही।
हम कहाँ तक मारते माथा रहें॥ १२॥

सब पढ़ा लिक्खा मगर कोरे रहे।
रह नहीं पाया छिछोरापन ढका॥
क्यों बड़ों का कर नहीं सकते अदब।
देख उनको क्यों न माथा झुक सका॥१३॥

दूसरा क्या काम होगा आपसे।
फबतियाँ लेंगे बनायेंगे उन्हें॥
कह दिया बाबा यही क्या कम किया।
आप क्यों माथा नवायेंगे उन्हें॥१४॥

कूढ़

कुछ न समझे बेतुकी बातें कहे।
कुछ न जाने, जानने का दम भरे॥
इस तरह के कूढ़ से करके बहस।
किस लिये माथा कोई पच्ची करे॥१५॥

सुनहली सीख

लोग उनसे ही सदा डरते रहे।
सब बुरे बरताव से जो डर सके॥
कर सके अपना न जो ऊँचा चलन।
वे कभी माथा न ऊँचा कर सके॥ १६॥

राह में रोड़े पड़ेंगे क्यों नहीं।
जायगी जब धूल में रस्सी बटी॥
रंग रहता है नहीं माथा रँगे।
बात कब माथा पटकने से पटी॥१७॥

थपेड़े

क्या कहें दुख है बड़ा, बातें भली।
कर सकीं, 'जो आपके जी में न घर॥
आप ही मुझको सिकुड़ जाना पड़ा।
आपका माथा सिकुड़ता देख कर॥१८॥

क्या हुआ जो आज आकर जोश में।
आपने बातें बहुत लगती कहीं॥
देख सेंदुर दूसरे का मैं कभी।
फोड़ लेना चाहता माथा नहीं॥१९॥

बेबसी

कुछ भले मानस रहे दुख झेलते।
देख यह, मैंने बचन हित के कहे॥
कुछ न बोले आँख उनकी भर गई।
ठोंक कर माथा बेचारे चुप रहे॥२०॥

दुख मुझे सारे भुगतने ही पड़े।
मैं जनता सौ सौ तरह के कर थका॥
कोसते हो दूसरों को किस लिये।
कौन माथे की लिखावट पढ़ सका॥२१॥

तरह-तरह की बातें

सामने कब आपके कोई पड़ा।
आपका किसपर नहीं हैं दबदबा॥
दूसरों की बात ही क्या, भाग भी।
देख ऊँचा आपका माथा दबा॥२२॥

आप पर बीती गये वे लोग भग।
जो अभी थे आपको देते भड़ी॥
दूसरों की की गई सब नटखटी।
देखता हूँ आपके माथे पड़ी॥२३॥

दुख भरे अपने बहुत दुखड़े सुना।
पाँव उसका हम पकड़ते ही रहे॥
पर दया बेपीर को आई नहीं।
रात भर माथा रगड़ते ही रहे॥२४॥

आपसे रुतबा हमारा कम नहीं।
आपसे रगड़े नहीं हमने किये॥
आपसे कुछ माँगने आये नहीं।
आपने माथा सिकोड़ा किस लिये॥२५॥

तोड़ नाता प्यार का बेदर्द बन।
नाश दीये ने फतिंगे का किया॥
रात भर जलना व थर थर काँपना।
दैव ने माथे इसीसे मढ़ दिया॥२६॥

जो मिला वह आप उस पर कुछ न कुछ।
लाद देने के लिये ललका रहा॥
बोझ से ही तो रहा सब दिन दबा।
बोझ माथे का कहाँ हलका रहा॥२७॥

जिसके दर पर झूम रहे थे हाथी।
और न मिल सकता था जिसके धन का॥
वही माँगता फिरता था कल टुकड़े।
देख दशा यह मेरा माथा ठनका॥२८॥

अन्योक्ति

पेच में अपनी लिखावट के फँसा।
दूसरों को फेर में डाला किये॥
देख माथा यह तुमारी नटखटी।
हो किसी का जी न खट्टा किस लिये॥ २६॥

सुख दुखों की जड़ बताये जो गये।
भेद जिनके खुल नहीं अब तक सके॥
छाँह तक दी उस लिखावट की नहीं।
सब, सदा माथा बहुत तुमसे छके॥३०॥

झंझटों में दूसरों को डाल कर।
क्या रहा माथा भरोसा नाम का॥
जो तुमारे काम ऊँचे हैं न तो।
है न ऊँचापन तुम्हारा काम का॥ ३१॥

वे न हों, या हों, करे बकवाद कौन।
हम उन्हें तो देख सकते हैं न चीर॥
पर सुनो माथा यही क्या है सलूक।
क्यों बनाते हो लकीरों का फकीर॥३२॥

जो रहे सब दिन कनौड़े ही बने।
आज उनके सैकड़ों ताने सहे॥
किस तरह माथा तुम्हें ऊँचा कहें।
जब हमें नीचा दिखाते ही रहे॥ ३३॥

आज दिन पहने जवाहिर जो रहा।
कल वही गहने गिरों रख कर जिया॥
जब कि तुमसे लोग तंगी में पड़े।
तो तुमारा देख चौड़ापन जिया॥३४॥

भौंह

सुनहली सीख

जो नहीं सींच सींच कर पाले।
तो कुचल दे न बेलियाँ बोई॥
हौसलों के गले मरोड़े क्यों।
भौंह अपनी मरोड़ कर कोई॥१॥

अपयशों से बचे रहे वे ही।
चल सके जो बचा बचा करके॥
दूसरों को रहे नचाता क्यों।
भौंह अपनी नचा नचा करके॥२॥

इस तरह से चाहिये चलना उसे।
प्यार का पौधा सदा जिससे पले॥
बिजलियाँ जिससे कलेजों पर गिरें।
इस तरह से भौंह कोई क्यों चले॥३॥

आनबान

किस लिये पट्टी पढाते हैं हमें।
कह सकेंगे हम नहीं बातें गढ़ी॥
खिँच गईं भौंहें बला से खिँच गईं।
चढ़ गईं हैं तो रहें भौंहें चढ़ी॥४॥

कर भला किसको नहीं सीधा सके।
बात सीधी कह बने सीधे रहे॥
दूर टेढ़ापन किसीका कब हुआ।
बात टेढ़ी, भौंह टेढ़ी कर कहे॥५॥

हितगुटके

क्यों नशे में अनबनों के चूर हो।
मेल की बूटी नहीं क्यों छानते॥
दूसरे तब भौंह तानेंगे न क्यों।
जब कि तुम हो भौंह अपनी तानते॥६॥

छोड़ मरजादा गँवा संजीदगी।
यह बता दो कौन संजीदा बना॥
मान कैसे मान को खोकर रहे।
है मटकना भौंह मटकाना मना॥७॥

नोंकझोंक

जब कि उलझी मतलबों में वह रही।
जब कि भलमंसी उसे छूते मुई॥
जब टके सीधे हुए सीधी हुई।
तब किसीकी भौंह सीधी क्या हुई॥८॥

है अजब यह ही कलेजे में न जो।
बात लगती नोंक बरछी सी खुभे॥
आप ही समझें अचंभा कौन है।
जो कटीली भौंह काँटे सी चुभे॥९॥

आँख

देव देव

पाँवड़े कैसे न पलकों के पड़ें।
जोत के सारे सहारे हो तुम्हीं॥
आँख में बस आँख में हो घूमते।
आँख के तारे हमारे हो तुम्हीं॥१॥

देखनेवाली न आँखें हों, मगर।
देखने का है उन्हें चसका बड़ा॥
आप परदा किस लिए हैं कर रहे।
हो भले ही आँख पर परदा पड़ा॥२॥

जान कर भी जानते जिसको नहीं।
क्यों उसीके जानने का दम भरें॥
आप ही क्यों आँख अपनी लें कुचो।
क्यों किसीकी आँख में उँगली करें॥३॥

देख कर आँख देख ले जिनको।
वे बनाये गये नहीं वैसे॥
आँख में जो ठहर नहीं सकता।
आँख उस पर ठहर सके कैसे॥४॥

राह पर साथ राहियों के चल।
साहबी साख से उसे देखें॥
आँख का आँख जो कहाती है।
हम उसी आँख से उसे देखें॥५॥

जोत न्यारी तो नहीं दिखला पड़ी।
आँख में क्यों ज्ञान के दीये बलें॥
आँख में अंजन अनूठा लें लगा।
हम जमायें आँख या आँखें मलें॥ ६ ॥

है जहाँ में कहाँ न जादूगर।
पर दिखाया न देखते ही हो॥
भूल जादूगरी गई सारी।
आँख जादूभरी भले ही हो॥७॥

है जहाँ आँख पड़ नहीं सकती।
आँख मेरी वहाँ न पाई जम॥
जग-पसारा न लख सके सारा।
आँख हमने नहीं पसारा कम॥८॥

दिल के फफोले

गाय काँटों से छिदी है जा रही।
फूल से जाती सजाई है गधी॥
आँख कैसे तो नहीं होती हमें।
जो न होती आँख पर पट्टी बँधी॥९॥

रात कैसे कटे न आँखों में।
क्यों न चिन्ताभरी रहें आँखें॥
हो गया छेद जब कि छाती में।
क्यों न छत से लगी रहें आँखें॥१०॥

मतलबों का भूत सिर पर है चढ़ा।
दूसरों पर निज बला टालें न क्यों॥
जब गई हैं फूट आँखें भीतरी।
लोन राई आँख में डालें न क्यों॥११॥

क्यों दुखे बेतरह, बहुत दुख दे।
किस लिये बार बार है गड़ती॥
है रही फूट फूट जाये तो।
किस लिये आँख है फटी पड़ती॥१२॥

चाहिये क्या उसे छिपा देना।
हैं जिसे देख लोग झुक जाते॥
क्यों उसे आँख से गिरा देवें।
आँख पर हैं जिसे कि बिठलाते॥१३॥

सच्चे देवते

आँख उनकी राह में देवें बिछा।
प्यारवाली आँख से उनको लखें॥
आँख जिससे जाति की ऊँची हुई।
आँख पर क्या आँख में उनको रखें॥१४॥

लौ-लगों से न क्यों लगा लें लौ।
दिल उन्हें दिल से क्यों नहीं देते॥
पाँव की धूल लालसा से ले।
आँख में क्यों नहीं लगा लेते॥१५॥

अपने दुखड़े

आँख अंधी किस तरह होती न तब।
जब मुसीबत रंग दिखलाती रही॥
आँख पानी के बहे है बह गई।
आँख आये आँख ही जाती रही॥१६॥

क्यों निचुड़ता न आँख से लोहू।
ज़ब लहू खौल बेतरह पाया॥
आँख होती न क्यों लहू जैसी।
आँख में जब लहू उतर आया॥१७॥

जब कि काँटे राह में बोने चले।
बीज तो क्यों फूल के बो देखते॥
जब हमारी आँख टेढ़ी हो गई।
क्यों न टेढ़ी आँख से तो देखते॥१८॥

ठीकरी आँख पर गई रक्खी।
अंधपन आँख का नहीं जाता॥
देख कर जाति का लहू होते।
किस तरह आँख से लहू आता॥१९॥

जाति को जाति ही सतावे तो।
दूसरे भी न क्यों बनें दादू॥
क्यों न हो आँख आँखवालों को।
आँख पर आँख क्यों करे जादू॥२०॥

हम निचोड़ें कहाँ तलक उसको।
आँख में अब नहीं रहा आँसू॥
आँख पथरा न किस तरह जाती।
आँख से है घड़ों बहा आँसू॥२१॥

बेतरह हैं दबे दुखों से हम।
क्यों करें आह किस तरह काँखें॥
तन हुआ सूख सूख कर काँटा।
भूख से नाच हैं रही आँखें॥२२॥

दूर कायरपन नहीं जब हो सका।
तब भला कैसे न दिल धड़का करे॥
बाँह मेरी तो फड़कती ही नहीं।
है फड़कती आँख तो फड़का करे॥२३॥

दिल के छाले

देख कर दुखभरी दशा उनकी।
आँख किसकी भला न भर आई॥
अधखिले फूल जो कि खिल न सके।
अधखुली आँख जो न खुल पाई॥२४॥

तू न तेवर भी है बदल पाता।
क्या किसीने सता तुझे पाया॥
देख उतरा हुआ तेरा चेहरा।
आँख में है लहू उतर आया॥२५॥

जो उँजाला है अँधेरे में किये।
लाल अपना वह न खो बैठे कोई॥
काढ़ लीं जावें न आँखें और की।
आँख को अपनी न रो बैठे कोई॥२६॥

आनबान

बढ़ नहीं पाया कभी कोई कहीं।
बेतरह बेढंग लोगों को बढ़ा॥
हम नहीं सिर पर चढ़ा सकते उसे।
वह भले ही आँख अपनी ले चढ़ा॥२७॥

लुचपने पाजीपने से झूठ से।
हम डरेंगे वे भले ही मत डरें॥
आँख की देखी कहेंगे लाख में।
मारते हैं आँख तो मारा करें॥२८॥

कुढ़ उठा जी भला नहीं किसका।
जब दिखाई पड़ीं कढ़ी आँखें॥
कुछ हमें भी गया नशा सा चढ़।
देख उसकी चढ़ी चढ़ी आँखें॥२९॥

हितगुटके

वह बनेगी भला लड़ेती क्यों।
जो रही लाड़ प्यार में लड़ती॥
आँख जब थे निकालते योंहीं।
आँख कैसे न तब निकल पड़ती॥३०॥

है बड़ा ही निठुर निपट बेपीर।
बेबसों को सता गया जो फूल॥
जो उठा तक सके न अपनी आँख।
आँख उस पर निकालना है भूल॥३१॥

नाम के ही कुछ गुनाहों के लिये।
है गला घोंटा नहीं जाता कहीं ॥
जो कि टेढ़ी आँख से हो देखता।
आँख उसकी काढ़ ली जाती नहीं ॥३२॥

दूसरों पर जो निछावर हो गये।
सह सके पर के लिये जो लोग सब ॥
पाठ परहित का नहीं जो पढ़ सके।
वे भला उनसे मिलाते आँख कब ॥३३॥

वे किसी काम के नहीं होते।
तुन सकेंगे न वे तुनी रूई ॥
जो कि चाहेंगे जाँय सब कुछ बन।
पर निकालेंगे आँख की सूई ॥३४॥

नाच रँग की मिठास के आगे।
नींद मीठी न जब रही भाती ॥
जागना जब न लग सका कड़वा।
तब भला आँख क्यों न कड़वाती ॥३५॥

यह तभी होगा कि लगकर के गले।
हम दबायेंगे न समधी का गला ॥
प्यार की रग जब न हो ढीली पड़ी।
जब न होवे आँख का पानी ढला ॥३६॥

और को करते भलाई देखकर।
ऊब करके किस लिये साँसें भरें ॥
कर सकें, हम भी भला ही तो करें।
आँख भौं टेढ़ी करें तो क्यों करें ॥३७॥

मुँह पिटा मुँह की सदा खाते रहें।
मान से मुँह मोड़ मनमानी करें॥
हैं बिना मारे मरे वे लोग जो।
आँख मारें आँख के मारे मरें॥३८॥

फिर गईं आँखें अगर तो जाँय फिर।
आँख फेरे हम न बातों से फिरें॥
खोल कर आँखें न आँखें मूँद लें।
आँख पर चढ़ कर न आँखों से गिरें॥३९॥

बात बिगड़े बेतरह बिगड़ें नहीं।
क्यों रखें पत, कर किसी को राख हम॥
आँख होते किस लिये अन्धे बनें।
आँख निकले क्यों निकालें आँख हम॥४०॥

जो न होना चाहिये होवे न वह।
साखवाले ध्यान रक्खें साख का॥
आँखवाले पर न चलना चाहिये।
आँख का जादू व टोना आँख का॥४१॥

हैं खटकते क्यों किसीकी आँख में।
मूँदने को आँख क्यों बातें गढ़ें॥
फोड़ने को आँख फोड़ें आँख क्यों।
क्यों चढ़ा कर आँख आँखों पर चढ़ें॥४२॥

देख लें आँख क्यों किसीकी हम।
पड़ गये भीड़ क्यों कुढ़ें काँखें॥
क्यों खुला आँख कान को न रखें।
क्यों करें काम बन्द कर आँखें॥४३॥

किस लिये हम रखें न मनसूबे।
किस लिये बात बात में माँखें॥
क्यों छिपाता रहे हमें कोई।
क्यों छिपें और क्यों झपें आँखें॥४४॥

सुनहली सीख

बादलों की भाँति उठना चाहिये।
जल बरस कर हित किये जिसने बड़े॥
इस तरह से किस लिये कोई उठे।
आँख जैसा बैठ जाना जो पड़े॥४५॥

है जिसे कुछ भी समझ वह और की।
राह में काँटा कभी बोता नहीं॥
कर किसीसे बेसबब उपराचढ़ी।
आँख पर चढ़ना भला होता नहीं॥४६॥

हैं भले वे ही भलाई के लिये।
रात दिन जिनकी कमर होवे कसी॥
प्यार का जी में पड़ा डेरा रहे।
आँख में सूरत रहे हित की बसी॥४७॥

जो कि जी की आग से जलता रहा।
मिल सकी है कब उसे ठंढक कहीं॥
देख पाती जो भला नहिं और का।
आँख वह ठंढी कभी होती नहीं॥४८॥

जो कलेजा पसीज ही न सका।
तो किया रात रात भर रो क्या॥
मैल जो धुल सका नहीं मन का।
आँख आँसू से धो किया तो क्या॥४९॥

उलझनें डालता फिरे न कभी।
और की राह में कुआँ न खने॥
है बुरा, जान बूझ करके जो।
आँख की किरकिरी किसीकी बने॥५०॥

तिर सके जो न दुख-लहरियों में।
क्यों न उनमें तो फिर उतर देखें॥
हम किसीके फटे कलेजे को।
आँख क्यों फाड़ फाड़ कर देखें॥५१॥

तो दया है न नाम को हममें।
हैं हमें देख नेकियाँ रोतीं॥
चूर होते किसी बेचारे से।
चार आँखें अगर नहीं होतीं॥५२॥

जब कि भाते नहीं सगों को हो।
किस तरह दूसरों को तब भाते॥
जब कि तुम हो उतर गये जी से।
आँख से तो उतर न क्यों जाते॥५३॥

उन भली अनमोल रुचियों ओर जो।
बन सुचाल अँगूठियों के नग सकीं॥
जी लगायेंगे भला तब किस तरह।
जब नहीं आँखें हमारी लग सकीं॥५४॥

चाहता चित अगर तुमारा है।
चितवनों के तिलिस्म को तोड़ो॥
आँख से आँख का मिलाना, या।
आँख में आँख डालना छोड़ो॥५५॥

आँख जल जाय देख देख जिसे।
आँख का जल उसे बना लें क्यों॥
आँख का तिल है गर हमें प्यारा।
आँख का तेल तो निकालें क्यों॥६२॥

निराले नगीने

हैं बेगाने तो बेगाने ही मगर।
कम नहीं लाते सगे सगे पर बला॥
है हमारी आँख देखी बात यह।
आँख पर ही आँख का जादू चला॥६३॥

काम अपना निकालनेवाले।
काम अपना निकाल लेते हैं॥
आँख में धूल डालनेवाले।
आँख में धूल डाल देते हैं॥६४॥

जब किसीसे कभी बिगड़ जावें।
तो बुरे ढंग से न बदले लें॥
धूल दें आँख में भले ही हम।
लोन क्यों आँख में किसीको दें॥६५॥

लोग बेचैन क्यों न होवेंगे।
तंग बेचैनियाँ करेंगी जब॥
नींद जब रात रात भर न लगी।
क्यों उनींदी बनें न आँखें तब॥६६॥

है कहीं पर मान मिल जाता बहुत।
है मुसीबत का कहीं पर सामना॥
पोंछ डाला जो गया मुँह में लगे।
आँख में कालिख वही काजल बना॥६७॥

हैं कहाँ पर भले नहीं होते।
पर मिले आपसे कहीं न भले॥
आपसे आप ही जँचे हमको।
आ सका आप सा न आँख तले॥६८॥

नोक झोंक

जब कि दे सकते नहीं जी में जगह।
तब कहीं क्या जी लगाना चाहिये॥
सोच लो आँखें चुरा कर और की।
क्या तुम्हें आँखें चुराना चाहिये॥६९॥

प्यार में मोड़ मुँह मुरौअत से।
किस तरह लाज मुँह दिखा पाती॥
सामने हो सकीं न जब आँखें।
आँख तब क्यों चुरा न ली जाती॥७०॥

भाँपते क्यों न भाँपनेवाले।
किस लिये बात हो बनाते तुम॥
जब चलाई गई छिपी छूरी।
आँख कैसे न तब छिपाते तुम॥७१॥

फिर नहीं देखा, न सीधी हो सकी।
रंग रिस पर प्यार का पाया न पुत॥
तुम मचलते ही मचलते रह गये।
पर तुमारी आँख तो मचली बहुत॥७२॥

जब नहीं रस बात में ही रह गया।
प्यार का रस तब नहीं सकते पिला॥
जब कि जी ही मिल नहीं जी से सका।
तब सकोगे किस तरह आँखें मिला॥७३॥

जब नहीं मेलजोल है भाता।
किस लिए जोड़ते फिरे नाते ॥
जब कि है मैल जम गया जी में।
आँख कैसे भला मिला पाते ॥७४॥

वह लबालब भरा भले ही हो।
पर चलेगा न कुछ किसीका बस ॥
बस यही सोच लो कहें क्या हम।
आँख टेढ़ी किये रहा कब रस ॥७५॥

क्यों बनी बातें नहीं जातीं बिगड़।
ऐंठ अनबन बीज ही जब बो गई ॥
जो किसीका जी नहीं टेढ़ा हुआ।
आँख टेढ़ी किस तरह तो हो गई ॥७६॥

मुँह चिढ़ायेंगे या बनायेंगे।
फबतियाँ हँसते हँसते लेवेंगे ॥
क्या भला और आपसे होगा।
आँख में धूल झोंक देवेंगे ॥७७॥

प्यार का देखना है बलबूता।
हार करके रमायेंगे न धुईं ॥
हम न बेचारपन दिखायेंगे।
चार आँखें हुईं बला से हुईं ॥७८॥

है नहीं मुझमें अजायबपन भरा।
वह न यों बेकार हो जावे कहीं ॥
क्यों बहुत हो फाड़ करके देखते।
आँख है कोई फटा कपड़ा नहीं ॥७९॥

बस किसीका रहा न पासे पर।
मति किसीकी किसीने कब हर ली॥
लाल गोटी हुई हमारी तो।
आपने लाल आँख क्यों कर ली॥८०॥

काम आती नहीं सगों के जब।
और के काम किस तरह आती॥
तब मिले किस तरह किसीसे, जब।
आँख से आँख मिल नहीं पाती॥८१॥

चौकसी जिसकी बहुत ही की गई।
खोजते हैं अब नहीं मिलता वही॥
देखते ही देखते जी ले गये।
आँख का काजल चुराना है यही॥८२॥

किस लिये मुँह इस तरह कुम्हला गया।
किस मुसीबत की है परछाइँ पड़ी॥
पपड़ियाँ क्यों होठ पर पड़ने लगीं।
आँख पर है किस लिये झाइँ पड़ी॥८३॥

दिल हमारा हमें नहीं देते।
साथ ही बन रही बुरी गत है॥
क्यों बनोगे न बेमुरौअत तब।
आँख में जब नहीं मुरौअत है॥८४॥

जो कभी सामने न आ पाया।
हो सकेगा मिलाप उससे कब॥
जब हमें आँख से न देख सके।
आँख से आँख क्यों मिलाते तब॥८५॥

जब नहीं मेलजोल है भाता।
किस लिए जोड़ते फिरे नाते॥
जब कि है मैल जम गया जी में।
आँख कैसे भला मिला पाते॥७४॥

वह लबालब भरा भले ही हो।
पर चलेगा न कुछ किसीका बस॥
बस यही सोच लो कहें क्या हम।
आँख टेढ़ी किये रहा कब रस॥७५॥

क्यों बनी बातें नहीं जातीं बिगड़।
ऐंठ अनबन बीज ही जब बो गई॥
जो किसीका जी नहीं टेढ़ा हुआ।
आँख टेढ़ी किस तरह तो हो गई॥७६॥

मुँह चिढ़ायेंगे या बनायेंगे।
फबतियाँ हँसते हँसते लेवेंगे॥
क्या भला और आपसे होगा।
आँख में धूल झोंक देवेंगे॥७७॥

प्यार का देखना है बलबूता।
हार करके रमायेंगे न धुईं॥
हम न बेचारपन दिखायेंगे।
चार आँखें हुईं बला से हुईं॥७८॥

है नहीं मुझमें अजायबपन भरा।
वह न यों बेकार हो जावे कहीं॥
क्यों बहुत हो फाड़ करके देखते।
आँख है कोई फटा कपड़ा नहीं॥७९॥

बस किसीका रहा न पासे पर।
मति किसीकी किसीने कब हर ली॥
लाल गोटी हुई हमारी तो।
आपने लाल आँख क्यों कर ली॥८०॥

काम आती नहीं सगों के जब।
और के काम किस तरह आती॥
तब मिले किस तरह किसीसे, जब।
आँख से आँख मिल नहीं पाती॥८१॥

चौकसी जिसकी बहुत ही की गई।
खोजते हैं अब नहीं मिलता वही॥
देखते ही देखते जी ले गये।
आँख का काजल चुराना है यही॥८२॥

किस लिये मुँह इस तरह कुम्हला गया।
किस मुसीबत की है परछाइँ पड़ी॥
पपड़ियाँ क्यों होठ पर पड़ने लगीं।
आँख पर है किस लिये झाइँ पड़ी॥८३॥

दिल हमारा हमें नहीं देते।
साथ ही बन रही बुरी गत है॥
क्यों बनोगे न बेमुरौअत तब।
आँख में जब नहीं मुरौअत है॥८४॥

जो कभी सामने न आ पाया।
हो सकेगा मिलाप उससे कब॥
जब हमें आँख से न देख सके।
आँख से आँख क्यों मिलाते तब॥८५॥

जब कि टूटा बहुत बड़ा नाता।
तब मुरौअत का तोड़ना कैसा ॥
जब किसीसे किसीने मुँह मोड़ा।
तब भला आँख मोड़ना कैसा ॥८६॥

आँख ने धूल आँख में झोंकी।
कर गई आँख आँख साथ ठगी ॥
क्यों नहीं आँख खुल सकी खोले।
क्यों लगे आँख जब कि आँख लगी ॥८७॥

किस तरह उसको गिरावें आँख से।
आँख पर जिसको कि हमने रख लिया ॥
किस तरह उससे बचावें आँख हम।
आँख में जिसने हमारी घर किया ॥८८॥

आँख अपनी क्यों चुरा है वह रहा।
आँख जिसके रंग में ही है रँगी ॥
क्यों नहीं आँखें उठा वह देखता।
आँख जिसकी ओर मेरी है लगी ॥८६॥

क्यों उसीको खोज हैं आँखें रहीं।
आँख में ही है किया जिसने कि घर ॥
देखने को आँख प्यासी ही रही।
आँख भर आई न देखा आँख भर ॥६०॥

वह न फूटी आँख से है देखता।
ऊबती आँखें बिगड़ जायें न क्यों ॥
किस लिये हम आँख की चोटें सहें।
आँख देखें आँख दिखलायें न क्यों ॥६१॥

आँख से ही जब निकल चिनगारियाँ।
आँख को हैं बेतरह देतीं जला॥
तो कहायें आँखवाले किस लिये।
आँख होने से न होना है भला॥९२॥

है अगर डूब डूब जाती तो।
किस लिये आँख डबडबा आवे॥
क्यों चढ़ी आँख जब हुई नीची।
क्यों उठे आँख बैठ जो जावे॥९३॥

आँख क्यों ऊँची नहीं हम रख सके।
आँख होते आँख कैसे खो गई॥
आँख से उतरे उतर चेहरा गया।
देख नीचा आँख नीची हो गई॥९४॥

आँख पर जिसको बिठाते हम रहे।
आँख से कैसे गिरा उसको दिया॥
आँख दिखला कर नचायें क्यों उसे।
जो हमारी आँख में नाचा किया॥९५॥

जो कि अपनी ही चुराता आँख है।
चोर बनना क्यों उसे लगता बुरा॥
आँख का सबसे बड़ा वह चोर है।
जो चुराता आँख है आँखें चुरा॥९६॥

ऐब धब्बे बुरे गँवा पानी।
बेतुकी बात धो नहीं सकती॥
सामने आँख वह करे कैसे।
सामने आँख हो नहीं सकती॥९७॥

आँख मेरी क्यों नहीं ऊँची रहे।
आ सकेगा आँख में मेरी न जल॥
लाल आँखें हो गईं तो हो गईं।
हैं बदलते आँख तो लेवें बदल॥९८॥

वे बड़े आनबानवाले हैं।
अनबनों का हमें बड़ा डर है॥
देखते बार बार हैं उनको।
आँख होती नहीं बराबर है॥९९॥

आँख अपनी छिपा छिपा करके।
फेर मुँह आँख फेरते देखा॥
बात ही बात में तिनक करके।
आँख उनको तरेरते देखा॥१००॥

आपकी आँखें अगर हैं हँस रहीं।
तो हँसें, बातें बता दें, जो हुईं॥
चार आँखें हो अगर पाईं नहीं।
क्यों नहीं दो चार आँखें तो हुईं॥१०१॥

जब गई आँख पटपटा देखे।
तब पटी बात कैसे पट पाती॥
लट गये जब कि चाल उलटी चल।
आँख कैसे न तब उलट जाती॥१०२॥

जो हमारी आँख में फिरते रहे।
वे रहे वैसे न आँखों के फिरे॥
जो गिराये गिर न आँखों से सके।
गिर गये वे आँख का पानी गिरे॥१०३॥

आँख के सामने अँधेरा है।
क्यों न अंधेर कर चलें चालें ॥
आँख में है घुला लिया काजल।
आँख में धूल क्यों न वे डालें ॥१०४॥

हैं न कीने प्यार का घर देखते ॥
आँख की फूली फले कैसे नहीं।
जब कि आँखें अब न वह उनकी रहीं।
क्यों न तब आँखें दवा कर देखते ॥१०५॥

सब सगे हैं उन्हें सतायें क्यों।
आँख गड़ आँख में गड़े कैसे ॥
चाहिये लाड़ प्यार अपनोंसे।
आँख लड़ आँख से लड़े कैसे ॥१०६॥

हूँ न काँटा कि आँख में खटकूँ।
मैं न पथ में बबूल बोता हूँ ॥
हूँ किसी आँख में न चुभता मैं।
मैं नहीं आँख-फोड़ तोता हूँ ॥१०७॥

लाल मुँह है लाल अंगारा हुआ।
दूसरों पर बात क्यों हैं फेंकते ॥
कढ़ रही हैं आँख से चिनगारियाँ।
आँख सेकें, आँख जो हैं सेंकते ॥१०८॥

रस के छींटें

भाग में मिलना लिखा था ही नहीं।
तुम न आये साँसतें इतनी हुईं ॥
जी हमारा था बहुत दिन से टँगा।
आज आँखें भी हमारी टँग गईं ॥१०९॥

कुछ मरम रस का न जाना, ठग गईं।
जो न देखे रसभरी चितवन ठगीं॥
है निचुड़ता प्यार जिसकी आँख से।
जो न उसकी आँख से आँखें लगीं॥११०॥

प्यार जिस मुख पर उमड़ता ही रहा।
नेकियाँ जिस पर छलकती ही रहीं॥
रह न आलापन सका, उसका समा।
आँख में जो है समा पाता नहीं॥१११॥

भौं चढ़ा करके लहू जिसने किये।
क्यों लहू से हाथ वह अपने भरे॥
सीखता जादू फिरे तब किस लिये।
जब किसीकी आँख ही जादू करे॥११२॥

चाह इतनी ही न है! मतलब सधे।
हो न कुछ जादू चलाने में कसर॥
क्या हुआ जो बात में जादू नहीं।
हो किसीकी आँख में जादू अगर॥११३॥

किस लिये वह आग है बरसा रहा।
रस सभी जिसका कि है बाँटा हुआ॥
सब दिनों जो आँख में ही था बसा।
आज वह क्यों आँख का काँटा हुआ॥११४॥

किस लिये होता कलेजा तर नहीं।
क्यों जलन भी है बनी अब भी वही॥
मेंह दुख का नित बरसता ही रहा।
आँसुओं से आँख भींगी ही रही॥११५॥

विष उगलती है मदों की खान है।
चोचलें भी हैं भरे उनमें निरे॥
क्या अजब मर मर जिये माता रहे।
आँख का मारा अगर मारा फिरे॥११६॥

जोत पायेंगे बहुत प्यारी कहाँ।
वे टटोलेंगे भला किस भाँति दिल॥
नाम औ रँग में भले ही एक हों।
आँख के तिल से नहीं हैं और तिल॥११७॥

है समा आसमान सब जाता।
है सका सब कमाल उसमें मिल॥
क्या तिलिस्मात हैं न दिखलाते।
आँख के ए तिलिस्मवाले तिल॥११८॥

बावलापन साथ ही लाना बला।
जो न तेरे चुलबुलापन से कढ़ा॥
आँख! तो अनमोल तुझको क्यों कहें।
मोल तुझसे है ममोलों का बढ़ा॥११९॥

आँख जिससे आँख रह जाती नहीं।
आँख से मेरी न वह आँसू बहे॥
आँख से वे दूर हो पावें नहीं।
आँख में मेरी समाये जो रहे॥१२०॥

आँख है आँख को लुभा लेती।
आँख रस आँख में बरसती है॥
देखने को बड़ी बड़ी आँखें।
आँख किसकी नहीं तरसती है॥१२१॥

और की आँख आँख में न गड़े।
चाहिये आँख आँख को न ठगे॥
आँख लड़ जाय आँख से न किसी।
आँख का बान आँख को न लगे॥ १२२ ॥

देख भोलापन किसीकी आँख का।
आँख कोई बेतरह भूली रही॥
देख टेसू आँख में फूला किसी।
आँख में सरसों किसी फूली रही॥१२३॥

आँख है प्यार से भरी कोई।
है किसी आँख से न चलता बस॥
है कोई आँख बिष उगल देती।
है किसी आँख से बरसता रस ॥ १२४ ॥

चाल चलना पसंद है तो क्यों।
आँख से आँख की न चल जाती॥
जब पड़ी बान है मचलने की।
आँख कैसे न तो मचल जाती॥१२५॥

आँख का फड़कना

प्यार करते राह में काँटे पड़े।
वार हम पर हो रही है बेधड़क॥
रंज औरोंके फड़कने का नहीं।
आँख बाईं तू उठी कैसे फड़क॥ १२६ ॥

कुछ भरोसा करो किसीका मत।
भौंह किसकी विपत्ति में न तनी॥
है सगा कौन, कौन है अपना।
आँख ही जब फड़क उठी अपनी॥१२७॥

सब सगे एकसे नहीं होते ।
हैं न तो सब सनेह में ढीले ॥
आँख दाईं न दुख पड़े फड़की ।
आँख बाईं फड़क भले ही ले ॥ १२८ ॥

चेतावनी

क्यों समय को देख कर चलते नहीं ।
काम की है राह कम चौड़ी नहीं ॥
आँख तो हम बन्द कर लें किस लिये ।
आँख दौड़ाये अगर दौड़ी नहीं ॥१२९॥

आँख में है निचुड़ रहा नीबू ।
आँख है फूटती, नहीं बोले ॥
आँख का क्यों नहीं उठा परदा ।
खुल सकी आँख क्यों नहीं खोले ॥ १३० ॥

पास जिनका चाहिये करना हमें ।
पास उनके क्यों खड़ी है दुख घड़ी ॥
आँख मेरी ओर है जिनकी लगी ।
आँख उनपर क्यों नहीं अब तक पड़ी ॥१३१॥

जाति को देख कर दुखी, कोई ।
आँख कर बन्द किस तरह पाता ॥
आँख चरने न जो गई होती ।
दुख तले आँख के न क्यों आता ॥ १३२ ॥

मौत का ही सामना है सामने ।
भूलते हैं पंथ बतलाया हुआ ॥
हैं अँधेरी रात में हम घूमते ।
है अँधेरा आँख पर छाया हुआ ॥१३३॥

प्यार के पुतले

सामने आँख के पला जो है।
दूसरे हैं पले नहीं वैसे॥
जो कहाता है आँख का तारा।
आँख में वह बसे नहीं कैसे॥ १३४॥

क्यों नचाता हमें न उँगली पर।
उँगलियों को पकड़ चला है वह॥
चाहिये सासना उसे करना।
आँख के सामने पला है वह॥१३५॥

लाड़वाली है कहाती लाड़िली।
लाल वे हैं लाल कहते हैं जिसे॥
आँख में है आँख का पुतली बसी।
आँख के तारे न प्यारे हैं किसे॥ १३६॥

मुँह सपूतों का अछूतापन भरा।
चाह से जिसको भलाई धो गई॥
हो गया ठंढा कलेजा देख कर।
आँख में ठंढक निराली हो गई॥१३७॥

तरह तरह की बातें

साथ हो हम एक घर में हैं पलें।
हैं हमारा पूछते क्यों आप घर॥
जायगा चरबा उतरा क्यों नहीं।
छा गई है आँख में चरबी अगर॥ १३८॥

दाँत टूटे पर न रँगीनी गई।
बाल को रँगते रँगाते ही रहे॥
लाल करते ही रहे हम होंठ को।
आँख में काजल लगाते ही रहे॥१३९॥

मत बेचारी बेबसी से तुम भिड़ो।
है तुमारी आस ही उसको बड़ी॥
गिड़गिड़ाती है पकड़ कर पाँव जो।
क्यों तुमारी आँख उस पर ही गड़ी॥१४०॥

है चूक बहुत ही बड़ी, है न चालाकी।
बन समझदार नासमझी का दम भरना॥
बेटे के आगे बाप को बुरा कहना।
है बदी आँख की भौं के आगे करना॥१४१॥

किसने अपने बच्चों का लहू निचोड़ा।
किसने बेटी बहनों का लहू बहाया॥
कहता हूँ देखे अंधाधुंध तुमारा।
सामने आँख के अँधियाला है छाया॥१४२॥

जब बिगड़े भाग बिगड़ने के दिन आवे।
तब कान खोल कैसे निज ऐब सुनेंगे॥
पी ली है हमने ऐसी भंग निराली।
उलटे आँखें नीली पीली कर लेंगे॥१४३॥

जिनमें बुराइयाँ घर करती पलती हैं।
जो बन जाती हैं निठुरपने का प्याला॥
तो समझ नहीं राई भर भी है हममें।
जो उन आँखों में राई लोन न डाला॥१४४॥

अन्योक्ति

आँख में गड़ कर किसीकी तू न गड़।
दूसरों पर टूट तू पड़ती न रह॥
लाड़ तेरा है अगर होता बहुत।
ऐ लड़ाकी आँख तो लड़ती न रह॥१४५॥

ले सता तू सता सके जितना।
औरको पेर पीस कर जी ले॥
दिन बितेंगे बिसूरते रोते।
आज तू आँख हँस भले ही ले॥१४६॥

पीसनेवाले गये पिस आप ही।
कर सितम कोई नहीं फूला फला॥
मत कटीली बन कलेजा काट तू।
ऐ चुटीली आँख मत चोटें चला॥१४७॥

जो कि सजधज में लगा सब दिन रहा।
बीरता के रंग में वह कब रँगा॥
सूरमापन है नहीं सकती दिखा।
आँख सुरमा तू भले ही ले लेगा॥१४८॥

धूल में तेरा लड़ाकापन मिले।
जब लड़ी तब जाति ही से तू लड़ी॥
देख तब तेरी कड़ाई को लिया।
आँख अपनों पर कड़ी जब तू पड़ी॥१४९॥

जब निकलने लग गईं चिनगारियाँ।
तब ठहरती किस तरह तुझमें तरी॥
तब रसीलापन कहाँ तेरा रहा।
जब रसीली आँख रिस से तू भरी॥१५०॥

टूट पड़ लूटपाट करती है।
चित्त को छीन चैन है खोती॥
देख दंगा दबंगपन अपना।
आँख तू दंग क्यों नहीं होती॥१५१॥

हो सकेगी वह कभी कैसे भली।
हम सहम जिससे निराले दुख सहें॥
डाल देती है भुलावों में अगर।
तब भला क्यों आँख को भोली कहें॥१५२॥

राह सीधी चल नहीं क्या सध सका।
है सिधाई ऐंठ से आला कहीं॥
क्यों सुहाता है न सीधापन तुझे।
आँख सीधे ताकती तू क्यों नहीं॥१५३॥

डाल कर औरको अँधेरे में।
औ बना कर सुफेद को काला॥
जब रही छीनती उँजाला तू।
आँख तुझमें तभी पड़ा जाला॥१५४॥

जो उँजेले से हिला सब दिन रहा।
क्यों न ऊबेगा अँधेरे में वही॥
आँख तू तो जानती ही है इसे।
हैं न जाला औ उँजाला एक ही॥१५५॥

जब कभी एक हो गई तर तो।
दूसरी भी तुरत हुई तर है॥
कब दुखे एक दूसरी न दुखी।
आँख दोनों सदा बराबर है॥१५६॥

पलक

देवदेव

जब कि प्यारे गड़े तुम्हीं जी में।
तब भला दूसरा गड़े कैसे॥
जब तुम्हीं आँख में अड़े आ कर।
तब बिचारी पलक पड़े कैसे॥१॥

सुनहली सीख

काँपती मौत भी रही जिनसे।
जो रहे काल मारतों के भी॥
लोग तब डींग मारते क्या हैं।
जब पलक मारते मरे वे भी॥ २॥

कब भला है पसीजता पत्थर।
क्यों न झंडे मिलाप के गाड़ें॥
क्यों बिठालें उन्हें न आँखों पर।
क्यों पलक से, न पाँव हम झाड़ें॥ ३॥

देसहित जो ललक ललक करते।
जान जो जाति के लिये देते॥
तो पलक पाँवड़े न क्यों बिछते।
क्यों पलक पर न लोग ले लेते॥ ४॥

निराले नगीने

जो फिरा दें न फेरनेवाले।
तो फिरे तो हवा फिरे कैसे॥
जब गिराना न आँख ही चाहे।
तब गिरे तो पलक गिरे कैसे॥ ५॥

किस तरह से रँग बदलता है समय।
ठीक इसकी है दिखा देती झलक॥
हैं गिरे उठते व गिरते हैं उठे।
है यही उठ गिरा बता देती पलक॥ ६॥

जब सगों पर रही बिपत लाती।
तब भला क्यों निहाल हो फिरती॥
जब गिराती रही बरौनी को।
तब पलक आप भी न क्यों गिरती॥ ७॥

कौन कहता है कि हित के संगती।
छोड़ हित अनहित सकेंगे ही न कर॥
कम नहीं उसमें बरौनी गिर गड़ी।
पाहरू सी है पलक जिस आँख पर॥ ८॥

मानवाले मान जिससे पा सकें।
इसलिये हैं फूल भावों के खिले॥
राह में आँखें बिछाई कब गईं।
कब पलक के पाँवड़े पड़ते मिले॥ ९॥

नोक झोंक

है न बसता प्यार जिसमें आँख वह।
है छिपाये से भला छिपती कहीं॥
किस तरह से आप तब उठ कर मिलें।
जब पलक ही आपकी उठती नहीं॥१०॥

एक पल है पहाड़ हो जाता।
देखने के लिये न क्यों ललकें॥
हम पलक-ओट सह नहीं सकते।
आइये हैं बिछी हुई पलकें॥११॥

रंग होता अगर नहीं बदला।
प्यार का रङ्ग तो दिखाता क्यों॥
जो पलक भी नहीं उठाता था।
वह पलक पाँवड़े बिछाता क्यों॥१२॥

क्यों उमगता आपका आना सुने।
किस लिये घी के दिये तो बालता॥
जो पलक पर चाहता रखना नहीं।
तो पलक के पाँवड़े क्यों डालता॥१३॥

आँसू

अपने दुखड़े

कम हुआ मान किस कमाई से।
यम न यम के लिये बना क्यों यम॥
क्यों नहीं चार बाँह आठ बनी।
रो चुके आठ आठ आँसू हम॥ १॥

कर सका दुख दूर दुख में कौन गिर।
दिल छिला किसका हमारा दिल छिले॥
पोंछनेवाला न आँसू का मिला।
कम न आँसू डालनेवाले मिले॥ २॥

वह भला कैसे बलायें ले सके।
बात से जो है बलायें टालता॥
आँसुओं से वह नहा कैसे सके।
जो नहीं दो बूँद आँसू ढालता॥ ३॥

चूकते ही हम चले जाते नहीं।
आप हमको डाँट बतलाते न जो॥
भेद खुल जाते हमारे किस तरह।
आँख से आँसू टपक पाते न जो॥ ४॥

मत बढ़ो हितबीज जिनमें हैं पड़े।
खेत में उन करतबों के ही रमो॥
अब कलेजा थामते बनता नहीं।
ऐ हमारे आँसुओ तुम भी थमो॥ ५॥

हम कहें किस तरह कि खलती है।
जो हुई पेटहित पलीद ठगी॥
हिचकियाँ लग गईं अगर न हमें।
आँसुओं की अगर झड़ी न लगी॥ ६॥

हितगुटके

बात सुन कर ज्ञान या बैराग की।
आँख भर भर कर बहुत ही रो लिया॥
मैल कुछ भी धुल नहीं जी का सका।
आँसुओं से मुँह भले ही धो लिया॥ ७॥

तो कहें कैसे कि पकते केस से।
सीख कुछ बैराग की हम पा सके॥
जो पके फल को टपकता देख कर।
आँख से आँसू नहीं टपका सके॥ ८॥

चल सका कुछ बस न आँसू के चले।
फेरते क्यों, वे नहीं फेरे फिरे॥
गिर गये आँसू गिरा करके हमें।
क्यों न गिरते आँख का पानी गिरे॥ ९॥

यह सरग से आन धरती पर बही।
आँख में वह कढ़ कलेजे से बहा॥
चाहते गंगा नहाना हैं अगर।
क्यों न लें तो प्रेम-आँसू से नहा॥१०॥

आँख के आँसू अगर हैं चल पड़े।
तो हमें उनको फिराना चाहिये॥
आँख का पानी गिरे गिर जायँगे।
क्या हमें आँसू गिराना चाहिये॥११॥

आन बान

आन जाते देख आँसू पी गये।
हम न ओछापन दिखा ओछे हुए॥
पोंछनेवाला न आँसू का मिला।
पुँछ गया आँसू बिना पोंछे हुए॥१२॥

निराले नगीने

आप ही सोचें बिना ही आब के।
रह सकेगी आबरू कैसे कहीं॥
आँख का रहता न पत पानी बना।
आँख में आँसू अगर आता नहीं॥१३॥

एकके जी की कसर जाती नहीं।
प्यार का दम दूसरे भरते रहे॥
धूल तो है धूल में देती मिला।
तरबतर आँसू उसे करते रहे॥१४॥

जब किसीका जी कलपता है न तो।
रो उठे रोते कभी बनता नहीं॥
बँध सकेगी तब भला कैसे झड़ी।
आँसुओं का तार जब बँधता नहीं॥१५॥

कौंध बिजली की तुरत थमते मिली।
क्या अचानक मेह है थमता कहीं॥
रुक भले ही एक-ब-एक जावे हँसी।
एक-ब-एक आँसू कभी रुकता नहीं॥१६॥

नोक झोंक

तुम पसीजे भी पसीजे हो नहीं।
कब न निकले औ न कब आँसू बहे॥
कब न आये आँख में आँसू उमड़।
कब भरे आँसू न आँखों में रहे॥१७॥

किस तरह तो दूर हो पाती जलन।
आँख में आता अगर आँसू नहीं॥
मुँह गया है सूख तन है सूखता।
सूख पाता है मगर आँसू नहीं॥१८॥

छूट जायेंगे बिपद से क्यों न हम।
आपकी होगी अगर थोड़ी दया॥
आपने जो पूछ दुख मेरे लिये।
कुछ भले ही हो न पुँछ आँसू गया॥१९॥

अन्योक्ति

किस तरह ठंढक कलेजे को मिले।
जब रहे तुम आप गरमी पर अड़े॥
जब सका जी का नहीं काँटा निकल।
किस लिये आँसू निकल तब तुम पड़े॥२०॥

मान जाओ तुम बुरा परवा नहीं।
पर नहीं है मानता जी बे कहे॥
जब किसी की आबरू पर आ बनी।
किस लिये आँसू भला तब तुम बहे॥२१॥

जब पिघलने की जगह पिघले नहीं।
फिर पिघलते किस लिये तब वे रहे॥
जब नहीं बेदरदियों पर बह सके।
तब अगर आँसू बहे तो क्या बहे॥२२॥

दूसरों का क्यों भरम खोता रहे।
क्यों किसीको भी मकर करके छले।
जो ढले रंगत अछूती में नहीं।
तो अगर आँसू ढले तो क्या ढले॥२३॥

जो सनद अनमोलपन की पा चुके।
आँख के जो पाक परदों से छने॥
है बुरा जो वह अमल आँसू ढलक।
जाय पड़ कीचड़ में काजल में सने॥२४॥

आँसुओं की बूँद ही तो वे रहीं।
बात है बनती बिगड़ती चाल पर॥
नोक से कोई बरौनी के छिदी।
गिर गई कोई गुलाबी गाल पर॥२५॥

दुख पड़े आँसू जिधर से हो कढ़े।
थे मुसीबत के वहीं लेटे पड़े॥
आँख से निकले चिमट काजल गया।
नाक से निकले लिपट नेटे पड़े॥२६॥

चाहिये जिनको परसना प्यार से।
वे नहीं उनको परसते जो रहे॥
जो तरसते को नहीं तर कर सके।
किस लिये आँसू बरसते तो रहे॥२७॥

जो रहे हैं ऊब उनको ऊब से।
जो बचाने को नहीं है ऊबती॥
डूबते हैं जो, गये वे डूब तो।
आँसुओं में आँख क्या है डूबती॥२८॥

मिल किसीको भी न दुख पर दुख सके।
जाय कोई गिर नहीं ऊँचे चढ़े॥
तब गढ़े में गाल के गिरते न क्यों।
जब कढ़े-आँसू बहुत आगे बढ़े॥२९॥

आँख जैसा सीप में होता नहीं।
रस अछूता, लोच, सुन्दरता बड़ी॥
भेद है, बेमोल, औ बहुमोल में।
है न आँसू की लड़ी मोती लड़ी॥३०॥

दीठ और निगाह

देवदेव

क्यों करे दौड़धूप वाँ कोई।
मन जहाँ पर न दौड़ने पावे॥
जिस जगह है न दौड़ सकती वाँ।
दौड़ती क्यों निगाह दौड़ाये॥ १॥

आप जो फल भले भले देते।
किस लिये फल बुरे बुरे चखते॥
तो बचाते निगाह क्यों अपनी।
आप हमपर निगाह जो रखते॥ २॥

काम गहरी निगाह से लेते।
सब कसर एक साथ खो जाती॥
क्यों भला फैलती निगाह नहीं।
आपकी जो निगाह हो जाती॥ ३॥

सुख-घड़ी है घड़ी घड़ी टलती।
दुख-घड़ी पास कब रही न खड़ी॥
देखते ही सदा निगाह रहे।
पर कहाँ आपकी निगाह पड़ी॥ ४॥

दिल के फफोले

काम कुछ झाड़ फूँक से न चला।
लोन राई उतार ब्योंत थकी॥
हम उतारे कई रहे करते।
पर उतारे उतर न दीठ सकी॥ ५॥

किस तरह देख, देख दुख लेवे।
देख कर भी न देख पाती है॥
दीठ हमने गड़ा गड़ा देखा।
दीठ तो चूक चूक जाती है॥ ६॥

नोक झोंक

किस लिये हैं गड़ा रहे उसको।
क्यों गड़े जब कि है न गड़ पाती॥
लाख कोई रहे लड़ाता, पर।
बे-लड़े क्यों निगाह लड़ पाती॥ ७॥

है जहाँ प्यार रार भी है वाँ।
जो कि है मोहती वही गड़ता॥
कब जुड़ी दीठ साथ दीठ नहीं।
दीठ से दीठ कब नहीं लड़ती॥ ८॥

किस तरह ठीक कर सके कोई।
कर ठगी आज ठग गई कैसे॥
दीठ हम तो रहे बचाते ही।
दीठ को दीठ लग गई कैसे॥ ९॥

दीठ का ही जिसे सहारा है।
वह किसी दीठ से कभी न गिरे॥
फेरिये आप दीठ मत अपनी।
उठ सकेगी न दीठ दीठ फिरे॥ १०॥

दीठ का दीठ साथ नाता है।
तुल गई दीठ दीठ तुल पाये॥
बँध गई दीठ दीठ के बँधते।
खुल गई दीठ दीठ खुल पाये॥११॥

हैं बड़े और वे कड़े भी हैं।
क्यों किसी आँख से कभी कढ़ते॥
जँच गये जब निगाह में मेरी।
क्यों नहीं तब निगाह पर चढ़ते॥ १२॥

मान कोई बुरा भले ही ले।
हैं बुरी सूरतें नहीं भाती॥
क्यों छिपायें न दीठ हम अपनी।
क्या करें दीठ दी नहीं जाती॥१३॥

तेवर

नोक झोंक

कर पुआलों का बनिज सन बीज बो।
हाथ रेशम के लगे लच्छे नहीं॥
क्यों बुरे तेवर किसीके हैं बुरे।
आपके तेवर अगर अच्छे नहीं॥ १॥

तो न टेढ़े के लिये टेढ़े बनें।
बान बनती हो अगर बातें गढ़े॥
काम जो तेवर बिना बदले चले।
तो चढ़ा तेवर न लें तेवर चढ़े॥२॥

भौंह टेढ़ी देख टेढ़ी भौंह हो।
आँख मेरी आँख से उनकी लड़े॥
त्योरियाँ तो क्यों बदल हम भी न लें।
आज तेवर पर अगर हैं बल पड़े॥ ३॥

ताकना

सच्चे देवते

है भलाई ही जिसे लगती भली।
दूसरों ही के लिये जो सब सहे॥
हम भले ही ताक में उसकी रहें।
वह किसीकी ताक में कैसे रहे॥ १ ॥

हित गुटके

है हमारा तपाक वैसा ही।
क्या हुआ दाँत है अगर टूटा॥
ताक में बैठ राह तकते हैं।
ताकना झाँकना नहीं छूटा॥ २ ॥

मेल जो मेलजोल कर न रखें।
तो लहू भी न लोभ से गारें॥
तीर तन का न जो निकाल सकें।
तो न हम तीर ताक कर मारें॥ ३ ॥

नोक झोंक

जो बुरा आपको नहीं कहता।
आप क्यों हैं उसे बुरा कहते॥
ताक में आपकी रहे कब हम।
आप क्यों हैं हमें तके रहते॥ ४॥

दाल गल सकती नहीं तो मत गले।
पर किसीका क्यों दबा देवें गला॥
ताक पर रख कर सभी भलमंसियाँ।
कब किसीको ताक रखना है भला॥ ५ ॥

रोना

दिल के फफोले

लुट सदा के लिये गया सरबस।
आज बेवा सोहाग है खोती॥
फूट जोड़ा गया जनम भर का।
क्यों न वह फूट फूट कर रोती॥ १॥

गोद सूनी हुई भरी पूरी।
है धरोहर बहुत बड़ा खोती॥
छिन गया लाल आँख का तारा।
'मा' न कैसे बिलख बिलख रोती॥ २॥

कब मरा मिल सका, बहुत रो कर।
क्यों न जन आँख सा रतन खोवे॥
साल दो साल क्या कलप कितने।
क्यों न कोई कलप कलप रोवे॥ ३॥

जान को बेजान होते देख कर।
आँसुओं से क्यों न मुँह धोने लगें॥
गाल में है लाल जाता काल के।
लोग चिल्ला कर न क्यों रोने लगें॥ ४॥

जो रहा लोक-प्यार का पुतला।
बेलि जिसने मिलाप की बोई॥
बेतरह आज है सिसिकता वह।
क्यों न रोवे सिसिक सिसिक कोई॥ ५॥

जी दुखे पर आँख से आँसू बहा।
क्यों न दुख खोवें अगर दुख खो सकें॥
धूल में मिल, धौल खाकर मौत की।
क्यों न रो धो लें, अगर रो धो सकें॥ ६॥

कुछ न छोड़ा मौत ने सब ले लिया।
एक दुख बेढंग देने के सिवा॥
क्यों न रोवें क्यों न छाती पीट लें।
क्या रहा रो पीट लेने के सिवा॥ ७॥

चल बसा जिसको कि चल बसना रहा।
बस न चल पाया बिलपते ही रहे॥
नारियाँ घर में बिलखती ही रहीं।
सब खड़े रोते कलपते ही रहे॥ ८॥

सिर न कूटें और न छाती पीट लें।
बावले दुख से न हों धीरज धरें॥
कम दुखद है एकका मरना नहीं।
दूसरे क्यों बे-तरह रो रो मरें॥ ९॥

दिल के छाले

है निगलती तमाम लोगों को।
है बला पर बला सदा लाती॥
हैं बुरी मौत लाखहा मरते।
मौत को मौत क्यों नहीं आती॥ १०॥

कौन है मौत हाथ से छूटा।
हो महाराज या कि हो मक्खी॥
है बुरी मौत तो बुरी होती।
मिल सके मौत तो मिले अच्छी॥११॥

वह जिया तो क्या जिया, जिसके लिये।
मर गये पर जाति सब रोई नहीं॥
जो मरे तो लोक-हित करता मरे।
मौत कुत्ते की मरे कोई नहीं॥१२॥

जन्म जब हमने लिया था उस समय।
हँस रहे थे लोग हम थे रो रहे॥
इस जगत में इस तरह जी कर मरे।
हम हँसें हर आँख से आँसू बहे॥१३॥

दुख जिन्हें है बहुत दुखी करता।
मौत की नींद क्यों न वे सोवें॥
नर अमर क्यों बिना मरे होगा।
लोग क्यों ढाढ़ मार कर रोवें॥१४॥

चाह होवे, और हों फूले फले।
चाहिये यह, मौत आ जावे तभी॥
उस समय कोई मरा तो क्या मरा।
देखता है जब दबा आखें सभी॥१५॥

जी की कचट

पीस देगा पर न पछता सकेगा।
संग का यह ढंग है माना हुआ॥
दर्द ही जिसको नहीं, उसके लिये।
औरका रोना सदा गाना हुआ॥१६॥

लाख समझाया मगर समझा नहीं।
हाथ का हीरा हमें खोना पड़ा॥
अनसुनी ही की गई सारी सुनी।
आज जङ्गल में हमें रोना पड़ा॥१७॥

क्या अजब गिर पड़ें कुएँ में सब।
या उन्हें ठोकरें पड़ें खानी ॥
तब भला किस लिये न हो धोखा।
जब कि भेड़ी सिरे की हो कानी ॥१८॥

हो भरोसा कुछ न कुछ सबको सदा।
क्यों न कोई खेत के दाने बिने ॥
बे-सहारे हार कर कोई न हो।
सब छिने लकड़ी न अन्धे की छिने ॥१९॥

मरें कमाई करनेवाले।
संड मुसंडे माल उड़ावें ॥
मुँदी आँख दोनों ही की है।
अंधी पीसे कुत्ते खावें ॥२०॥

नाक

देवदेव

चाहतें बेतरह गईं कुचली।
साँसतें भी हुईं नहीं कुछ कम ॥
आप लें, या कभी न दम लेवें।
नाक में हो गया हमारा दम ॥१॥

हितगुटके

बात पूरी करें पुरे कैसे।
जब दिखाई पड़े सदा पोले ॥
बोल कैसे न हो कु-बोल, अगर।
बोलती नाक नाक में बोले ॥ २ ॥

नाक जब हैं सिकोड़ते हित सुन ।
किस तरह नाक तो बचावेंगे ॥
नाक पर बैठने न दें मक्खी ।
नक-कटे नाक ही कटावेंगे ॥ ३ ॥

दम दिखा और नाक में दम कर ।
दिल बढ़े, बैर हैं बढ़ा लेते ॥
नाक उड़ जाय या उतर जावे ।
नक-चढ़े नाक है चढ़ा लेते ॥ ४ ॥

आदमी का रहन सहन व चलन ।
रह सका पाक पाक रखने से ॥
वे सुनें जो कि नाक कुल की हैं ।
रह सकी नाक, नाक रखने से ॥ ५ ॥

कर सकें हित न, तंग तो न करें ।
बात जी में बुरी न पावे थम ॥
मोम की नाक, मोम दिल होवें ।
नाक मल मल करें न नाकों दम ॥ ६ ॥

किस लिये नाक तब दबाते हैं ।
दाब में देह जब नहीं आती ॥
जब कि करतूत से गये कतरा ।
नाक कैसे न तब कतर जाती ॥ ७ ॥

है कसर तो वही भारी जी में ।
हो सकेगा हवास को खो क्या ॥
पड़ कतर-ब्योंत में कुढंगों के ।
नाक ही जो कतर गई तो क्या ॥ ८ ॥

तरह तरह की बातें

पड़ इन्हींके पेच में पिछड़ी रही।
जाति ने इनकी बदौलत सब सहा ॥
चाल चलने में बड़े चालाक हैं।
चोचलों से कब न नाकों दम रहा ॥ ९ ॥

जान होते जाँय क्यों बे-जान बन।
मर मिटे पर मान कर देवें न कम ॥
किस तरह कोई रगड़वा नाक ले।
एड़ियाँ रगड़ें न रगड़ें नाक हम ॥१०॥

एकसे सब एकसे होते नहीं।
हो कमल से पाँव खिलते हैं नहीं ॥
फूल झड़ते हैं फुलाने से न मुँह।
नाक फूले फूल मिलते हैं नहीं ॥११॥

है उन्हें काम बेहयापन से।
और का काम ही तमाम हुआ ॥
डूबने को कहीं कुँआ न मिला।
नक्कुओं से गये बहुत नकुआ ॥१२॥

क्यों लगे धब्बे न वह धोता फिरे।
मान नकटे का नहीं होता कहीं ॥
बेसबब उतरी निठुर के हाथ से।
नाक तू चित से मगर उतरी नहीं ॥१३॥

बेसमझ सूझ बूझ के आगे।
कुछ नहीं है नसीहतों में दम ॥
किस लिये आप वे सिकुड़ जाते।
नाक उनकी सिकुड़ न पाई कम ॥१४॥

तब चखेंगे न क्यों बुरे फल हम।
जब बुरी बेलि ही गई बोई॥
तब करेगा न नाक में दम क्यों।
नाक का बाल जब बना कोई॥१५॥

अन्योक्ति

साँस उसकी किस लिये फूले भला।
दूसरों को वह फले या मत फले॥
नाक तो है साँस लेने की जगह।
साँस दाईं या कि बाईं ही चले॥१६॥

बन गई फूल तू कभी तिलका।
तू कभी है बहुत बसी होती॥
नाक तेरे अजीब लटके हैं।
है तुझीमें लटक रहा मोती॥१७॥

जो रही बार बार चढ़ जाती।
तो बता दे हमें खसी तू क्या॥
नाक तुझमें बसा रहा मल जो।
फूल की बास से बसी तो क्या॥१८॥

कान

हितगुटके

जब कि खूँटी उमेठने से ही।
ताँत की सब कसर नहीं जाती॥
तब भला कान ऐंठ देने से।
आँत की ऐंठ क्यों निकल पाती॥ १ ॥

जब डँटे काम पर रहेंगे हम।
तब हमें डाँट लोग क्यों देंगे॥
पाँव उखड़े न जब भले पथ से।
कान कैसे उखाड़ तब लेंगे॥ २॥

कान काटें न कपटियों के वे।
क्यों रहें तेल कान में डाले॥
कान कतरें न कान कतरा कर।
देस के कान फूँकनेवाले॥ ३॥

क्यों उठा कान हम न उठ बैठें।
काढ़ लें क्यों न आँख की सूई॥
कान कर के खड़ा खड़े होवें।
कान में क्यों भरी रहे रूई॥ ४॥

नित करें कान काम की बातें।
क्यों न हित-पैंठ बीच पैठें हम॥
कान में डाल उँगलियाँ क्यों लें।
किस लिये कान मूँद बैठें हम॥ ५॥

कान दे कर सुनें हितू बातें।
बन्द करके न कान अकड़ें हम॥
क्यों मले कान कान मल निकले।
कान पकड़े न कान पकड़ें हम॥ ६॥

क्या हुआ जो बजे उमग बाजे।
देस-हित-गीत भी गया गाया॥
किस तरह कान खोल डालें हम।
कान का मैल कढ़ नहीं पाया॥ ७॥

रेंगती कान पर नहीं जब जूँ।
तब भला आँखें खोलते कैसे ॥
जब कि है कान ले गया कौआ।
कान को तब टटोलते कैसे ॥ ८ ॥

सुनहली सीख

क्यों पड़ी कान में न हित-बातें।
दूसरा कान क्यों पकड़ पावे ॥
कान का खोंट क्यों न कढ़वालें।
क्यों भरे कान कान भर जावे ॥९॥

हम लगा कान बात क्यों सुनते।
है बुरे छाव की पड़ी छाया ॥
कान का जा सका न बहरापन।
आँख का मैल कढ़ नहीं पाया ॥१०॥

चाहिये जाति-हित-भरी बातें।
जो भली लग सकें न तो न खलें ॥
छेद है कान में न तो न सुनें।
किस लिये हाथ कान पर रख लें ॥११॥

हो भली और काम की भी हो।
हों न उसमें विचार अनभल के ॥
दूसरे कान से लगे जब हैं।
क्यों सुन बात कान के हलके ॥ १२ ॥

हित की बातें

खोल करके कान हित-बातें सुनें।
उँगलियाँ क्यों कान में देते रहें ॥
कान के कच्चे कहें कच्ची नहीं।
कान के पतले न पत लेते रहें ॥१३॥

बेतरह हैं बिलख रहीं बेवा।
चैन बेचैन जी नहीं पाता॥
कान है फट रहा सुनें कैसे।
कान अब तो दिया नहीं जाता॥ १४॥

कीं बड़ों की शिकायतें न कभी।
कब भलों पर बुराइयाँ डालीं॥
गालियाँ दीं, न तो चुगुलियाँ कीं।
कान में डाल क्यों उँगलियाँ लीं॥१५॥

अन्योक्ति

दुख सहे साँसत सही कट फट गये।
और ले ली नेकचलनी से बिदा॥
भूल है थोड़ी सजावट के लिये।
कान कितनी ही जगह जो तू छिदा॥१६॥

तू पहन ले बने चुने गहने।
नित भली चाह क्यों न फबती ले॥
बेध दे औरको न या बेधे।
आप तू कान बिध भले ही ले॥१७॥

सब सहेगा जो सहाओगे उसे।
पर भला तौहीन कैसे सहेगा॥
कान! गहने फूल के हैं कुछ घड़ी।
साथ तो कनफूल का ही रहेगा॥१८॥

पी रसीले सुर अघाया ही किया।
तू अनूठी तान से भरता रहा॥
जब निराला रस बहा तुझसे नहीं।
कान तू ही सोच तब तू क्या बहा॥१९॥

जो कि जञ्जाल में हमें डाले।
चाहिये जाल वह नहीं बुनना॥
कान है बात यह बुरी होती।
छोड़ दो तुम बुराइयाँ सुनना॥२०॥

गाल

हितगुटके

बात बेलौस की न दिल से सुन।
चाहिये क्या बिपद बुला लेना॥
पा जिन्हें फूल फल चले, उनसे।
चाहिये गाल क्या फुला लेना॥ १॥

गाल कोई रहे फुलाता क्यों।
है उठा गाल बैठ भी जाता॥
जब तमाचा लगा तमाचे पर।
गाल कैसे न तमतमा आता॥ २॥

जब कि बदरङ्ग था उसे बनना।
किस लिये रंग तो रहा लाता॥
जब कि बाई पची जवानी की।
गाल कैसे न तो पचक जाता॥ ३॥

गाल उभरे भरे बहुत देखे।
गाल सूखे रँगे न देखे कम॥
फूल है फूल क्यों उसे मसलें।
क्यों मलें गाल, गाल चूमें हम॥ ४॥

प्यार के पुतले

कौन सा मन न मोह जाता है।
आँख भोली सुडौल भाल लखे॥
कौन होता भला निहाल नहीं।
लाल के लाल लाल गाल लखे॥ ५॥

हैं फबीले लुभावने चिकने।
काँच गोले भले न ऐसे हैं॥
आइने से अमोल अलबेले।
गाल फूले गुलाब जैसे हैं॥ ६॥

तरह तरह की बातें

गाल होता लाल है तो लाल हो।
कह सकेंगे हम न बेजा सुन बजा॥
मारते हैं गाल तो मारा करें।
हैं बजाते गाल तो लेवें बजा॥ ७॥

देह पर जब कि पड़ रहा हो दुख।
अंग कैसे न दुख उठाता तब॥
सूजना बज कि पड़ गया मुँह को।
गाल कैसे न सूज जाता तब॥ ८॥

हम कहेंगे खरी न सहमेंगे।
क्यों न बन्दूक लोग छतिया लें॥
आप तो गाल चीर देंगे ही।
क्यों न दो गाल और बतिया लें॥ ९॥

अन्योक्ति

तब लुभा कर भले लगे तो क्या।
जब कि छूटी न फूलने की लत ॥
जब रहा रँग न तब करें क्या ले।
गाल तेरी गुलाब सी रंगत ॥१०॥

पेच में जब तू पचकने के पड़ा।
रह नहीं सकता सुबुकपन तब बना ॥
झुर्रियों का जब झमेला है लगा।
गाल तब जो तू तना तो क्या तना ॥११॥

रंगतें हैं बहुत भली अपनी।
औ बुरी हैं बनावटोंवाली ॥
लाल मत बन गुलाल से तब तू।
गाल असली रही न जब लाली ॥१२॥

वह सुबुकपन है भला किस काम का।
धूप से जिसकी हुई साँसत बड़ी ॥
तब फबीली क्या रही दहले दले।
जब गोराई गाल की पीली पड़ी ॥१३॥

मिल गया है बड़ा अनूठा रंग।
पर कहाँ मिल सकी महँक अनुकूल ॥
भूल मत, सोच, गुल खिलाना छोड़।
गाल क्या तू गुलाब का है फूल ॥१४॥

जब किसी पर दया नहीं आई।
जब कि तू बेतरह जलाता है ॥
तब हुआ क्या पसीज जाने से।
गाल तू क्यों पसीज जाता है ॥१५॥

क्यों गये भींग आँसुओं से तब।
जब दिखाई दिये हमें सूखे॥
तब कहेंगे तुम्हें न माखन सा।
गाल जब तुम बने रहे रूखे॥१६॥

भर गये धूल में पड़े रूखे।
और पाया न नेह भी टिकने॥
जब बना रह सका न चिकनापन।
गाल तब क्या बने रहे चिकने॥१७॥

मुँह

दिल के फफोले

आँख थी ही बन्द मुँह भी बन्द है।
मुँह उठा कर कौन मुँह ताका नहीं॥
सिल गया मुँह आज दिन भी है सिला।
टूट मुँह का तो सका टाँका नहीं॥ १॥

खा तमाचा लिया अगर मुँह पर।
तो कहें कौन बात क्या सोचें॥
मुँह दिखाते अगर नहीं बनता।
क्यों न तो बार बार मुँह नोचें॥ २॥

जो बड़े हैं हर तरह वे हैं बड़े।
कर न उनका मान क्यों उनको खलें॥
चाहिये था मुँह नहीं आना हमें।
अब भला हम कौन मुँह लेकर चलें॥ ३॥

जाति किस तरह तू जीती रह सकेगी।
एक नहीं मानी तूने उनकी कही॥
रँगे रहे जो अपनापन के रंग में।
चले गये अपना सा मुँह लेकर वही॥ ४॥

लानतान

लोग अपने हकों पदों को भी।
बीरता के बिना नहीं पाते॥
जब गई बीरता बिदा हो तब।
क्या रहे बार बार मुँह बाते॥ ५॥

बे-तरह मुँह की अगर खाते नहीं।
तो चबाते क्यों न लोहे के चने॥
सामने आकर करें मुँह सामने।
मुँह दिखायें मुँह दिखाते जो बने॥ ६॥

छेद मुँह में है अगर, छेदें न तो।
किस लिये बेढंग कोई मुँह चले॥
आग ही जो मुँह उगलता है सदा।
आग उस मुँह में लगे वह मुँह जले॥ ७॥

हित गुटके

क्यों कहें हम न चाहता सब है।
बात सुनना बड़ी बड़े मुँह से॥
मुँह अगर फूलता किसीका है।
क्यों नहीं फूल तो झड़े मुँह से॥ ८॥

भूल कर कोई न मुँह काला करे।
मुँह रहे हित रंग से सब दिन रँगा॥
पुत सियाही जाय क्यों मुँह में किसी।
चाहिये मुँह में रहे चन्दन लगा॥ ९॥

मुँह न जिसमें लगा सकें उसमें।
मुँह लगा लाग में न आयें हम॥
देख कर मुँह कहें न मुँहदेखी।
मुँहलगों को न मुँह लगायें हम॥१०॥

क्यों किसी मुँह की बनी लाली रहे।
क्यों किसी मुँह में रहे लोहू भरा॥
मल किसीका मुँह न कोई मुँह खिले।
लाल मुँह कर हो न कोई मुँह हरा॥११॥

तोलना हो तो भले ही तोल ले।
क्यों सताने के लिये कोई तुले॥
मुँह किसीका बन्द करके क्या खुला।
चाहिये मुँह खोल करके मुँह खुले॥१२॥

मुँह बना देख मुँह बनायें क्यों।
मान अरमान का करें क्यों कम॥
मुँह गिरे मुँह गिरे हमारा क्यों।
मुँह फिरे मुँह न फेर लेवें हम॥१३॥

मुँह सँभालें सिकोड़ करके मुँह।
मान रख लें न क्यों मना करके॥
मुँह चिढ़ा कर न खाँय मुँह की हम।
मुँह बिगाड़ें न मुँह बना करके॥१४॥

हित अगर मोड़ मुँह नहीं लेता।
तो न सुख की सहेलियाँ मुड़तीं॥
रंग उड़ता अगर न चेहरे का।
तो न मुँह पर हवाइयाँ उड़तीं॥१५॥

नाड़ी की टटोल

जब उमंगें उभर नहीं पाईं।
तब भरा किस तरह से रह पाता ॥
पूच की जब कि पच गई बाई।
तब भला क्यों न मुँह पचक जाता ॥१६॥

किस तरह काले न तब कपड़े बनें।
सूत काले रंग में जब हों रँगे ॥
दिल किसीका जब कि काला हो गया।
तब सियाही क्यों नहीं मुँह में लगे ॥१७॥

क्या करेंगे तब भला अलवान ले।
जब कि कम्बल ही बहुत सजता रहा ॥
काम बाजों का रहा तब कौन सा।
मुँह बजाने से अगर बजता रहा ॥१८॥

औरको फूला फला लख जो कुढ़े।
वे नहीं देखे गये फूले फले ॥
जो कि परहित देख कर जलते रहे।
कल्ह जलते आज उनका मुँह जले ॥१९॥

तब चले थे रँग जमाने आप क्या।
जब भरम ही आपका था खो गया ॥
मिल गया सारा बड़प्पन धूल में।
आज तो इतना बड़ा मुँह हो गया ॥२०॥

मिल सके उनसे कहीं हलके नहीं।
जो हवा लगते पतंगों सा तनें ॥
जो रहे मनमानियों में मस्त वे।
क्यों न अपने मुँह मियाँमिट्ठू बनें ॥२१॥

क्यों न पत ले उतार औरोंकी।
जब कि निज पत गँवा गया वह डँट ॥
बात फट से अगर न कह दे, तो।
फिर उसे लोग क्यों कहें मुँहफट ॥२२॥

गिर गया जो कि आप मुँह के बल।
वह भला कैसे मुँह बचा पावे ॥
मुँह पिटाये पिटे नहीं कैसे।
मुँह गया टूट टूट तो जावे ॥२३॥

चार आँखें अगर नहीं होतीं।
क्यों न बेचारपन दिखायें तो ॥
जो उन्हें है पसंद मुँहचोरी।
क्यों न मुँहचोर मुँह चुरायें तो ॥२४॥

जब कि मुँह सामने नहीं होता।
तब छिपेंगे न क्यों छिपाने से ॥
क्यों न मुँह देख आइने में लें।
मुँह छिपेगा न मुँह छिपाने से ॥२५॥

है हँसी की बात हँसना चाहिये।
बीज बनने हैं चले दाने घुने ॥
हम हँसे तो क्या, न हँसता कौन है।
बात बूढ़े मुँह मुहासे की सुने ॥२६॥

निराले नगीने

पड़ गया है जो बुरों के साथ में।
क्यों बनेगा वह बुरे जी का नहीं ॥
फल चखे फीका व फीकी बात कह।
कौन सा मुँह हो गया फीका नहीं ॥२७॥

दुख उठाना किसे नहीं पड़ता।
कौन सुख ही सदा रहा पाता॥
था कभी चख रहा नगद पेड़ा।
मुँह थपेड़ा कभी रहा खाता॥२८॥

सुनहली सीख

चाहते हैं हम अगर सच्चा बना।
क्यों न तो आचें सचाई की सहें॥
पीठ पीछे है बुरा कहना बुरा।
चाहिये जो कुछ कहें मुँह पर कहें॥२९॥

मुँह न जाये सूख सूखी बात सुन।
सब दिनों रस से रहें हम तर-बतर॥
मुँह लटक जाये न लटके में पड़े।
आँख से उतरे, न मुँह जाये उतर॥३०॥

दुख बढ़ाये सदा रहा बढ़ता।
कब नहीं कम किये हुआ दुख कम॥
पेट में पैठ पेट को पालें।
क्यों पड़ें मुँह लपेट करके हम॥३१॥

जो कहें उसको समझ करके कहें।
वेसमझ ही चूक कर हैं चूकते॥
क्यों न उलटे थूक तो मुँह पर गिरे।
जब कि सूरज पर रहे हम थूकते॥३२॥

हित तजे किसका नहीं होता अहित।
दुख मिले सुख के न कब लाले पड़े॥
छल किये छाती न कब छलनी बनी।
मुँह छिले मुँह में न कब छायी पड़े॥३३॥

है इसीसे आज साँसत हो रही।
और है सब ओर दुख-धारा बही॥
क्यों सही बातें नहीं जातीं कही।
क्या जमाया है गया मुँह में दही॥३४॥

प्यार के पुतले

लाल का मुँह फूल सा फूले लखे।
क्यों न तारे भौंर जैसे घूमते॥
क्यों बलायें चाव से लेते नहीं।
चूमनेवाले न क्यों मुँह चूमते॥३५॥

खिल सकेगी किस तरह दिल की कली।
बेतरह है लाल अलसाया हुआ॥
फूलता फलता हमारा चाव क्यों।
फूल सा मुँह देख कुम्हलाया हुआ॥३६॥

नोंक झोंक

क्यों किसी मुँह पर मुहर होवे लगी।
क्यों किसी मुँह से लगा प्याला रहे॥
मुँह किसीका जाय मीठा क्यों किया।
क्यों किसी मुँह में लगा ताला रहे॥३७॥

हम तरसते हैं खुले मुँह आपका।
मुँह हमारा आप क्यों हैं सी रहे॥
आप मुँह भर भी नहीं हैं बोलते ;
आपका मुँह देख हम हैं जी रहे॥३८॥

कब नहीं काँटे बखेरे हैं गये।
भूल है जो मन-भँवर भूला रहा॥
किस लिये तो फूल झड़ पाये नहीं।
मुँह फुलाने से अगर फूला रहा॥३९॥

तरह तरह की बातें

भूलते तो न देख भोला मुँह।
मोहते तो न बात सुन भोली॥
बोल कर बोलियाँ अनूठी जो।
बोलती बेटियाँ न मुँहबोली॥४०॥

सब बनी बातें बिगड़ जिनसे गईं।
किसलिये बात गईं ऐसी कही॥
क्यों भुला दी आपने, वह काम की।
बात मुँह में जो अभी आई रही॥४१॥

जो गुलाबों की तरह से थे खिले।
था अनूठा रस सदा जिनसे चुआ॥
उन दिलों से देख कर धूआँ उठा।
मुँह भला किसका नहीं धूआँ हुआ॥४२॥

तब भला कैसे न पड़ते फेर में।
दुख हुआ जब सामने आकर खड़ा॥
फाँकते ही धूल हम दिन भर रहे।
एक दाना भी नहीं मुँह में पड़ा॥४३॥

अन्योक्ति

जब कि बेढंग वह रहा चलता।
तब तमाचे न किस लिये खाता॥
जब भली बोलियाँ नहीं बोला।
तब भला क्यों न मुँह मला जाता॥४४॥

क्या सकी जान तब मरम रस का।
जब बनी जीभ बेतरह सीठी॥
क्या रहा तब मिठाइयाँ खाता।
कह सका मुँह न बात जब मीठी॥४५॥

रख बुरे ढंग कर बुरी करनी।
जब कि बू के पड़े रहे पाले॥
पान चाहे इलायची खा कर।
तब वृथा मुँह बने महँकवाले॥४६॥

क्यों कढ़ेगी बुरी डकार न तब।
जब रहेंगी कसर भरी आँतें॥
मुँह भली बास से बसे कैसे।
कह बुरी बास से बसी बातें॥४७॥

भर निराले बहुत रुचे रस से।
हों भले ही छलक रहे प्याले॥
बेसमय बूँद किस तरह टपके।
मुँह लगातार राल टपका ले॥४८॥

जाति है जिनके बड़प्पन से बड़ी।
जब उन्हें तूने कड़ी बातें कहीं॥
टूट कैसे तो नहीं मुँह तू गया।
और तुझमें क्यों पड़े कीड़े नहीं॥४९॥

जो खुला मीठे कलामों के लिये।
लाल बन कर पान से जो था खुला॥
खुल गया मरते समय भी मुँह वही।
जो कभी था खिलखिला करके खुला॥५०॥

बेतरह हैं निकल रहे दोनों।
मुँह सँभल क्रोध आग कम न जगी॥
झाग में औ बुरे कलामों में।
लाग है आज कुछ अजीब लगी॥५१॥

मुँह तुम्हीं सोच लो कि तुम क्या हो।
थूक कफ औ खेखार के घर हो॥
बात टेढ़ी कहो न टेढ़े बन।
दैव का कुछ तुम्हें अगर डर हो ॥५२॥

बात जिसकी बड़ी अनूठी सुन।
दिल भला कौन से रहे न खिले॥
है बड़ी चूक जो उसी मुँह को।
चुगलियाँ गालियाँ चबाव मिले ॥५३॥

मत उठा आसमान सिर पर ले।
मत भवें तान तान कर सर तू॥
ढा सितम रह सके न दसमुँह से।
मुँह उतारू न हो सितम तू ॥५४॥

दाँत

लान-तान

गुर गिरों के प्यार का जाना नहीं।
गिर गये हो तुम बहुत ही इस लिये॥
यह कहूँगा एक क्या सौ बार मैं।
कटकटाते दाँत हो तुम किस लिये॥ १॥

दून की तो आप लेते थे बहुत।
क्यों दिलेरों के डगाये डग गये॥
बेतरह जी में समा डर क्यों गया।
इस तरह क्यों दाँत बजने लग गये॥ २॥

दूध का दाँत है नहीं टूटा।
क्यों भला दाँत पीस पत खोते॥
बेतरह हैं पड़े खटाई में।
दाँत खट्टे न किस तरह होते॥ ३॥

दाँत वे हैं निकालते तो क्या।
हैं सदा पूँजियाँ हड़प लेते॥
दाँत से क्यों न कौड़ियाँ पकड़ें।
दाँत हैं दूध-पूत पर देते॥ ४॥

लोग उँगली दाब लें दाँतों तले।
हैं मगर वे तेज डँसने में बड़े॥
दाँत सारे गिर गये तो क्या हुआ।
दाँत बिख के हैं नहीं अब तक झड़े॥ ५॥

मिल पराया धन उन्हें जैसे सके।
किस लिये बन जाँय वे वैसे नहीं॥
दाँत उनको हैं अगर चोखे मिले।
तो लगायें दाँत वे कैसे नहीं॥ ६॥

निराले नगीने

हैं दुखी दीन को सताते सब।
हो न पाई कभी निगहबानी॥
लग सका और दाँत में न कभी।
हिल गये दाँत में लगा पानी॥ ७॥

बात जो जी में किसीके जम गई।
पाँव उस पर किस तरह जाता न जम॥
जो कि जी में है हमारे गड़ गया।
कब नहीं उस पर गड़ाते दाँत हम॥ ८॥

तरह तरह की बातें

वह कहा जाता है लोहे का चना।
वह नहीं हलवा किसी के मुह में है॥
जो उसे ले चाब दानों की तरह।
यह बता दो दाँत किसके मुँह में है॥६॥

यों चुराना जी बहुत ही है बुरा।
क्या किया तुमने कि जी उकता गया॥
एक गुत्थी भी नहीं सुलझी अभी।
किस लिये दाँतों पसीना आ गया॥१०॥

बैठ जाता दाँत है डर-बात सुन।
चौंकते हैं चोट की चरचा चले॥
हम किसीका दाँत देते तोड़ क्या।
हैं दबाते दूब दाँतों के तले॥११॥

सैकड़ों ही ढंग के दुखड़े नये।
सामने क्यों आँख के हैं फिर रहे॥
हो भला, उनकी बलायें दूर हों।
नींद में वे दाँत क्यों हैं किर रहे॥१२॥

मैं तड़पता हूँ बहुत बेचैन बन।
इन दिनों कैसी हवाएँ हैं वही॥
पास पाटी के फटकते वे नहीं।
दाँत-काटी सब दिनों जिनसे रही॥१३॥

बज रहा है अब नगारा कूच का।
जीव के पिछले बिछौने तग गये॥
वे घड़ी दो एक के मेहमान हैं।
सुन रहा हूँ दाँत उनके लग गये॥१४॥

क्या करेंगे कर सकेंगे कुछ नहीं।
सोचिए किस खेत की मूली हैं ये॥
लाल होते देख आखें आपकी।
देखता हूँ दाँत इनके रँग गये॥१५॥

कुछ अदब सीखो बहुत मैं कह चुका।
सुन सकूँगा अब न कोई बात मैं॥
दाँत निकले इस तरह जो फिर कभी।
तो समझ लो तोड़ दूँगा दाँत मैं॥१६॥

बँध गये हाथ पाँव हों जिसके।
मार जिससे कि हो न जाती सह॥
तंग जी बार बार होने पर।
दाँत कैसे न काट लेवे वह॥१७॥

बात बात में बात

देख तुझको चित कहाँ उतना दुखा।
वह बना जी को दुखी जितना खली॥
जो अचानक बिन खिले कुँभला गई।
दाँत तू क्या कुन्द की है वह कली॥१८॥

बान जो पड़ गई उखड़ने की।
तो न हम पाँव की तरह उखड़ें॥
जो कि गिरता रहा उभड़ करके।
दाँत जैसा कभी न हम उभड़ें॥१९॥

सोंच लें बढ़ने सँभलने के लिए।
याँ उमड़ते या उभड़ते हैं न सब॥
कब नहीं आँसू उमड़ करके ढले।
दाँत गिरने के लिए उभड़े न कब॥२०॥

अन्योक्ति

तोड़ना फोड़ना दबा देना।
छेदना बेधना बिपद ढाना॥
दाँत को कब नहीं पसन्द रहा।
चीरना फाड़ना चबा जाना॥२१॥

मैल की तह अगर रही जमती।
तो कभी हैं न मोतियों जैसे॥
जब किसी काल में खिले न मिले।
दाँत हैं कुन्द की कली कैसे॥२२॥

है निराली चमक दमक तुममें।
सब रसों बीच हो तुम्हीं सनते॥
दाँत यह कुन्दपन तुम्हारा है।
जो रहे कुन्द की कली बनते॥२३॥

है न तुझमें मुलायमीयत वह।
बास कुछ भी नहीं सका पा तू॥
दाँत जब तू नहीं फला फूला।
तब बना कुन्द की कली क्या तू॥२४॥

देख ली तब दाँत बातें चाव की।
होंठ को जब तुम चबाते ही रहे॥
दब सकोगे तब सगों से किस तरह।
जीभ को जब तुम दबाते ही रहे॥२५॥

वे बहुत ही मोल के जब हैं न तब।
भूल की मोती अगर बनने चले॥
मान मनमाना किये मिलता नहीं।
दाँत नीलम कब बने मिस्सी मले॥२६॥

मान लो बात मोल मत खो दो।
दाँत मैले बने रहो मत तुम॥
दूर कर दो तमाम मैलापन।
मत सहो औरकी मलामत तुम॥२७॥

जो तुम्हें चाहना सुखों की है।
तो लहू में किसी तरह न सनो॥
कौन दुख में पड़ा न गन्दे रह।
दाँत मत गन्दगी-पसंद बनो॥२८॥

दूसरों को बेतरह गड़ और चुभ।
मात करते हो सदा तुम तीर को॥
देखता हूँ मानता कोई नहीं।
दाँत ! अपनी पीर सी पर-पीर को॥२९॥

कूटते औ पीसते ही वे रहे।
काम देगी क्या दवा औ क्या दुआ॥
मिल गया बेदर्दियों का फल उन्हें।
दर्द जो बेदर्द दाँतों में हुआ॥३०॥

जीभ

लान-तान

बेतरह काट कर रही है जब।
क्यों न तो जीभ काट ली जाती॥
काम है दे रही कतरनी का।
जीभ कैसे कतर न दी जाती॥ १ ॥

क्या उसे कुछ चोट इसकी है नहीं।
चाहिये अपनी दवा चटपट करे॥
कर चटोरापन बहुत, पड़ चाट में।
क्यों चटोरी जीभ घर चौपट करे॥२॥

बेतरह चल बुराइयाँ कर कर।
किसलिये खाल वह खिँचाती है॥
चाम की जीभ चामपन दिखला।
चाम के दाम क्यों चलाती है॥३॥

दे रही है बुरी बुरी गाली।
एक क्या बीसियों बहाने से॥
लालची बन गँवा रही है घर।
चल रही जीभ है चलाने से॥४॥

है सदा बात बेतुकी कहती।
किस समय दाम का सकी दम भर॥
है न किससे बिगाड़ कर लेती।
जीभ बिगड़ी बिगाड़ती है घर॥५॥

क्यों बहुत खींचतान बढ़ती है।
खैंच लें जीभ खैंचते जो हैं॥
जो नहीं जीभ ऐंठ जाती तो।
ऐंठ दें जीभ, ऐंठते क्यों हैं॥६॥

राल टपका बहुत रही है क्यों।
क्यों निकल बार बार आती है॥
क्यों न गिर जाय है अगर गिरना।
किस लिये जीभ लपलपाती है॥७॥

हित गुटके

बन भली है भलाइयाँ करती।
बात को देख-भाल लेती है॥
चाहिये जीभ को सँभालें हम।
जीभ सँभली सँभाल लेती है॥८॥

जीभ कैसे निकाल लेवेंगे।
क्या फबी हैं उन्हें फबी बातें॥
जीभ किसने नहीं दबा ली है।
सुन दबी जीभ की दबी बातें॥९॥

जो उसे बदनामियों का डर नहीं।
तो बुरी करनी कमाई से डरे॥
सब दिनों कर खाज पैदा कोढ़ में।
क्यों किसीकी जीभ खुजलाया करे॥१०॥

मान तब तक मिल नहीं सकता हमें।
बात के जब तक न हो लेंगे धनी॥
तब धनी हम बात के होंगे नहीं।
जीभ पत्ता जब कि पीपल का बनी॥११॥

है चटोरापन भला होता नहीं।
पर चटोरे मानते हैं कब कही॥
चल बसी किसकी नहीं दौलत भला।
जब कि बेढब जीभ चलती ही रही॥१२॥

सब रहे कोसते बुरा कहते।
पर न कब वह कड़ी पड़ी झगड़ी॥
क्यों किसीको बिगाड़ दे कोई।
जीभ बिगड़ी सदा रही बिगड़ी॥१३॥

निराले नगीने

है बुरी लत का लगाना ही बुरा।
बन हठीली क्यों न वह हठ ठानती॥
हम अमी भर भर कटोरी नित पियें।
पर चटोरी जीभ कब है मानती॥१४॥

नित बुराई बुरे रहें करते।
पर भली कब भला रही न भली॥
दाँत चाहे चुभें, गड़ें, कुचलें।
पर गले दाँत जीभ कब न गली॥१५॥

जिद

रंग में ढंग में चिटिकने में।
चाट में जिद हूबहू देखा॥
लोग ऐसे यहीं मिले जिनको।
जीभ से चाटते लहू देखा॥१६॥

अन्योक्ति

प्यास में सूख तब न क्यों जाती।
जब कि बेढंग रस रहा बाँटा॥
जब कि बोना पसंद है काँटा।
हो गई जीभ तू तभी काँटा॥१७॥

जीभ जो है चाह सुख से दिन कटे।
तो न लगती बात तू कह दे कभी॥
जब फफोले और के जी पर पड़े।
हैं फफोले पड़ गये तुझ पर तभी॥१८॥

बाद जिस दुख के किसीको सुख मिले ।
है बुरा वह दुख नहीं यह सोच रख ॥
जो तुझे जल का बढ़ाना स्वाद है ।
कर कसाला रस-कसैला जीभ चख ॥१९॥

रंग जिनमें किसी लहू का है ।
क्यों तुझे हैं पसंद वे बीड़े ॥
है बुरा पड़ बुराइयों में भी ।
जीभ तुझमें पड़े न जो कीड़े ॥२०॥

जो खटाई है तुझे रुचती रुचे ।
क्यों कढ़ा वह बोल जो विष बो गया ॥
जीभ तू ही सोच क्या मतलब सधा ।
जी अगर खट्टा किसीका हो गया ॥२१॥

तालू

लान-तान

दिन रहे तालू उठाने के नहीं ।
क्यों न आँखों में समय पाया समा ॥
जाति का तालू अगर है सूखता ।
दाँत तालू में तुमारे तो जमा ॥ १ ॥

निराले नगीने

रोग के जब पड़ गया पाले रहा ।
तब भला कैसे न वह जाता लटक ॥
प्यास जब थी बेतरह चटकी हुई ।
किस तरह तालू न तब जाता चटक ॥ २ ॥

दुख उठाना ही न क्यों उनको पड़े।
पर समय पर साथ देवेंगे सगे॥
बोलते जब बोलनेवाले रहे।
किस तरह तब जीभ तालू से लगे॥ ३॥

लब और होंठ

लानतान

वह सदा है माल उनका मूसती।
वे भले ही भाव को मूसा करें॥
सब दिनों वह है उन्हींका चूसती।
चूसते हैं होंठ तो चूसा करें॥ १॥

क्यों न देवें दबा बुरे दिल को।
क्या चुगुल को दबा दबा होगा॥
क्यों न जायें चबा चबावों को।
होंठ को क्या चबा चबा होगा॥ २॥

जब नहीं है बहाव ही उसमें।
तब अगर धार कुछ बही तो क्या॥
जब उसे हम बता नहीं सकते।
होंठ पर बात तब रही तो क्या॥ ३॥

जब लहू में न रह गई गरमी।
तब गये मान कौन गरमाता॥
किस तरह बाँह तब फड़क उठती।
होंठ भी जब फड़क नहीं पाता॥ ४॥

पड़ रही हैं सब तरह की उलझनें।
देख उनको किस तरह से चुप रहें॥
चाहिये मुँह खोल कर कहना जिसे।
लोग होठों में उसे कैसे कहें॥५॥

जो कि चिलबिल्ले गये सब दिन गिने।
जो बचन देकर बिचल जाते रहे॥
बात सुन करके विचारों से भरी।
कब नहीं वे होंठ बिचकाते रहे॥६॥

दिल के फफोले

चित फटा होंठ फट गये तो क्या।
है खड़ी पास आ बिपत्ति-घड़ी॥
काटते होंठ हम दुखों से हैं।
होंठ पर है पड़ी हुई पपड़ी॥७॥

जायगा मुँह किस तरह कुँभला न तब।
बढ़ रही हो दिन-ब-दिन जब बेबसी॥
जब उमंगें बेतरह हैं पिस रहीं।
होंठ पर तब किस तरह आती हँसी॥८॥

फूलता फलता पनपता एक है।
एकने बरबाद हो कर सब सहा।
जी रहा दुख से मसलता एकका॥
मुस्कुराता एक होठों में रहा॥९॥

हित-गुटके

वह सदा तो ठहर नहीं सकती।
फिर अगर कुछ घड़ी थमी तो क्या॥
हड़बड़ी में घड़ी घड़ी मत पड़।
होंठ पर जो धड़ी जमी तो क्या॥१०॥

जब बुरी चाल हम लगे चलने।
लोग तब क्यों न चुटकियाँ लेंगे॥
जब निकलने लगे कलाम बुरे।
लोग क्यों होंठ तब न मल देंगे॥११॥

नोक झोंक

पिंड छूटा कभी न लालच से।
लाभ के साथ लोभ कब न बढ़ा॥
है लबों में नहीं ललाई कम।
पर मिला कब न पान रंग चढ़ा॥१२॥

लब हिलाये न क्यों वहे रस, जब।
हित-पियाला भरा लबालब हो॥
बज सके बीन तो रहे बजती।
लब खुले, बन्द किस लिये लब हो॥१३॥

बात भी आप जब नहीं करते।
तब भला रंग ढंग क्यों मिलता॥
सिर भला किस तरह हिलेगा तब।
लब हिलाये अगर नहीं हिलता॥१४॥

अन्योक्ति

जब कि तुम प्यारे रहे लगते नहीं।
क्यों गये तब फूल औ फल-दल कहे॥
धूल में नरमी तुमारी तब मिले।
होंठ जब जी में खटकते तुम रहे॥१५॥

फल इनारू का अगर तू बन सका।
तो कहें हम दाख सा कैसे तुझे॥
लाख दावा हो मिठाई का मगर।
होंठ तू मीठा नहीं लगता मुझे॥१६॥

हँसी

हित-गुटके

हैं सुला सकते नहीं जो फूल पर।
तो न काँटों पर किसीको दें सुला॥
जो हँसायें औ खेलायें हम नहीं।
तो न हँसते खेलतों को दें रुला॥ १॥

है बुरा जो भिड़ें अड़ें अकड़ें।
क्यों मचलते रहें मचा ऊधम॥
काम वह, चाहिये जिसे करना।
क्यों न कर दें हँसी-खुशी से हम॥२॥

छेड़ लो जो चाहते हो छेड़ना।
पर न हो बेहूदगी उसमें बसी॥
बस तभी तक गुदगुदाना चाहिये।
जब तलक आती किसीको है हँसी॥ ३॥

बात क्यों ऐसी गई मुँह से कही।
जो कि गाँसी सी किसी जी में धँसी॥
है चुहुल करना भला होता नहीं।
जड़ लड़ाई की कहाती है हँसी॥ ४॥

है हमें जो निरोग रखना तन।
चाहते हैं अगर न दुख झेलें॥
तो फिरें नित खुली हवा में हम।
खूब जी खोल कर हँसे खेलें॥ ५॥

किसी बात की बहुतायत है बेंड़ी।
सबसे ऊँचे गये लोग हैं खसते॥
हँसी अमी है मगर बहुत हँस देखो।
पेट फूल जायेगा हँसते हँसते॥ ६॥

चाल चलन है अगर बनाना।
तो कुचाल से नाता तोड़ो॥
हाहा - हीही - करतों में पड़।
हाहा - हीही करना छोड़ो॥७॥

नोक - झोंक

है हँसी खेल ही हँसी करना।
वे हँसेंगे हमें हँसा लेंगे॥
किस तरह से हँसी उड़ायें हम।
वे हँसी में हमें उड़ा देंगे॥८॥

हम हँसी का काम करते हैं नहीं।
डर कुरुचि से क्यों सुरुचि सोती रहे॥
हँस रहे हैं लोग तो हँसते रहें।
है अगर होती हँसी होती रहे॥९॥

वे हँसे खेले हँसे बोले बहुत।
फूल मुँह से बात कहते ही झड़े॥
होंठ पर आई हँसी आँखें हँसीं।
खुल गये दिल खिलखिला कर हँस पड़े॥१०॥

फूल जैसे किस लिये जायें न खिल।
आँसुओं से गाल क्यों धोयें न हम॥
जब हँसाये औ रुलाये हैं गये।
तब भला कैसे हँसे रोयें न हम॥११॥

सूख सारा तन गया, सूखी नसें।
सूख कर तर आँख जाती है धँसी॥
हम गये हैं सूख, सूखी बात सुन।
क्यों न सूखा मुँह, हँसे सूखी हँसी॥१२॥

जब रसीली बात रसवाली बनी।
तब भला कैसे न रस-धारें बहें॥
तब हँसी के किस तरह लाले पड़ें।
जब कि हम हँसते हँसाते ही रहें॥१३॥

जब कि सूखा जवाब दे न सके।
वे किसी ऐंच-पेंच में फँस कर॥
तब भला और चाल क्या चलते।
टाल देते न बात क्यों हँस कर॥१४॥

तब कहाँ आया तरस, आँखें अगर।
देख कर उसको तरसती ही रहें॥
बे-तरह जब थी दिलों को फाँसती।
क्यों न फाँसी तब हँसी को हम कहें॥१५॥

हँसी-दिल्लगी

पड़ सकेगा बल न मेरी भौंह पर।
हम भला बेढंगियों में क्यों फँसें॥
बल उन्हींके पेट में पड़ जायगा।
है अगर हँसना हँसोड़ों को हँसें॥१६॥

कँप जाते हैं पत्ता खड़के।
औरोंको बन जाते हैं यम॥
देख शेर गीदड़ का बनना।
हँसते हँसते लोट गये हम॥१७॥

गये पेट में बल पड़ मेरे।
हँसी नहीं पा सकती थी थम॥
सुन सुन कर हँसोड़ की बातें।
हँसते हँसते लोट गये हम॥१८॥

अन्योक्ति

कौन हँसता तब नहीं तुझ पर रहा।
जब कि तू भोंड़े लबों में थी फँसी ॥
तब भला कैसे हँसी तेरी न हो।
जब हँसी तूने किसीकी की हँसी ॥१९॥

जब कि सूखापन दिखा सूखी बनी।
तब गई बेकार रस-डूबी कही ॥
तब अमी की सोत क्यों मानी गई।
जब कि विष जैसी हँसी लगती रही ॥२०॥

जो कि अपने आप ही फँसते रहे।
क्यों उन्हींके फाँसने में वह फँसी ॥
जो बला लाई दबों पर ही सदा।
तो लबों पर किसलिये आई हँसी ॥२१॥

बात

अपने दुखड़े

हैं नहीं उठता हमारा पाँव भी।
जातियाँ सब दौड़ में हैं बढ़ रहीं ॥
इस तरह पीछे अगर पड़ते रहे।
बात भी तो लोग पूछेंगे नहीं ॥ १ ॥

न पके, पर अढ़ाई चावल की।
कब न खिचड़ी अपल पका ली है ॥
किस तरह बात का असर होगा।
सब तरह बात जब निराली है ॥ २ ॥

लानतान

हो भले ही बात करने का न ढब।
जड़ भला चुप किस तरह से रहेंगे॥
क्यों न दुखने सिर लगे सुन सुन, मगर।
बात बेसिर-पैर की ही कहेंगे॥३॥

दिन-बदिन है बात बिगड़ी जा रही।
बेतरह लगती हमें अब लात है॥
पर बताई बात सुनते ही नहीं।
सोचते ही हम नहीं क्या बात है॥४॥

उन्हें चार बातें तुम कह दो।
या अपने ही सिर को धुन लो॥
काम क्या करेंगे बातूनी।
लम्बी लम्बी बातें सुन लो॥५॥

नाम कोम का सुन पड़ते ही।
लम्बी लम्बी साँस भरेंगे॥
भला सकेंगे क्या कर, वे जो।
लम्बी लम्बी बात करेंगे॥६॥

हित गुटके

रोकते छेंकते रहे यों ही।
कब भला मच गया नहीं ऊधम॥
बेसबब बात बात में अड़ करें।
क्यों करें बात का बतंगड़ हम॥७॥

औरको कोस लें मगर दुख में।
डालने को कुढंग क्या कम हैं॥
क्यों फँसेंगे न तब बलाओं में।
जब बुरी बात में फँसे हम हैं॥८॥

चाल की बात है बुरी होती।
कट गई नाक फिर नहीं जुड़ती॥
बात को दें उड़ा न यह कह कर।
पड़ गई बात कान में उड़ती॥९॥

भूल है, पहुँचें ठिकाने हम न जो।
राह सीधी कब न दिखलाई गई॥
है कसर जो कर उसे बरपा न हों।
कब नहीं हितबात बतलाई गई॥१०॥

किस तरह तब बची रहे हुरमत।
और मुँह की बनी रहे लाली॥
सैकड़ों टाल-टूल कर, हित की।
बात ही जब गई बहुत टाली॥११॥

सुनहली सीख

वह सकेगी डाल कैसे पेंच में।
वह रहे क्यों सादगी की घात में॥
मिल सकी पेचीदगी जिसमें नहीं।
बू बनावट की न हो जिस बात में॥१२॥

जो कहें उसको सँभल करके कहें।
चूक जाने की न आने दें घड़ी॥
तब किसीकी बात क्या फिर रह गई।
बात ही वापस अगर लेनी पड़ी॥१३॥

मान सकता बात यह कोई नहीं।
गीत गूँगा आदमी गाता रहा॥
बात करना ही जिसे आता नहीं।
वह लगाता बात का ताँता रहा॥१४॥

सोच, समझी बात कहने के लिये।
जीभ को जब तक न अपनी साध लें॥
धाक तब तक किस तरह बाँधे बँधे।
बात का पुल हम भले ही बाँध लें॥१५॥

एक का मुँह लाल रिस से हो गया।
फूल जैसा एक का मुखड़ा खिला॥
बात से हाथी किसीको मिल गया।
औ किसीको पाँव हाथी का मिला॥१६॥

काम का दो बना निकम्मों को।
काम की बात सैकड़ों सिखला॥
औ मना दो न-मानतों को भी।
दो करामात बात की दिखला॥१७॥

जो नहीं हैं जानते वे जान लें।
बात में ही है भरी करतूत सब॥
कब न भारी बात कह भारी बने।
बात हलकी कह बने हलके न कब॥१८॥

मीठी चुटकी

वह मिले तो भला मिले कैसे।
है बड़ी चाह भाग है खोटा॥
माँगते हैं स्वराज हम, लेकिन।
है बड़ी बात और मुँह छोटा॥१९॥

क्यों न उसको लोग मलते ही रहें।
कान फिर भी हो न पाता तात है॥
लूटते हैं वाहवाही आप ही।
हम कहें क्या, आपकी क्या बात है॥२०॥

नोक झोंक

क्या हुआ पीट जो दिया उसको।
राह पर जो कि है पिटे आता॥
लात का आदमी समझ देखो।
बात से मान किस तरह जाता॥२१॥

क्या अजब जो रंज हमसे वे रहें।
है हमें भी रंज उनसे कम नहीं॥
क्यों चलायेंगे हमारी बात वे।
जब चलाते बात उनकी हम नहीं॥२२॥

जीभ पर आये बिना रहती नहीं।
बात जो जी में जमी सब दिन रही॥
तब भला कैसे न कच्चापन खुले।
बात कच्ची जब गई मुँह से कही॥२३॥

ढंग से जो बोलते बनता नहीं।
तो ढँगीलापन यही है चुप रहे॥
तब भला किसको कहें बेढंग हम।
जब ढँगीला बात बेढंगी कहे॥२४॥

कीच में लेट जो सुखी होंगे।
क्यों करेंगे पसंद वे गद्दे॥
हो अगर भद्द तो बला से हो।
बात भद्दी कहें न क्यों भद्दे॥२५॥

काम की सच्ची कसौटी पर कसें।
चाहते हैं आप जो हमको कसा॥
नेहफंदे में फँसाते क्यों नहीं।
फल मिलेगा कौन बातों में फँसा॥२६॥

कुछ कसर है अगर नहीं जी में।
तो न जी बात छील छील भरें॥
चिड़चिड़ापन अगर पसंद नहीं।
तो खुचुड़ बात बात में न करें॥२७॥

साँस

देवदेव

रह सुखों से अलग सुखी होवें।
सब दुखों से घिरे हुए न घिरें॥
है अगर चाह यह, सदा प्रभु को।
क्यों न तो साँस साँस पर सुमिरें॥ १॥

हित गुटके

और सब जो खो गया तो खो गया।
पर कभी हिम्मत न खोनी चाहिये॥
नाश हो पर हो निराशा क्यों कभी।
साँस होते आस होनी चाहिये॥ २॥

काम धीरज के किये ही हो सका।
काम बनता है बिना धीरज कहीं॥
किस लिये हम डाल कंधा दें कभी।
साँस जब तक आस क्या तब तक नहीं॥ ३॥

साँस जो है उखड़ उखड़ जाती।
तो किसी काम की न छाती है॥
बेतरह साँस फूलती है क्यों।
साँस क्यों टूट टूट जाती है॥ ४॥

साँस ठंढी भरें भँवर में क्यों।
साँस हो बन्द, नाव को खेवें॥
है अगर चाह साँस लेने की।
साँस तो ऊब ऊब क्यों लेवें॥५॥

रुक गई साँस, साँस रोके से।
भर गई साँस, साँस भर पाये॥
साँस निकले है, साँस के निकले।
साँस आती है, साँस के आये॥६॥

काल की चाल को कहें क्या हम।
क्या दिया बुझ गया न बलने से॥
साँस ही के चले चले अब तक।
चल बसे आज साँस चलने से॥७॥

निराले नगीने

हम भले ढंग में ढलें कैसे।
रुचि भले ढंग में नहीं ढलती॥
तब चले ठीक ठीक नाड़ी क्यों।
साँस ही ठीक जब नहीं चलती॥८॥

आ बनी जान पर किसीके जब।
ताब तब किस तरह निबह पाती।
घोंट देवें गला किसीका जब॥
तब भला साँस क्यों न घुट जाती॥९॥

तब भला साहस दिखाते किस तरह।
जब बहाने बेतरह करने लगे॥
दौड़ते क्या, दौड़ लंबी देख कर।
साँस ही लंबी अगर भरने लगे॥१०॥

दम

देवदेव

जो हमारी याद की भी याद है।
क्यों न उसको याद पल पल पर करें॥
मार सकते दम नहीं जिसके बिना।
क्यों न हरदम हम उसीका दम भरें॥ १॥

चेतावनी

प्यार उसका ही भरा जी में रहें।
रंग में उनके न क्यों रँग जाँय हम॥
देस की औ जाति की हमदर्दियाँ।
है अगर कुछ दम करें तो दम-बदम॥ २॥

जाय बिजली दौड़ क्यों रग में नहीं।
काम क्यों सरगर्मियों से हम न लें॥
जाति का जब तक न बेदमपन टले।
चाहिये हम लोग तब तक दम न लें॥ ३॥

रहें जमी ए बातें जी में।
हमी देस का दुख हर लेंगे॥
कठिन से कठिन कामों को भी।
दम के दम में हम कर देंगे॥ ४॥

लानतान

क्या करें ले बनी चुनी बातें।
काम का और दाम का प्यासा॥
दे सकें तो हमें मदद देवें।
दे चुके बार बार दमझाँसा॥ ५॥

जाँच में जब उतर न ठीक सके।
तब अगर हम जँचे जँचे तो क्या॥
क्यों मिला धूल में दिया दम-खम।
दम चुरा कर बचे बचे तो क्या॥ ६॥

वह उँचाई काम देगी कौन सा।
मान ही जिससे किसी का हर गया॥
तब भला तुम दम चढ़ाने क्या चले।
बेतरह जब दम तुमारा भर गया॥ ७॥

तब न कैसे भला दबा लेगा।
आप ही जब कि जाँयगे हम दब॥
तब न दमदार चाहिये बनना।
दम गया सूख देखते दुख जब॥ ८॥

सुनहली सीख

हम रिझा सची लगन को कब सके।
एक मीठी बात ही का रस पिला॥
जब मिला तब मिल मिलाने से सका।
कब भला दिल दम-दिलासा से मिला॥ ९॥

क्या हुआ कितनी दुआवों के पढ़े।
क्या हुआ कितनी दवावों के किये॥
दम निकलने की घड़ी जब आ गई।
रुक सका तब दम न दम भर के लिये॥१०॥

छल-कपट को न दें जगह जी में।
पाँव पावे न पापपथ में थम॥
ओट में बैठ कर न चोट करें।
दम किसीका न घोंट देवें हम॥११॥

नाम कमाओ, सदा नाम से।
मोल दाम का होता कम है॥
काम रखो मत बुरे काम से।
लोगों जब तक दम में दम है॥१२॥

दें न इस तरह पीस किसीको।
आँसू आठों पहर बहे जो॥
इतना नाक में न दम कर दें।
मरते दम तक याद रहे जो॥१३॥

हितगुटके

पैर पीछे पड़े न पीछे पड़।
काम छेड़ा हुआ नहीं छूटे॥
दम न साधें न मार दम लें हम।
जाय दम टूट पर न दम टूटे॥१४॥

दम-बदम देस का करें हित हम।
जान तक जाति के लिये देवें॥
फूलने दम लगे, न दम फूले।
दम निकल जाय पर न दम लेवें॥१५॥

बैठ उठ कर सदा कमीनों में।
मान-मरजाद कर न देवें कम॥
दम दिये दाम फूँक क्यों देवें।
दम लगा कर न हम बनें बेदम॥१६॥

क्यों भरोसा और के दम का करें।
सूझजल से हितकियारी सींच लें॥
मुँह न ताकें, क्यों दबें, सच्ची कहें।
क्यों किसीके दम दिये, दम खींच लें॥१७॥

दिल के फफोले

मोड़ना मुँह कुटुंब से होगा।
माल असबाब छोड़ना होगा॥
तोड़ नाता तमाम दुनिया से।
दम किसी रोज़ तोड़ना होगा॥१८॥

छोड़ तन पींजड़ा समय आये।
उड़ एकाएक हंस जावेगा॥
आँख टँग जायगी बिना टाँगे।
दम अटक कर अटक न पावेगा॥१९॥

कौन है कालहाथ से छूटा।
हैं बताये गये बहुत लटके॥
है दिखाता उसे जगत सपना।
किस लिये दम न आँख में अँटके॥२०॥

आह

हितगुटके

आप वह लड़ सका नहीं, तो क्या।
पर सितम किस तरह नहीं लड़ती॥
मार पड़ती रही किसी पर जब।
आह कैसे न तब भला पड़ती॥ १ ॥

है अगर यह चाह सब चाहें हमें।
फैलती कीरत रहे फूलें फलें॥
बेतरह तो दिल मसल देवें नहीं।
आह भूले भी किसीकी हम न लें॥ २ ॥

कोसते सब सदा रहे हमको।
बात ऐसी करें बदी की क्यों॥
ले सकें तो असीस लें जस लें।
आह लेवें भला किसीकी क्यों॥ ३॥

दिल के फफोले

आह भर भर गया हमारा जी।
पर दुखों का उठा नहीं डेरा॥
आह खींचे न खींच-तान गई।
आह मारे न मन मरा मेरा॥ ४॥

हैं बुरी, बेतरह बुरी दोनों।
क्यों कराहें न, क्यों उन्हें चाहें॥
साँसतें कर बहुत सताती हैं।
आह ठंढी, गरम गरम आहें॥ ५॥

आह करते कराहते हम हैं।
चैन सूरत पड़ी नहीं दिखला॥
कब कसक कढ़ सकी कढ़े आहें।
आह निकली मगर न दम निकला॥ ६॥

छींक

अपने दुखड़े

तब समझदारी समझ में आ गई।
छींक आते नाक जब कटने लगी॥
जो सजाती जाति को थी सब तरह।
रह गई है अब न वह संजीदगी॥ १॥

पते की बातें

क्यों हुए छींक छोड़ दे साहस।
हैं छिछोरे कहीं नहीं ऐसे॥
क्यों चले नाक काटने साहब।
छींक आये, न छींकते कैसे॥२॥

नाम लेंगे वहाँ दया का क्यों।
हैं जहाँ बोटियाँ बिहँस बँटती॥
मिल सकेगी वहाँ छमा कैसे।
छींकते नाक हैं जहाँ छँटती॥३॥

और के मंगल-महल की मूरतें।
क्यों भला सेंदुर लगा वे टीकते॥
और का जी डोल जाने के लिये।
नाक में कुछ डाल जो हैं छींकते॥४॥

जँभाई

नाड़ी की टटोल

नींद आँखों में सबों के थी भरी।
काहिली से बेतरह वे थे हिले॥
ऊँघ जाते और अलसाते हुए।
जो मिले हमको जँभाते ही मिले॥५॥

भेद कोई है नहीं सब एक हैं।
ढंग से क्या है यही बतला रही॥
एक को लेते जँभाई देख क्यों।
है जँभाई पर जँभाई आ रही॥६॥

थूक

हित गुटके

चूक तब कैसे किसीके सिर पड़े।
जब हमी थे चूक कर के चूकते॥
थूक मुँह पर क्यों न तब उलटा गिरे।
जब कि सूरज पर रहे हम थूकते॥ १॥

जो कि जिस काम जोग है, उससे।
ले न वह काम, हैं सभी छकते॥
साटता गोंद है जिसे, उसको।
थूक से साट हम नहीं सकते॥ २॥

चाहिये धूल डालना जिस पर।
क्यों उसे खोल खोल दिखलावें॥
हम भले ही किसी निघर घट को।
थूक लें, और से न थुकवावें॥ ३॥

जब छिछोरे चापलूसों का सदा।
कान हैं कर चापलूसी काटते॥
लोग कैसे थूकते मुँह पर न तब।
जब पराया थूक हम हैं चाटते॥ ४॥

अन्योक्ति

वह भला दूध पी सके कैसे।
जो रहा बार बार दुख जाता॥
क्यों गला रोटियाँ निगल पावे।
थूक भी घोंट जब नहीं पाता॥ ५॥

बोल भी जो सका निकाल नहीं।
वह किसी काल में न कूक सका॥
कौर उससे उतर सके कैसे।
जिस गले से उतर न थूक सका॥ ६॥

लोग जिसको देख करके घिन करें।
वह जहाँ है क्यों नहीं रहता वहीं॥
थूक मुँह से तू निकल आता न जो।
लोग थू थू तो कभी करते नहीं॥ ७॥

बोल और बोली

हितगुटके

बेसमय बेरुचे बिना समझे।
बेदिली साथ जीभ के खोले॥
बोलते बोलते अबोल बने।
बन सकी बात कब बहुत बोले॥ १॥

प्यार से भींग डूब परहित में।
जीभ अपनी सँभाल कर खोलें॥
जो कभी बोलने लगें हम तो।
बेधड़क आन बान से बोलें॥ २॥

तरह तरह की बातें

है गया भूल डींग का लेना।
बात मुँह से निकल नहीं पाती॥
मिल गये आज बोलनेवाले।
बोलती बन्द क्यों न हो जाती॥ ३॥

जब समय था तब नहीं मुँह खुल सका।
बात पीछे प्यार की खोली गई॥
जब हमारा मन हुआ नीलाम था।
किसलिये बोली न तब बोली गई॥ ४॥

बोलबाला हो नहीं उनका सका।
जो बना कर मुँह, रहे, मुँह खोलते ॥
बोलने में कब न बढ़ बोले बढ़े।
बोल लें, बोली अगर हैं बोलते ॥ ५ ॥

जब दिये खोल बन्द सब उसके।
किसलिये पर न खोलती चिड़िया ॥
छोड़ सूना सरीर पिंजड़े को।
उड़ गई आज बोलती चिड़िया ॥ ६ ॥

हिचकी

जी की कचट

वह कलेजा थाम कर कलपे न क्यों।
सब तरह की साँसतें जिसने सहीं ॥
पास जिसके दुख हिचिक आता रहा।
आज उसको हिचकियाँ हैं लग रहीं ॥ १ ॥

आ बनी जान पर किसीकी क्यों।
किसलिये वह न बेतरह बिचकी ॥
चाहिये था उसे हिचिक जाना।
आह ! हिचकी न किस लिये हिचकी ॥ २ ॥

साँस बेढंग जब रही रुकती।
नोच बेचैनियाँ तभी पाईं ॥
मौत कैसे न याद करती तब।
हिचकियाँ जब कि बेतरह आईं ॥ ३ ॥

मौत करती याद है क्या इस लिये।
वह बनी है कंठ की इस दम सगी ॥
हैं हिचिकते प्राण तन को छोड़ते।
या इसीसे आज है हिचकी लगी ॥ ४ ॥

हितगुटके

जो सहज में रोग होता दूर हो।
तो कभी हम दुख न भोगें, देर कर॥
किसलिये पानी न पी लेवें तुरत।
जाय पानी ही पिये हिचकी अगर॥ ५॥

डर सकेंगे डाँट डपटों से न वे।
जो सहमते ही नहीं उलटा टँगे॥
वे न मानेंगे दबाने से गला।
जो हिचिकते ही नहीं हिचकी लगे॥ ६॥

मूँछ

लानतान

बात भी तो पूछता कोई नहीं।
डींग हो हर बात में क्या ले रहे॥
देख लो मुँह तो तवा सा हो गया।
मूँछ पर तुम ताव क्या हो दे रहे॥ १॥

निज बड़े ही पलीद जी से ही।
क्यों न अपना पलीदपन पूँछें॥
जब नहीं रह गया बडप्पन कुछ।
पूँछ हैं तो बड़ी बड़ी मूँछें॥ २॥

डाँट जो बैठे उसीसे डर वहुत।
है पकड़ कर कान उठते बैठते॥
जब हमारी ऐंठ ही जाती रही।
तब भला हम मूँछ क्या हैं ऐंठते॥ ३॥

चाहते थे जोंत मनमानी मिले।
पर अँधेरा छा गया आँखों तले॥
जब कि लेने के हमें देने पड़े।
तब भला हम मूँछ टेने क्या चले॥ ४॥

जब बड़ों ने नहीं बड़ाई दी।
बोझ हैं तो बड़ी बड़ी मूँछें॥
जो हुआ दुख सुने न कान खड़ा।
पूँछ हैं तो खड़ी खड़ी मूँछें॥ ५॥

बेहया है बेहयापन से भरा।
मूँछ पकड़े मूँछ होती है कड़ी॥
है मरोड़े कान मूँछ मरोड़ता।
मूँछ उखड़े मूँछ करता है खड़ी॥ ६॥

मूँछ निकली, गई निकाली, जब।
किस तरह तब कहें कि है रुचती॥
क्या जमीं बार बार तब मूँछें।
जब कि नोचे गये रहीं नुचती॥ ७॥

जी की कचट

हम अपाहिज अगर न बन जाते।
तो बुरी बान की न बन आती॥
आलसी हाथ उठ अगर पाते।
मूँछ मुँह में कभी नहीं जाती॥ ८॥

मूँछ कैसे पट भला होती नहीं।
पट न पाई आन से, पत खो गई॥
गिर गये, मूँछें हमारी गिर गईं।
देख नीचा, मूँछ नीची हो गई॥ ९॥

बाँट में पड़ता न जो बेचारपन।
तो बिचारी बाल बिनवाती नहीं॥
जो मुड़ी, कतरी, बनाई वह गई।
तो भला था मूँछ ही आती नहीं॥१०॥

हितगुटके

वह बुरी ही गिनी गई सब दिन।
क्यो करें झूठ मूठ की शेखी॥
बात ऐंठी हुई सुनी कितनी।
मूँछ ऐंठी हुई बहुत देखी॥११॥

और दो चार बार औरों से।
बात ही वे उखड़ उखड़ पूँछें॥
क्या हमें है पड़ी उखाड़ें जो।
आप ही जाँयगी उखड़ मूँछें॥१२॥

जो चलेंगे नहीं ठिकाने से।
ठोकरें लोग क्यों न देवेंगे॥
जो बुरी छान बीन होगी तो।
मूँछ के बाल बीन लेवेंगे॥१३॥

तौर ही है हमें बता देता।
और से किसलिये भला पूँछें॥
बन सकेंगी न मूँछ असली वे।
है बनी मूँछ ही बनी मूँछें॥१४॥

क्यों उसे प्यार हम न हों करते।
क्यों न वह हो हमें बहुत भाती॥
बाढ़ बेढंग है नहीं अच्छी।
है बढ़ी मूँछ काट दी जाती॥१५॥

पते की बात

जब कि जी में बसी सिधाई थी।
बन सकी तब नहीं सुई टेढ़ी॥
जी किसीका अगर न टेढ़ा है।
किस तरह मूँछ तो हुई टेढ़ी॥१६॥

जो रँगे रंग तो नहीं रहता।
जो रखें तो कभी न ठग पायें॥
बात तो है हमें बनानी ही।
क्या करें मूँछ जो न बनवायें॥१७॥

बच गई थोड़ी सियाही और थी।
देखता हूँ आप ही वह खो गई॥
मुँह हमारा और उजला हो गया।
हित हुआ जो मूँछ उजली हो गई॥१८॥

दाढ़ी

हितगुटके

वे सकें जो उसे नहीं अपना।
प्यार का रस पिला पिला करके॥
तो न देवें हिला किसी जी को।
लोग दाढ़ी हिला हिला करके॥ १॥

जो दिखावट औ बनावट से बचे।
रामरस, रँग प्रेम रंगत में चखे॥
तो बढ़ाये औ बनाये बाल क्या।
क्या मुड़ाये और क्या दाढ़ी रखे॥ २॥

हैं भरी साध दाढ़ियाँ सीधी ।
बात हम हैं बता रहे ताड़ी ॥
सैकड़ों दाढ़ियाँ बँधी देखीं ।
देख लीं दाढ़ियाँ बहुत, फाड़ी ॥ ३ ॥

थपेड़े

लोग सबसे अमोल पूँजी को ।
क्यों बुरे ढंग से लुटाते हैं ॥
आबरू को घटा घटा करके ।
किसलिये दाढ़ियाँ घुटाते हैं ॥ ४ ॥

वैरियों से जी बचाते हैं वही ।
रंग जिन पर है न जीवट का चढ़ा ॥
जी बढ़ा जिनका न वैरों का बढ़े ।
क्या करेंगे वे भला दाढ़ी बढ़ा ॥ ५ ॥

लानतान

जब रही बार बार बन बनती ।
किसलिये बेतरह बढ़ी दाढ़ी ॥
जब मुड़ी नुच गई कटी उखड़ी ।
तब चढ़ी क्या रही, चढ़ी दाढ़ी ॥ ६ ॥

रंग बिगड़े रंग क्या लाती रही ।
आबरू का काल क्या होती रही ॥
रख सकी मुँह की अगर लाली नहीं ।
लाल दाढ़ी लाल क्या होती रही ॥ ७ ॥

क्यों कुढ़े जी न देखकर उसको ।
आँख उसपर न जाय क्यों काढ़ी ॥
लाल थी पूच लालसाओं से ।
जिस पके आम की पकी दाढ़ी ॥ ८ ॥

निराले नगीने

हो सकेंगी कभी न वह असली।
क्यों न कोई जतन करे लाखों॥
है बनावट हमें पसंद नहीं।
देख दाढ़ी बनी हुई आँखों॥९॥

जो कि करते सादगी को प्यार हैं।
कब रँगीलापन गया उनसे सहा॥
लोग रँगने में कसर करते नहीं।
रंग कब रंगीन दाढ़ी का रहा॥१०॥

बाहरी रूप रंग भावों ने।
भीतरी बात है बहुत काढ़ी॥
खुल भला क्यों न जाय सीधापन।
देख सीधी खुली हुई दाढ़ी॥११॥

आन बान

ऐब लगता है, भले ही तो लगे।
डाँट बतलावे बिपत गाढ़ी हमें॥
किस तरह से हम उसे काली करें।
मिल गई भूरी अगर दाढ़ी हमें॥१२॥

क्या करें जो बेकसर हों दूसरे।
और हममें हो भरी सारी कसर॥
क्यों जलें हम देखकर दाढ़ी बड़ी।
मिल गई छोटी हमें दाढ़ी अगर॥१३॥

वह भले ही कढ़े मगर उसने।
है न जी की कसर कभी काढ़ी॥
क्यों किसीको बड़ा समझ लें हम।
देख करके बहुत बड़ी दाढ़ी॥१४॥

अन्योक्ति

सब तरह की बनी सियाही में।
जाय सौ ढंग से न क्यों ढाली॥
पर सुपेदी उसे मिलेगी ही।
कौन दाढ़ी सदा रही काली॥१५॥

बाढ़ जो डाल गाढ़ में देवे।
तो भला किसलिये बढ़ी दाढ़ी॥
जो चढ़ी आँख पर किसीकी तो।
क्यों चढ़ाई गई चढ़ी दाढ़ी॥१६॥

ढाल में निज कुढंगपन के ढल।
वह भला किसलिये निढाल करे॥
और को डाल डाल उलझन में।
गोल दाढ़ी न गोलमाल करे॥१७॥

है भलाई वाँ ठहर पाती नहीं।
हो बुराई पर जहाँ माला चढ़ा॥
तो सुपेदी लोग हो जावे न क्यों।
रंग दाढ़ी पर अगर काला चढ़ा॥१८॥

सूरत

हितगुटके

जो न मरजाद रख सकें अपनी।
तो न बरबाद कर उसे देवें॥
जो बनाये न बन सके सूरत।
तो न सूरत बिगाड़ हम लेवें॥१॥

देख लें सबको सभीको लें समझ।
हैं यहाँ पर सब तरह की मूरतें॥
देख रोती सूरतें हिचकें न हम।
मुँह न बिगड़े देख बिगड़ी सूरतें॥२॥

काम सूरत-हराम कर न सका।
क्यों न बनती हरामियों की गत॥
जब कि सूरत बदल गई बिल्कुल।
किस तरह तब दिखा सके सूरत॥ ३॥

नोक झोंक

हो भले ही वह बहुत भद्दी बुरी।
लोग चाहे मुँह बनायें या बकें॥
बन गई जैसी, बनी है वैसिही।
हम भला सूरत बना कैसे सकें॥ ४॥

रंग लाई दूसरी रंगत नहीं।
औ लुनाई ने बनाई बावली॥
साँवले ही रंग में आँखें रँगी।
देख कर सूरत सलोनी साँवली॥ ५॥

जो कि जी को लुभा नहीं लेती।
वह नहीं है लुभावनी मूरत॥
जब नहीं है सुहावनापन ही।
तब कहाँ है सुहावनी सूरत॥ ६॥

जो न उसमें हैं दया की रंगतें।
जो न उसमें नेह-धारायें बहीं॥
तो लुनाई है लुनाई ही नहीं।
है भली सूरत भली सूरत नहीं॥ ७॥

भूल पायें न सूरतें भोली।
वे सदा आँख में रहें बसती॥
दिन हँसी खेल में बितायें हम।
सूरतें देखते रहें हँसती॥ ८॥

बेहतरी की बताइये सूरत।
बन गई गत उतर रही पत है॥
कर रहे हैं सवाल क्यों मुझसे।
सच तो यह है सवाल सूरत है॥६॥

गला

हितगुटके

सब दिनों उसका भला होगा नहीं।
जो कि औरों का नहीं करता भला॥
एक दिन उसका गला दब जायगा।
दूसरों का जो दबाता है गला॥१॥

तब बला आती न सिर पर किस तरह।
दूसरों पर जब कि लाते थे बला॥
क्यों गला तब जायगा रेता नहीं।
जब किसीका रेत देते हैं गला॥२॥

एक छोटा गुनाह होने पर।
जान ले लें न, मार दें, डाँटें॥
क्या हुआ दाँत काट लेने से।
किसलिये हम भला गला काटें॥३॥

है न भीतर और बाहर एक-सा।
तो रहे हम किसलिये बनते भले॥
मिल सका जो से अगर जी ही नहीं।
तो गले मिलने किसीके क्या चले॥४॥

जो भले थाले कलेजे में उमग।
छरहरे फैले हुए फूले फले॥
प्यार के पौधे लगा पाते नहीं।
तो लगाते हैं किसीको क्या गले॥५॥

प्यार से जो दिल हमारा हो भरा।
जो भलाई पर हमारी आँख हो॥
वार करने को उठें तो हाथ क्यों।
किस गले पर क्यों चले तलवार तो॥६॥

है मरे को न मारता कोई।
क्यों बिना यम बने बने जन यम॥
किसलिये ऐंठ दें गला ऐंठा।
क्यों गला घुट रहा मरोड़ें हम॥७॥

हम न सूखे गला, गला कतरें।
चिढ़ नमक क्यों छिड़क जले पर दें॥
है अगर हो गया गला भारी।
तो छुरी फेर क्यों गले पर दें॥८॥

जो कि पथ देख भाल कर न चला।
वह भला क्यों न ठोकरें खाता॥
जब गला फाड़ फाड़ चिल्लाये।
किस लिये तब गला न पड़ जाता॥९॥

भूल क्यों जाँय हम उचित बातें।
क्यों कहें सच न, बात क्यों गढ़ दें॥
क्यों गले बाँध कर गला बाँधें।
क्यों मिला कर गले, गले मढ़ दें॥१०॥

सुनहली सीख

जो हमें चोट ही चलाना है।
तो चलावें कुचाल पर चोटें॥
है गला घोंटना पसंद अगर।
तो गला हम गुमान का घोटें॥११॥

चाह दिखला, न चाह में डाले।
प्यार कर बैर किसलिये साधे॥
क्यों गले लग गले पड़े कोई।
मिल गले किसलिये गला बाँधे॥१२॥

जो भला बनता बला वह क्यों बने।
जो करे तर किसलिये वह दे जला॥
क्यों गला फूला बुरा फल दे हमें।
क्यों गले का हार कस देवे गला॥१३॥

नोक झोंक

चाहता है अगर सताना तो।
क्यों सताये न सौ बहाने से॥
बाँधने से न क्यों गला बँधता।
क्यों न दबता गला दबाने से॥१४॥

आज भी है धँसी कलेजे में।
काढ़ने से कहाँ कढ़ी गाँसी॥
जब कि वे फाँस हैं रहे हम को।
क्यों गले में न तो लगे फाँसी॥१५॥

प्यार के रंग में रँगा मैं हूँ।
काम साधे सदा सधा मेरा॥
क्यों गला छूटता गला पकड़े।
है गले से गला बँधा मेरा॥१६॥

वे कसें उतना कि जितना कस सकें।
छूट वह पावे न कर कोई कला॥
बात जब उतरी गले से ही नहीं।
तब भला कैसे खुले खोले गला॥१७॥

जब छुरी चल रही गले पर है।
क्यों कलेजा न तो तड़प जाता॥
हाथ उनका लहू भरा देखे।
क्यों हमारा गला न भर आता॥१८॥

दिल बहुत मल रहा हमारा है।
किस तरह एक कर इन्हें पायें॥
साथ हैं बेसुरे गले देते।
क्यों गले से गला मिला गायें॥१९॥

अन्योक्ति

जब कि सुर था बिगड़ बिगड़ जाता।
तब कहें क्यों, कि वह सुरीला था॥
जब कि रस कुछ रहा न गाने में।
तब भला क्या गला रसीला था॥२०॥

तब भला कैसे न बेचैनी बढ़े।
मौत से जब बेतरह खटकी रही॥
किस तरह से तब उतर पानी सके।
जब गले में साँस आ अटकी रही॥२१॥

रोग ने किसकी रगें ढीली न कीं।
औ दुखों ने कर दिया किसको न सर॥
है उसीसे जल उतर पाता नहीं।
जिस गले से कौर जाता था उतर॥२२॥

है तुमारा बहुत बुरा यह ढब।
है गला यह बहुत बुरा बाना॥
आप तो तू रहा बिगड़ता ही।
किसलिये है बिगाड़ता गाना॥२३॥

गरदन

लानतान

आज भी हैं बन्द आँखें वैसिही।
आज भी हमने न अपना पथ लखा॥
क्या न सिर पर बोझ भारी है लदा।
क्या न गरदन पर गया जूआ रखा॥ १॥

चौंकते हो देख कर तलवार क्यों।
जान से तो मान प्यारा है कहीं॥
और की गरदन बची तो क्या बची।
जब कि अपनी ही बची गरदन नहीं॥ २॥

ऐंठ गरदन वेतरह ऐंठी गई।
रह गई दो कौड़ियों की ही अकड़॥
हाथ गरदन पर अगर डाला गया।
क्यों न जाती आबरू गरदन पकड़॥ ३॥

क्यों न फंदे वुरे फँसायेंगे।
क्यों न हो जायगी लहू से तर॥
क्यों न गरदन फँसे, नपे, उतरे।
है नहूसत सवार गरदन पर॥ ४॥

हित गुटके

करनियों के फल नहीं किसको मिले।
दुख सहा कर दुख नहीं किसने सहे॥
क्या हुआ उनकी अगर गरदन उड़ी।
और की गरदन उड़ाते जो रहे॥ ५॥

मुँह दिखाये तो दिखाये किस तरह।
जब किसीकी आबरू ले ली गई॥
किस तरह गरदन भला नीची न हो।
जब कि गरदनिया किसीको दी गई॥ ६॥

जाति औ देस जाय क्यों तन बिन।
क्यों निछावर करें न अपना तन॥
कुछ कभी तो न पा सकेंगे हम।
जो नपाये नपी नहीं गरदन॥७॥

अपने दुखड़े

है कुदिन मेरा सुदिन होता नहीं।
है बला सिर की नहीं टाले टली॥
किस तरह गरदन बचाने से बचे।
कब नहीं तलवार गरदन पर चली॥८॥

थामने से थम न बेताबी सकी।
सामने जब मौत की आई घड़ी॥
चढ़ गईं आँखें, पलक थिर हो गई।
ढल पड़ा आँसू ढलक गरदन पड़ी॥९॥

नोंकझोंक

बढ़ गई बेएतबारी बेतरह।
है नहीं बेएतनाई अब ढकी॥
तब भला दिल हिल सकेगा किस तरह।
जब हिलाये हिल नहीं गरदन सकी॥१०॥

हो किसीको मानते सनमानते।
हो किसीको बेतरह तुम तानते॥
जान कर भी आज तक जाना नहीं।
हो तुम्हीं गरदन हिलाना जानते॥११॥

चाहिये क्या सुन विनय हिलना उसे।
रीझ जिसमें रंग ला होती मिली॥
जब कि अपने आप वह हिलने लगी।
तब अगर गरदन हिली तो क्या हिली॥१२॥

बाँह गरदन में पड़े तब किस तरह।
बन गये जब आँख की हम किरकिरी॥
लोग गरदनिया हमें हैं दे रहे।
आपकी गरदन नहीं फेरे फिरी॥१३॥

कब न गरदन रहे झुकाते हम।
आपकी उठ सकी नहीं गरदन॥
हैं अगर आप तन रहे तन लें।
हम सकेंगे न तन गये भी तन॥१४॥

चाल टेढ़ी है बहुत लगती भली।
चाह है कह बात टेढ़ी जी भरें॥
आँख टेढ़ी और टेढ़ी हैं भवें।
क्यों भला टेढ़ी न वे गरदन करें॥१५॥

कौन सी हमने नहीं साँसत सही।
वे सितम करते नहीं हैं हारते॥
बेतरह गरदन हमारी है दबी।
मार लें गरदन अगर हैं मारते॥१६॥

हैं किसे बेचैन कर देती नहीं।
धारवाली छूरियाँ तन पर रखी॥
क्यों न गरदन एक दिन उड़ जायगी।
क्या उठी तलवार गरदन पर रखी॥१७॥

कंठ

देवदेव

आपके दरपर पहुँच करके प्रभो।
हैं बड़ा ही दीन भूखा जा रहा॥
दीजिये दो घूँट पानी ही पिला।
बेतरह है कंठ सूखा जा रहा॥ १॥

अपने दुखड़े

रंग में भंग हो गया जो हो।
किस तरह तो उमंग दिखलावें ॥
चाव पावें कहाँ बिना चित के।
गीत क्यों कंठ के बिना गावें ॥ २ ॥

बेतरह है बन्द होता जा रहा।
हैं गये वे भी सहम, थे लंठ जो ॥
कुछ भरोसा खुल न सकने का रहा।
भाग खुल जाये खुले अब कंठ जो ॥ ३ ॥

सुनहली सीख

भूल जावें उन कलामों को न हम।
जो कि सचमुच हैं कमालों में सने ॥
कंठ रखना चाहिये जिनको उन्हें।
कंठ रक्खें कंठ जो रखते बने ॥ ४ ॥

बोलती मीठा रहें बोलें अगर।
बोल कर बेढंग, क्यों दें दिल हिला ॥
आप कोयल-कंठियाँ यह सोच लें।
किसलिये है कंठ कोयल सा मिला ॥ ५ ॥

बात बात में बात

दूसरे गुम रास्ता अपना करें।
हम करेंगे रास्ता अपना न गुम ॥
किस तरह तुमको कबूतर सा कहें।
हो कबूतर-कंठ जैसे, कंठ तुम ॥ ६ ॥

जन उठे कान के रसायन हैं।
सुर लयों से भरे सुरीले कंठ ॥
सींचते कंठ हैं अलापों का।
रस बरसते हुए रसीले कंठ ॥ ७ ॥

लंठ का लंठपन नहीं छूटा।
कूढ़ को कूढ़पन सदा भाया॥
कुछ कहे कंठ तब भला कैसे।
कंठ ही फूट जब नहीं पाया॥८॥

भाग तब किस तरह भले फल दे।
जब रहे हम न फूलते फलते॥
वे भला कंठ से लगें कैसे।
कंठ पर तो कुठार हैं चलते॥९॥

अन्योक्ति

राग का रंग तब जमे कैसे।
जब कि सुर हो न ढंग में ढाला॥
पा सके क्यों अलाप आलापन।
जब कि होवे न कंठ ही आला॥१०॥

जीभ है पास वह वही कह ले।
बात जिसको पसंद जो आवे॥
क्यों भला, कंठ से सुरीले को।
बेसुरे संख सा कहा जावे॥११॥

चंद जिसका कि है सगा भाई।
हाथ में हैं जिसे कि हरि रखते॥
कंठ! उस संख बीर संगी की।
किसलिये हो बराबरी करते॥१२॥

सुर

अपने दुखड़े

किसलिये जी की न गाँठें खोलते।
एकता का रंग जो पहचानते॥
एक सुर से बोलते तो क्यों नहीं।
सुर अगर सुर से मिलाना जानते॥१॥

बात जी में जो न होती दूसरी।
ताल कैसे ठीक रह पाता नहीं॥
एक सुर से चाहते गाना अगर।
सुर मिले तो सुर बदल जाता नहीं॥ २॥

सुनहली सीख

मुँह न ताकें काम पड़ने पर कभी।
काम जितना हो सके उतना करें॥
जो लगाये तान लग पाती नहीं।
तानपूरे को उठाकर सुर भरें॥ ३॥

हो गये बेमेल रस कब रह सका।
है जहाँ पर मेल रस भी है वहीं॥
किस तरह से तब भला रंगत रहे।
जब हुई सुर ताल से संगत नहीं॥ ४॥

फब न वैसे सके कहीं पर भी।
निज जगह पर फबे सभी जैसे॥
लग सके सुर नहीं जहाँ पर जो।
सुर भला वह वहाँ लगे कैसे॥ ५॥

तब भला क्या अलापने बैठे।
जब नहीं था अलापने आया॥
तब कहाँ रह सका सुरीलापन।
जब न सुर ठीक ठीक लग पाया॥ ६॥

अन्योक्ति

धूल में मिल गया रसीलापन।
जो न सूखा हुआ गला सींचा॥
तब भला किसलिये हुए ऊँचे।
सुर! अगर देखना पड़ा नीचा॥ ७॥

गाना

देवदेव

पेट के ही पसंद हैं धंधे।
लोक-हित भूल कर नहीं भाया॥
गीत गाते गुमानियों का हैं।
गुन तुमारा कभी नहीं गाया॥ १॥

ताकते हैं न दूसरों का मुँह।
और के द्वार पर नहीं जाते॥
बस हमारे तुम्हीं रहे सरवस।
यश किसी और का नहीं गाते॥ २॥

तब भला किसलिये बजा बाजा।
जब न भर भाव में बहुत भाया॥
जब सराबोर था न हरि-रस में।
गीत तब किसलिये गया गाया॥ ३॥

तुम जिधर हो उधर चलें कैसे।
मन हमारा अगर नहीं जाता॥
किस तरह गा सकें तुमारा गुन।
गुन हमें मानना नहीं आता॥ ४॥

तुम अगर झाँकी दिखा देते हमें।
किस तरह से तो कुआँ हम झाँकते॥
ताकते तब क्यों हमारी ओर तुम।
जब पराया मुँह रहे हम ताकते॥ ५॥

तब उसे माना कहाँ सबमें रमा।
जब कि मनमाना सितम ढाते रहे॥
जब दिया आराम जीवों को नहीं।
राम का तब गीत क्या गाते रहे॥ ६॥

सुर हुआ बेसुरा गला बिगड़ा।
लय गई लोट नाम सुन उसका ॥
गीत पर गीत हैं गये गाये।
लोग हैं गा सके न गुन उसका ॥ ७ ॥

निराली धुन

भर लहू सूखती हुई रग में।
मर रही जाति को जिलाते हैं॥
गीत गा आनबान में डूबे।
तान पर तान जब लगाते हैं ॥८॥

मोहते किसको न मीठे सुर मिले।
चाव, मीठे गान हाथों से पला ॥
बात मीठी है बड़ी मीठी मगर।
है मिठाई में बड़ा मीठा गला ॥ ९ ॥

गिटकिरी जो हो न सुन्दर रुचि-भरी।
तान में जो हो न हित-ताना तना ॥
जो बना पाता न जन का जन्म हो।
तब अगर गाना बना तो क्या बना ॥१०॥

ठीक ठेका हो धुनें भी ठीक हों।
और बँधता ही रहे सम का समा ॥
ताल आता ताल पर होवे मगर।
जब जमा तब जी जमे गाना जमा ॥११॥

मिल न पाया सरंगियों का सुर।
बज रहा है मृदंग मनमाना ॥
साजवाले बिगाड़ते जब हैं।
क्यों बिगड़ जायगा न तब गाना ॥१२॥

बन गया मस्त मन, गया दिल खिल।
हो गया पुर उमंग पैमाना ॥
खुल गई गाँठ गाँठवालों की।
गठ गये लोग, सुन गठा गाना ॥१३॥

हितगुटके

है जिसे मनमानियों की सूझती।
मानता है वह किसीका कब कहा ॥
वह भला कैसे बनाने से बने।
जो सदा गाने बजाने में रहा ॥१४॥

नौजवानों के गले पर चाल चल।
वह चलाता ही रहा अकसर छुरा ॥
है बुरा, वे लोग जो उसको सुनें।
है बुरा गाना बना देता बुरा ॥१५॥

गुन दिखाकर वहाँ करेंगे क्या।
हो जहाँ पर गया बुरा माना ॥
किरकिरी आँख की बनें न किसी।
हम सुना गिटकिरी भरा गाना ॥१६॥

पड़ कभी बेकारियों के पेंच में।
कर कभी मक्कारियों का सामना ॥
आज दिन हैं नाचते गाते सभी।
हो भले ही नाचना गाना मना ॥ १७ ॥

हम न सुख की चाह से बेबस बनें।
बेतरह उसके बिचारों से डरें ॥
मोह जायें क्यों हरिन सम तान पर।
क्यों बधिक के बान से बिध कर मरें ॥१८॥

बात बात में बात

तान किसको मोह लेती है नहीं।
है सुरों का कौन दीवाना नहीं॥
तब भला हमने सुना तो क्या सुना।
सुन सके सुन्दर अगर गाना नहीं॥ १६॥

कौन जादू के हुए वह भी चला।
बच गया धीरज हमारा जो रहा॥
बावला बन जा रहा है मन कहाँ।
आज क्या गाना कहीं है हो रहा॥२०॥

रागिनी की रंगतें बिगड़ें नहीं।
टूटने पाये न रागों का धुरा॥
हों न बेताले समय भूलें नहीं।
बेसुरे गाना न गायें बेसुरा॥२१॥

दीन दुखियों पर दया आई नहीं।
चूस लेने को चुड़ैलों को चुना॥
कब खड़ा कर कान, दुखड़ा सुन सके।
हो खड़े, गाना बहुत उखड़ा सुना॥२२॥

दुख-घटा है घिरी हुई सिर पर।
हैं नयन जल सदा बरस जाते॥
बेतरह जल रहा कलेजा है।
ऊबते हैं मलार हैं गाते॥२३॥

तरह तरह की बातें

रीझ जायें हम निराली तान पर।
बात या तानें, भरी जी में गुनें॥
जब उमंगें ही हमारी पिस गईं।
क्या उमंगों से भरा गाना सुनें॥२४॥

काम अपना सौ तरह से साधना।
कौन ऐसा है जिसे भाता नहीं॥
है सुनाता कौन मतलब की नहीं।
कौन अपनी ही सदा गाता नहीं॥२५॥

हम पुराने ढंग पर ही मस्त हैं।
गीत भी हमने पुराने ही चुने॥
है नयापन की जिसे धुन लग गई।
वह नई धुन का नया गाना सुने॥२६॥

वे सुनें डींग हाँक करके ही।
है जिन्हें तानसेन बन जाना॥
भीख लें माँग कंठ औरों से।
सीख लें सरगमों बिना गाना॥२७॥

किसलिये तब तान तुम हो ले रहे।
जब गले के हैं नहीं सुर भी भले॥
बान जब थी गुनगुनाने की पड़ी।
किसलिये गाना सुनाने तब चले॥२८॥

गीत गाया जा सके तब किस तरह।
बेतरह जब गत बनी जाती रही॥
जानकर भी यह नहीं जाना गया।
है न गाना गुनगुनाना एक ही॥२९॥

गोरखधंधा

क्यों खिले फूल, क्यों हँसे, महँके।
रंग लाये, झड़े, गिरे, सूखे॥
सिर धुने भी न धुन मिली इसकी।
लोग हैं गीत गा रहे रूखे॥३०॥

सूरतें जो दिखा पड़ीं कितनी।
क्या हुईं वे, कहाँ गईं खोई॥
गुनगुनाते हुए मिले कितने।
गीत यह गा सका नहीं कोई॥३१॥

आज हैं मस्त और ही धुन में।
अब न है राग रंग मनमाना॥
है लगाना न तान का आता।
अब गया भूल गीत का गाना॥३२॥

आस है अब और पाने की नहीं।
जो हमें पाना रहे हम पा चुके॥
है न कोई गीत गाने से बचा।
जो हमें गाना रहे हम गा चुके॥३३॥

कंधा

हितगुटके

बाँट में जिनके बनावट है पड़ी।
बन सके कब वे दिखावट से भले॥
पाँव से जिसको कुचलते ही रहे।
आज क्या कंधा उसे देने चले॥३४॥

किसलिये कोई बहकता है बहुत।
बाज भी है एक दिन बनता बया॥
आसमाँ जिसने उठा सर पर लिया।
वह उठाया चार कंधों पर गया॥३५॥

जब घटे इतने कि मिट्टी में मिले।
तब अगर हम बढ़ गये तो क्या बढ़े॥
आँख पर कितनी चढ़े तब किसलिये।
चल पड़े जब चार कंधों पर चढ़े॥३६॥

बेतरह कंधे करोड़ों थे दबे।
बारहा जिनके सितम-जूवे तले॥
वे भरे बेचारपन लाचार बन।
एक दिन थे चार कंधों पर चले॥४॥

तब लड़ाई किसलिये करने चलें।
काँप जब थरथर उठें रन के लखे॥
हम अगर कर वार पाते हैं न तो।
क्या हुआ तलवार कंधे पर रखे॥५॥

आनबान

दूसरे हैं ढालते ढाला करें।
दूसरों के ढंग में हम क्यों ढलें॥
लोग क्यों अंधा बनाते हैं हमें।
क्यों पकड़ कंधा किसीका हम चलें॥६॥

कसरती हैं, न है कसर हममें।
है भला सुधि किसे न धंधे की॥
हम न अंधे हैं आप ही सँभलें।
देख ली है उड़ान कंधे की॥७॥

जाति-सेवा

पाँव सेवा-पंथ में जो रख पड़े।
सब तरह का भेद तो देवें उठा॥
पाँव जिसके बेतरह हों भर गये।
क्यों न कंधे पर उसे लेवें उठा॥८॥

नाम सेवा का न वे लें भूलकर।
देख दुख जिनके न दिल हों हिल गये॥
बोझ उनपर रख बनें अंधे नहीं।
बेतरह कंधे अगर हों छिल गये॥९॥

बाँह

देवदेव

यह दया कर बताइये हमको।
दुख दरद क्यों गये न टाले हैं॥
आपकी बाँह है बहुत लम्बी।
आप ही चार बाँहवाले हैं॥ १॥

तरह तरह की बातें

हैं बहुत ही लुभावनी लगती।
चौगुनी कर सुखों भरी चाहें॥
दल-भरी बेलि, फल-भरे पौधे।
जल-भरे मेघ, बल-भरी बाँहें॥ २॥

बन गुमानी गुमान के गढ़ में।
हौसले बाँध बाँध मत बैठो॥
मिट सहसबाँह बीसबाँह गये।
बाँह को ऐंठ ऐंठ मत ऐंठो॥ ३॥

दूर जिसने कर न दी कमहिम्मती।
क्यों न वह मरदानगी मर कर मुई॥
जो नहीं उसने पछाड़ा बाघ को।
बाँह लम्बी जाँघ तक तो क्या हुई॥ ४॥

वे नहीं ब्योंत सैकड़ों करके।
बोझ सिर का बना सके हलका॥
जो न पग पर खड़े हुए अपने।
है जिन्हें बल न बाँह के बल का॥ ५॥

कलाई

नोकझोंक

तू बुरे फँस गया कहूँ तो क्या।
क्यों हुई गत बुरी बुरी मेरी॥
रात भर कल हमें नहीं आई।
है कलाई मुरुक गई तेरी॥ १॥

बात बिगड़ी बनी बनाई सब।
है भलाई न बेहयाई में॥
है बुरी बात ही बला लाई।
मोच आई अगर कलाई में॥ २॥

सुनहली सीख

कब कड़ी वह पड़ी नहीं तुझ पर।
कब पड़ा तू नहीं पिसाई में॥
सन न, रम बार बार उसमें तू।
है न नरमी नरम कलाई में॥ ३॥

तू कलाई समझ किये लालच।
कब नहीं साँसतें पड़ीं सहनी॥
कुछ न रक्खा चमक दमक में है।
क्यों चमकदार चूड़ियाँ पहनीं॥ ४॥

तरह तरह की बातें

सोच उसकी सके न जब नरमी।
तब बिचारी पनाह पाती क्यों॥
तोड़ते जब रहे कड़े पंजे।
तब कलाई न टूट जाती क्यों॥ ५॥

हम बँधायें मगर बँधाने से।
बँध सकीं हिम्मतें भला किसकी॥
वह उतर कब सका अखाड़े में।
हो कलाई उतर गई जिसकी॥ ६॥

था भला दो चार लेते पैन्ह तो।
चूड़ियाँ क्या मिल न पाईं माप की॥
आपके मरदानापन की है सनद।
औरतों की-सी कलाई आपकी॥ ७॥

हथेली

बात बात में बात

है भली कब उतावली होती।
बूझ को बावली सकी वह कर॥
हम जमाय मगर जमाने से।
जम न सरसों सकी हथेली पर॥ १॥

रंग में मरदानगी के जो रँगे।
वे भला नामरदियों से कब घिरे॥
बाँध जिसने देस-हित सेहरा लिया।
वे हथेली पर लिये ही सिर फिरे॥ २॥

सोच में देख और को डूबा।
आँख कैसे भला न आई भर॥
किसलिये जी जला नहीं देखे।
गाल रक्खे हुए हथेली पर॥ ३॥

वह अनूठा हो नया हो लाल हो।
पर निरालापन नहीं उसमें रहा॥
क्या बड़प्पन मिल हथेली को सका।
जो उसे पत्ता गया बड़ का कहा॥ ४॥

उँगली

हितगुटके

तो बढ़े किस तरह न कड़वापन।
बात कड़वी अगर गई उगली॥
तो उठेंगी न उँगलियाँ कैसे।
आँख में की गई अगर उँगली॥ १॥

बैठ पाये न जो बिठाने से।
लोग तो बात को बिठायें क्यों॥
जो न हम आँख खोल उठ बैठें।
लोग उँगली न तो उठायें क्यों॥ २॥

क्यों भला हर बात में सीधे बनें।
काम चलता है सिधाई से कहीं॥
जब कढ़ा टेढ़ी उँगलियों से कढ़ा।
घी कढ़ा सीधी उँगलियों से नहीं॥ ३॥

बात क्या हम भागवालों की कहें।
हैं उन्हींके हाथ की कल बिजलियाँ॥
कब नहीं घी के दिये घर में बले।
कब रहीं घी में न पाँचों उँगलियाँ॥ ४॥

जो न अकड़े, दे सहारा दुख पड़े।
चाहिये जायें न हम उससे अकड़॥
क्यों पकड़ जायें पकड़ पकड़े बुरी।
लें न उँगली को पकड़ पहुँचा पकड़॥ ५॥

तो बुरी चाल भी कभी न चलें।
चल सकें हम अगर न चाल भली॥
दाल क्यों इस तरह गलायें हम।
जो गले हाथ पाँव की उँगली॥ ६॥

दिल के फफोले

देवते जिनके दबावों से दबे।
दबदबे जिनके हिँडोलों में पले॥
देख दबते औ दबकते अब उन्हें।
दाबनी उँगली पड़ी दाँतों तले॥७॥

सामने जो कभी न ताक सके।
मान हैं आज दिन घटाते वे॥
पाँव को चाट चाट जो जीये।
हैं अँगूठा हमें चटाते वे॥८॥

तर कलेजा वह करेगा किस तरह।
देख पाया जो न आँखों की तरी॥
भूल देगा वह हमारी भूल क्यों।
भर गया जो देख कर उँगली भरी॥९॥

तब भला साँसत न होती किस तरह।
जब कि है करतूत वैसी की गई॥
हाल तब बेहाल का कैसे सुनें।
कान में जब डाल उँगली ली गई॥१०॥

लताड़

मत बहँक कर बात बेसमझी कहो।
लो समझ, हो बेसमझ कहते किसे॥
नाच सौ सौ वह नचाता है तुम्हें।
उँगलियों पर तुम नचाते हो जिसे॥११॥

जो न है जूठ वह न जूठ बने।
हो भली चाल की नहीं चुगली॥
मान जाओ करो न मनमानी।
है मना मुँह में डालना उँगली॥१२॥

दूसरों की सुध करोगे किस तरह।
है तुम्हें सुध एक अपने कौर की॥
चावना है तो चने चाबा करो।
चावते हो उँगलियाँ क्यों और की॥१३॥

नोकझोंक

जो निगल तुम सको निगल देखो।
हैं किसी बात में नहीं हम कम॥
क्या न उसको निकाल लेवेंगे।
डाल करके गले में उँगली हम॥१४॥

आप तेवर बेतरह बदलें नहीं।
क्या हुआ जो लग गये काँटे कई॥
देखिये जाये कलेजा छिद नहीं।
छिद गई उँगली बला से छिद गई॥१५॥

जो चलें तो चाल ऐसी ही चलें।
रह सके जिससे कि पतपानी बचा॥
उँगलियों पर क्या नचावेंगे हमें।
आप अपनी उँगलियाँ लेवें नचा॥१६॥

हम भला जी किसलिये छोटा करें।
एक क्या बन जाँयगी कल ही कई॥
जो अँगूठी गिर गई गिर जाय तो।
है नहीं उँगली हमारी गिर गई॥१७॥

छानबीन

सब दिनों चमका सितारा एक का।
एक को घेरे रही नित बेकसी॥
एक-से हो जाँयगे कैसे सभी।
हैं नहीं सारी उँगलियाँ एक-सी॥१८॥

हैं यहीं पर कमाल के पुतले।
औ बहुत से यहीं गये-घर हैं ॥
दम भरें तब बराबरी का क्यों।
जब न सब उँगलियाँ बराबर हैं ॥१९॥

दीन को नीचा दिखाता है सभी।
कौन मानेगा नहीं इसको सही ॥
देख लो छोटी जिसे हैं कह रहे।
है वही उँगली गई कानी कही ॥२०॥

एक चमड़े औ लहू से हैं बनी।
एक-सी ही हैं मुलायम औ कड़ी ॥
पोर सब में है दिखाती तीन ही।
हों भले ही उँगलियाँ छोटी बड़ी ॥२१॥

तरह तरह की बातें

प्यार की मनभावनी तसवीर को।
क्या न धब्बों से बचाना चाहिये ॥
लग गई हैं तो लगी आँखें रहें।
पर नहीं उँगली लगाना चाहिये ॥२२॥

इस जगत की सब निराली सनअतें।
हैं समझ औ सूझ से बरतर कहीं ॥
पारखी कितने परख करके थके।
पर सके रख आज तक उँगली नहीं ॥२३॥

जो बड़ों के दबे नहीं दबते।
लोग देखे गये कहाँ ऐसे ॥
दब गया हाथ जब दबाने से।
तब दबेंगी न उँगलियाँ कैसे ॥२४॥

बात बेसिर-पैर की की जाय क्यों।
खोलने से क्यों नहीं आँखें खुलीं॥
क्या रहा धोता, न जो जल धो सका।
धुल न पाईं उँगलियाँ तो क्या धुलीं॥२५॥

जो अनूठी रंगतों में ही रँगी।
जो कि काला छींट छूते भी डरी॥
जी गया जल, आँख में जल आ गया।
देख उस उँगली को काजल से भरी॥२६॥

कट गई, काली बनी, लाली गँवा।
हो सके तो काम उँगली कर भले॥
पा सकी क्या आँख में सुरमा लगा।
मिल सका क्या दाँत में मिस्सी मले॥२७॥

बात अपनी याद कर मत भूल जा।
क्या बुरी गत थी नहीं तेरी हुई॥
हाल चुभने का तुझे मालूम है।
किसलिये उँगली चुभाती है सुई॥२८॥

काम करता न कौन है अपना।
जी करे तो चुगुल करे चुगुली॥
काम जिससे लिया इशारा का।
क्यों इशारा करे न वह उँगली॥२९॥

एक भी तसवीर ऐ उँगली बड़ी।
आँकने से है नहीं तेरे अँकी॥
बात रह रह यह खटकती है हमें।
क्यों गिरह खोले न तेरे खुल सकीं॥३०॥

कान कितनों का कतरती ही रही।
लिख कतर-ब्योंतों-भरी कितनी सतर ॥
काम देती जब कतरनी का रही।
तब भला उँगली न क्यों जाती कतर ॥३१॥

नख (नँह)

अपने दुखड़े

है दिनों का फेर या कमहिम्मती।
जो लड़ाने से नहीं जी लड़ सका ॥
हम गड़ायें तब भला कैसे उसे।
नँह गड़ाने से नहीं जब गड़ सका ॥ १ ॥

जो समझ बूझ काम करते तो।
किस तरह बैर-बीज वह बोता ॥
क्या मिला कान के कतरने से।
था भला नँह कतर दिया होता ॥ २ ॥

तरह तरह की बातें

टूटने कटने उखड़ने के लिये।
जो कढ़ें तो बाल-सा हम क्यों कढ़ें ॥
बाढ़ जिसकी गाढ़ में है डालती।
जो बढ़ें तो हम नखों-सा क्यों बढ़ें ॥ ३ ॥

तब भरें तो पैंतरे कैसे भरें।
पिंडलियाँ जब थरथराती ही रहीं ॥
तब भला तलवार मारें किस तरह।
ताब जब नँह मारने की भी नहीं ॥ ४ ॥

क्या करेंगे वे हमारा सामना।
देख कर जो दूध-फोत्रों को भगे॥
क्या लगावेंगे उन्हें तलवार हम।
दाँत जिनके लग लये नँह के लगे॥ ५॥

हानि पहुँचाना बुरों की बान है।
गाड़ियों का क्या बिगाड़ा चहों ने॥
क्या कतरनी का बिगाड़ा पान ने।
क्या नहरनी का बिगाड़ा नँहों ने॥ ६॥

जो कहीं पंख बिल्लियाँ पातीं।
तो उजड़ता जहान का खोता॥
क्यों हमें शेर - से मिलें पंजे।
क्योंकि गंजे को नँह नहीं होता॥ ७॥

क्यों न सचलें बढ़ चलें चोखे बनें।
है भला छोटे बड़े होते कहीं॥
क्यों हमारे नख न हों तीखे बहुत।
पर सकेंगे बघनँहे वे बन नहीं॥ ८॥

धन के मटके दौड़ उन्होंने।
हैं दोनों हाथों से लूटे॥
इसीलिये दौलतवालों के।
नँह होते हैं टूटे फूटे॥ ९॥

—: ❀ :—

चुटकी

हितगुटके

वे उतर सकते नदी में भी नहीं।
बात से ही जो समुन्दर तर सके॥
कर सकेंगे काम वे कोई नहीं।
काम जो चुटकी बजाते कर सके॥ १॥

रुच गया है मारना मरना जिन्हें।
क्या उन्हें जो मन्न किसीका जाय मर॥
चोट जी को लग रही है तो लगे।
लोग लेलें ले सकें चुटकी अगर॥ २॥

वे जम्हाते हैं जम्हाते तो रहें।
जाँयगे गिर चापलूसी के किये॥
क्यों न चुटकी माँग करके ही जियें।
हम भला चुटकी बजायें किसलिये॥ ३॥

क्यों जवाब उसको टका-सा दे दिया।
हाथ में हैं भाग से होते टके॥
किसलिये डाँटा, लगा चाँटा दिया।
दे अगर आटा न चुटकी भर सके॥ ४॥

चोट खाकर किसलिये पीछे हटे।
चोटियाँ यों हीं उखड़ती हैं कहीं॥
फिर बिठायें औ बिठाते ही रहें।
बैठ पाती है अगर चुटकी नहीं॥ ५॥

दिन सदा ही एक-सा रहता नहीं।
मंगतों को चाहिये देना हमें॥
देखकर चुटकी किसीको माँगते।
चाहिये चुटकी नहीं लेना हमें॥ ६॥

सुनहली सीख

रोटियों के हैं जिन्हे लाले पड़े।
सुध उन्हींकी चाहिये लेना हमें॥
जो पराया माल चट करते नहीं।
चाहिये चुटकी उन्हें देना हमें॥७॥

बावलापन बाँकपन बेहूदपन।
हैं हमें हित से लड़ाना चाहते॥
है हमारी चूक हम उनको अगर।
चुटकियों में हैं उड़ाना चाहते॥८॥

टाँकने में काहिली जब की गई।
तब टँके तो ठीक कुछ कैसे टँके॥
तो भला पूरी पड़ेगी किस तरह।
जो नहीं चुटकी लगा पूरी सके॥९॥

भीख क्यों माँगे मरे तो जाय मर।
क्यों किसीके भी बुरे तेवर खले॥
चुटकियों की चोट जो लगती रही।
किसलिये तो माँगने चुटकी चले॥१०॥

तरह तरह की बातें

हम रहेंगे प्यार करते ही सदा।
तुम भले ही प्यार हमको मत करो॥
हम बनेंगे क्यों, बनो तो तुम बनो।
हम भरेंगे दम, तुम्हीं चुटकी भरो॥११॥

आज तो चोट बेतरह चलती।
हम सभी लोग चोट दे देते॥
तुम उन्हें कुछ अजीब चेटक कर।
चुटकियों में अगर न ले लेते।१२।

चुल्लू

देवदेव

सोचते हो तो सकोगे सोच क्या।
सोच कर उसको जगत सारा थका॥
मत बनो उल्लू न उल्लूपन करो।
कौन चुल्लू में समा सागर सका॥ १॥

हितगुटके

सोचिये कौर क्यों किसी मुँह का।
जाय, कर सैकड़ों सितम छीना॥
है यही काढ़ना कलेजे का।
है यही चुल्लुओं लहू पीना॥ २॥

प्यार का पौधा पनपता किस तरह।
जब रहें हम सींचते पल पल नहीं॥
किस तरह से तब मिले दल फूल फल।
दे सके जब एक चुल्लू जल नहीं॥ ३॥

लानतान

ऐब छिपता है छिपाने से नहीं।
सर करेगी एक दिन कोई कसर॥
क्यों न अपने आप उल्लूपन खुले।
आप चुल्लू में हुए उल्लू अगर॥ ४॥

बाप मा का क्यों भरेंगे आप दम।
जब गये दम तोड़कर वे लोग भर॥
भर सके तो क्या भला दम भर सके।
दे सके जल भी न चुल्लू भर अगर॥ ५॥

हम कपूतों की कपूती क्या कहें।
क्या नहीं उनके लिये खोना पड़ा॥
हाथ है धोना पड़ा मरजाद से।
आज हमको चुल्लुओं रोना पड़ा॥ ६॥

पंजा

हितगुटके

हों बली तो बली भले ही हों।
क्यों करें मार मार सिर गंजा॥
मोड़ते क्यों फिरें किसीसे मुँह।
तोड़ते क्यों फिरें नरम पंजा॥ १॥

है कमीनापन कमी से ही भरा।
कब न अंधापन रहा अंधेर में॥
पेर दें तो क्यों किसीको पेर दें।
फेर कर पंजा पड़ें क्यों फेर में॥ २॥

संग बन कर पीस क्यों देंगे उन्हें।
जब हमें प्यारे बहुत ही हैं सगे॥
उँगलियों का बेतरह जब लाड़ है।
तब भला पंजा लड़ाने क्यों लगे॥ ३॥

बंधनों में प्यार के ही बँध गये।
हैं पराये भी बने परिवार के॥
रीझता है प्यार से ही लोक-प्रभु।
कौन पंजे में नहीं है प्यार के॥ ४॥

लताड़

चुस गया लोहू कलेजा कढ़ गया।
नुच गया तन क्या समय के फेर से॥
बात ही यह थी शरारत से भरी।
क्यों गया पंजा लड़ाया शेर से॥ ५॥

११

वीरता कब बाँट में उनके पड़ी।
बाल जिनके बाँकपन में हैं पके॥
ले सकें वे लोग लोहा किस तरह।
जो कभी पंजा नहीं हैं ले सके॥ ६॥

तरह तरह की बातें

देखिये पंजा मिला कर देखिये।
दून की बातें कहीं तो क्यों कहीं॥
कौन पंजा पत्थरों से है बना।
ताश में क्या ईंट का पंजा नहीं॥ ७॥

जो हमें कुछ मिल गया तो क्या मिला।
मान औ मरजाद के क्यों हों गिले॥
कौन सिर गंजा करायेगा भला।
एक क्या दस बीस पंजा के मिले॥ ८॥

हाथ आईं बल-भरी बाहें जिन्हें।
हौसले भी साथ जिनका दे गये॥
कब चले वे लोग पंजों के न बल।
कब भला पंजा नहीं वे ले गये॥ ९॥

सिर पर है गरूर की गठरी।
सकें किस तरह सीधे चल वे॥
हैं तन बल धन जन बलवाले।
चलें क्यों न पंजों के बल वे॥१०॥

वह बिल्कुल है सीधा सादा।
छू न गया है छक्का पंजा॥
भला तोड़ दें क्यों उसका जी।
क्यों मरोड़ दें उसका पंजा॥११॥

जो लड़े तो सिंह से कैसे लड़े।
क्यों हरिन सब साँसतें लेवे न सह ॥
मिल सका जिसको कि पंजा ही नहीं।
वह भला पंजा चलावे किस तरह ॥१२॥

मूका

हितगुटके

खीजने पर भी रहें हम आदमी।
धार में ही आदमीयत की बहें ॥
बूक लें बूका अगर हैं चाहते।
पर न मुँह पर मारते मूका रहें ॥ १ ॥

चंद मामूली मलालों के लिये।
बारहा भरमार चूकों की हुए ॥
दूसरा मारे न मारे आप हम।
मर मिटेंगे मार मूकों की हुए ॥ २ ॥

कर सकेगा कुछ न छूमन्तर वहाँ।
है जहाँ पर आ रही छन छन बला ॥
है जहाँ गोली दनादन चल रही।
क्या करेंगे हम वहाँ मूका चला ॥ ३ ॥

आप हैं खा गये अगर मुँह की।
जाय मुँह पर न किसलिये थूका ॥
मुँह खुलेगा नहीं, अगर होगा।
आपका मुँह व आपका मूका ॥ ४ ॥

मान मरजाद से न मुँह मोड़ें।
कर हमें दें कमीनपन कम क्यों॥
जब रहें मारते रहें मूका।
मुक्कियाँ मारते रहें हम क्यों॥५॥

नोकझोंक

दो हमें महरूम कर, मुँह तोड़ दो।
रंगतों में प्यार की हम तो रँगे॥
तुम अँगूठा तो दिखाते ही रहे।
अब हमें मूका दिखाने क्या लगे॥६॥

मूठी

अपने दुखड़े

पल सके तो पेट कैसे पल सके।
कब कमाई तंजियाँ खोती नहीं॥
हो सके तब किस तरह चूल्हा गरम।
जब कि मूठी ही गरम होती नहीं॥१॥

जब किसीके हाथ में कोई पड़ा।
दैव ने उसको तभी दुख दे दिया॥
तब चटायेगा अँगूठा क्यों नहीं।
जब कि मूठी में किसीने ले लिया॥२॥

भेद सबने बहुत बड़ा पाया।
बात सच्ची व बात झूठी में॥
हो दिलासा हमें वृथा देते।
दिल अगर ले सके न मूठी में॥३॥

जो चखाना हो चखा लो तुम हमें।
चाह कर हम फल बुरे कैसे चखें॥
जी गया भर आँख आँसू से भरी।
लोग मूठी भर न मूठी में रखें॥ ४॥

चपत और तमाचा

तरह तरह की बातें

गुन भले गुन और सुन सीखें भली।
क्यों नहीं औगुन किसीके भग गये॥
तब भला आँखें खुलीं तो क्या खुलीं।
जब तमाचा चार कस के लग गये॥ १॥

कब मुसीबत न सामने आई।
कब भला दुख रहे न मँडलाते॥
कब पड़े हम नहीं बखेड़े में।
कब थपेड़े रहे नहीं खाते॥ २॥

चाहिये मरदानगी का रँग रहे।
रंग में नामरदियों के क्यों रँगे॥
किस तरह मुँह है दिखाते बन रहा।
क्या थपेड़े हैं नहीं मुँह पर लगे॥ ३॥

रूठना ऐंठना उखड़ जाना।
है अजब रंग ढंग दिखलाता॥
सैकड़ों ताड़ झाड़ सब दिन कर।
है चपत झाड़ना हमें आता॥ ४॥

5 cont.

ताली

हितगुटके

जब करो काम आँख खोल करो।
होवें आँखें अगर अँजी तो क्या॥
चुटकियों पर उन्हें उड़ा दो तुम।
चुटकियाँ तालियाँ बजीं तो क्या॥ १॥

हम कहें क्यों वीर की ललकार ही।
लोथ ढाने का लगाती तार है॥
हैं बरसती गालियों पर गोलियाँ।
तालियों पर चल गई तलवार है॥ २॥

आनबान

लीक कीरत की भलाई से भरी।
कब मिटाने से बुरों के मिट गई॥
पीट दें तो क्यों किसीको पीट दें।
पिट गई ताली बला से पिट गई॥ ३॥

नीचपन नंगपन कुटिलपन को।
हम कभी काम में न लायेंगे॥
जी करे दूसरे बजा लेवें।
हम नहीं तालियाँ बजायेंगे॥ ४॥

बात बात में बात

आप जब गालियाँ रहे बकते।
तब सुनेंगे न किसलिये गाली॥
हूजिये आप लाल पीले मत।
कब बजी एक हाथ से ताली॥ ५॥

संगिनी है अनेक तालों की।
है कई रंग ढंग में ढाली॥
है पहेली बजी हथेली की।
है सहेली उमंग की ताली॥६॥

हाथ

हितगुटके

हो जहाँ सामने खड़ा दुखदल।
हम वहाँ भी न बुद्धि-बल खोवें॥
चाहिये तोड़ना तभी बंधन।
बेतरह हाथ जब बँधे होवें॥१॥

दूर बेकारियाँ करें सारी।
हर तरह का विकार वे हर लें॥
लोग हैं लाग में अगर आये।
तो लगे हाथ लोक-हित कर लें॥२॥

वे खुलेआम हैं भला करते।
जो कि हित-आँख खोल लेते हैं॥
वे खुले दिल न मान क्यों देंगे।
जो खुले हाथ दान देते हैं॥३॥

तब भला कोई हितू कैसे बने।
रंग हित का जब चढ़ाया ही नहीं॥
हाथ कोई तब मिलाता किस तरह।
हाथ हमने जब बढ़ाया ही नहीं॥४॥

हैं पकड़ते कौड़ियों को दाँत से।
टेंट से पैसे कभी कढ़ते नहीं॥
तब बढ़े तो क्या बढ़े हित के लिये।
जब हमारे हाथ हैं बढ़ते नहीं॥५॥

नोंचता कोंचता किसीको था।
औ किसी पर रहा बला लाता॥
बेतरह जब सदा रहा चलता।
किस तरह हाथ तब न रह जाता॥ ६॥

तब भला पाँव क्या रहा जमता।
जब भली राह में न पाया जम॥
जब हितों से रहे नहीं हिलमिल।
तब चले हाथ क्या हिलाते हम॥ ७॥

मर मिटो पर मान से मोड़ो न मुँह।
मान लो मरजादवालों की कही॥
उठ पड़ो हित के लिये कस कर कमर।
हैं उठा कर हाथ हम कहते यही॥ ८॥

हैं सभी मस्त रंग में अपने।
कब तपी को रही न रुचि तप की॥
क्यों न बक्की किया करे बकबक।
हथलपक क्यों करे न हथलपकी॥ ९॥

जब मिला तब मिल सका उससे कुफल।
पेड़ आलस का सुफल फलता नहीं॥
पेट तब कैसे चलाये चल सके।
जब किसीका हाथ ही चलता नहीं॥१०॥

क्यों किसीका इस तरह घोंटे गला।
बेतरह घुटने लगे जिससे कि दम॥
क्यों पराया माल हथियाते फिरें।
क्यों निहत्थे पर उठायें हाथ हम॥११॥

सुनहली सीख

घर के लोगों में जो हित है।
जो मित उनके माथों में है॥
तो है पाँचों उँगली घी में।
लड्डू दोनों हाथों में है॥१२॥

देस के दहले हुए दिल से डरो।
जाति की बेचैनियों से भी बचो॥
क्यों अधिक जी की कचट हो कर रहे।
आँख अपनी हाथ से अपने कुचो॥१३॥

राह में घर में नगर में गाँव में।
हो सके तो हित करें औ साथ दें॥
पर समय असमय बिना समझे हुए।
क्यों किसीके हाथ में हम हाथ दें॥१४॥

और की देख देख कर दौलत।
लालची बन बहुत न ललचायें॥
कुछ अगर चाह बेहतरी की है।
तो बहुत हाथ मुँह न फैलायें॥१५॥

किसलिये काम ठान देवे वह।
कुछ जिसे कर कभी न दिखलावे॥
तब न तलवार हाथ में लेवे।
जब न दो चार हाथ चल पावे॥१६॥

नित सजग करती उजग है रात की।
तन बुढ़ापा बाढ़ में है बह रहा॥
हिल सको तो लोक-हित से हिल रहो।
हाथ हिल सिर साथ है यह कह रहा॥१७॥

5 Cont.

बेतरह जो घिरी अँधेरी आज।
तो समझ बूझ क्या नहीं है साथ॥
तो जगा दी गई नहीं क्यों जोत।
जो नहीं सूझता पसारे हाथ॥१८॥

अपने दुखड़े

किस तरह दे सके सहारा वह।
आप जो औरके सहारे हो॥
किस तरह हाथ तब उठायें हम।
कुछ न जब हाथ में हमारे हो॥१९॥

जब हमीं सधने नहीं हैं दे रहे।
किस तरह तब काम साधे सध सके॥
जब बँधायेंगे उसे हम आप ही।
तब न कैसे हाथ बाँधे बँध सके॥२०॥

लाड़ प्यार को लात मार कर।
क्यों लड़ते हैं भाई भाई॥
पाई कौन भलाई रिस में।
क्यों करते हैं हाथापाई॥२१॥

पड़ गये हाथ में पराये के।
कौन से दुख भला गये न सहे॥
नाक में दम सदा रहेगा ही।
औरके हाथ में नकेल रहे॥२२॥

और क्या मिलता मिले पैसे न वे।
हम जिन्हें कुछ पीस कर पाते रहे॥
जब खिजाते औ जलाते ही रहे।
किसलिये तब हाथ खुजलाते रहे॥२३॥

निराले नगीने

पाप से तब पिंड छूटे किस तरह।
जब न वे पूरी तरह खोये गये॥
दूर हो तो किस तरह मल दूर हो।
हाथ मलमल कर न जब धोये गये॥२४॥

क्या बिपद में देख, छोटों को बड़े।
कर बहुत ही प्यार बहलाते नहीं॥
छोड़ ऊँचापन नहीं ऊँचे सके।
पाँव को क्या हाथ सहलाते नहीं॥२५॥

किस तरह तब दूर मन का मैल हो।
मैल तन का जब छुड़ा पाते नहीं॥
तब उड़ायेंगे पतंगें किस तरह।
हाथ जब मक्खी उड़ा पाते नहीं॥२६॥

बड़े बड़ों का मुँह मलने की।
मति थोड़े से माथों में है॥
मन हाथों में करने का बल।
छोटे छोटे हाथों में है॥२७॥

लताड़

रंग उस दिन जायगा बदरंग हो।
ढंग यह जिस दिन किसीको खलेगा॥
हैं चलाते तो चलायें सोच कर।
यह चलाना हाथ कै दिन चलेगा॥२८॥

वह समझ कर भी समझता ही नहीं।
है कुदिन कठिनाइयों से टल रहा॥
क्यों कमाये औ करे कुछ काम क्यों।
काम जब हथफेर से है चल रहा॥२९॥

क्या उठा तब वह भलाई के लिये।
जब किसीका कर नहीं सकता भला॥
कल्ह गलते आज ही गल जाय वह।
हाथ जो पड़ कर गले घोंटे गला॥३०॥

फोड़ दी आँख तोड़ दी गरदन।
कब उतारे नहीं बहुत से सर॥
पर कतर हैं दिये परिन्दों के।
हाथ हो तुम उठे नहीं किसपर॥३१॥

लाल हैं जो लोग कितनी गोद के।
बेतरह क्यों हो उन्हें तुम गोदते॥
बन बिगड़ अड़ एक बेजड़ बात पर।
हाथ हो क्यों जड़ किसीकी खोदते॥३२॥

जो अभी कुछ भी न खिल पाई रही।
क्यों गई तत्ते तवे पर वह तली॥
क्या भली की कल न ली क्यों हाथ ने।
किसलिये तोड़ी गई कच्ची कली॥३३॥

साहसी हों औ सदा साहस रखें।
क्रूर कायर का कभी दें साथ क्यों॥
हम निकालें पाँव पावें जो निकल।
हाथ दिखलायें दिखायें हाथ क्यों॥३४॥

नोकझोंक

हैं भरे आप तो भरे रहिये।
क्यों मरे प्यार को जिलाते हैं॥
जब न दिल मिल सका मिलाने से।
किसलिये हाथ तब मिलाते हैं॥३५॥

रीझ में सूझ बूझ साहस में।
हम किसीसे कभी नहीं कम हैं॥
किसलिये हाथ दूसरा मारे।
आइये हाथ मारते हम हैं॥३६॥

बैठ पाती थीं न जो बातें उन्हें।
बैठ उठ करके बिठाना ही पड़ा॥
जो उठे थे, ठोंक देने को उन्हें।
हाथ हमको तो उठाना ही पड़ा॥३७॥

हाँ, नहीं, क्या कह रहे हो दो बता।
है दुरंगे रंग में दोनों रँगा॥
सिर हिलाते तुम रहे जिस ढंग से।
हाथ भी उस ढंग से हिलने लगा॥३८॥

जो रहा छेंकता निगाहों को।
वह चला राह छेंकने तो क्या॥
आप तो बात फेंकते ही थे।
अब लगे हाथ फेंकने तो क्या॥३९॥

ले लिया है तो उसे ले लो तुम्हीं।
जी किसीका कब फिरा जाकर कहीं॥
हाथ मलना तो पड़ेगा ही हमें।
पास कोई हथकड़ा तो है नहीं॥४०॥

जाँयगे लोग धूम से कुचले।
रह सकेगा सदा न यह ऊधम॥
जाइये खाइये नहीं मुँह की।
आइये हाथ मारते हैं हम॥४१॥

तरह तरह की बातें

तब भला साथ दे सकें किस भाँत।
जब किसीका नहीं निबहता साथ॥
तब सके सूझ तो सके क्यों सूझ।
जब नहीं सूझता पसारे हाथ॥४२॥

है कमा खाना मरद का काम ही।
माँग खाना मौत से तो है न कम॥
दें न निज पानिप गँवा पानिप रखें।
पाँव रोपें पर न रोपें हाथ हम॥४३॥

पापियों को पीट देते ही रहे।
कब थके पर भी मिले थे हम थके॥
रोकते ही रोकनेवाले रहे।
हाथ रोके रुक नहीं मेरे सके॥४४॥

जो रहे बेसबब कड़े पड़ते।
वे भला खायँगे न कोड़े क्यों॥
राह के जो बने रहे रोड़े।
हाथ जावें न तो मरोड़े क्यों॥४५॥

किस तरह कम्बल रजाई मिल सके।
आग खोजे भी नहीं मिलती कहीं॥
सीत रातें हैं सिसिकते बीततीं।
हाथ तक हम सेंक सकते हैं नहीं॥४६॥

जब कि था संग से पड़ा पाला।
चाहिये था कि ढंग दिखलाता॥
जब न उसको सका सँभल खसका।
हाथ कैसे न तब खसक जाता॥४७॥

कांख

लताड़

नेम से तब पाठ क्या करते रहे।
प्रेम के जब लग नहीं पाये गले ॥
लोक-हित पावों तले जब था पड़ा।
काँख में पोथी दबा तब क्या चले ॥ १ ॥

क्यों गिरेंगे भला न मुँह के बल।
बेतरह ऊँघ, ऊँघने वाले ॥
आँख नीची कुवान है करती।
क्या करें काँख सूँघनेवाले ॥ २ ॥

जब रहे मैल से भरे ही वे।
तब बुरे जीव क्यों न उपजायें ॥
है बुरा बैलपन हमारा ही।
काँख के बाल जो बला लायें ॥ ३ ॥

रह बुरी तौर से बुरे न बनें।
बेहतरी की बनी रहे कुछ बू ॥
हद न हो जाय बदपसंदी की।
बद बना दे न काँख की बदबू ॥ ४ ॥

तरह तरह की बातें

धन अगर कुछ कभी कमा पाते।
तो कहाते नहीं गये-बीते ॥
जो बजा बीन बाँसुरी सकते।
तो बगल क्यों बजा बजा जीते ॥ ५ ॥

दे सकें तब किस तरह जी में जगह।
जब हमें घर में नहीं पैठा सके॥
वे बिठायेंगे भला क्यों आँख पर।
जो बगल में भी नहीं बैठा सके॥ ६॥

कौन उसकी दाब में आया नहीं।
वह गया किसको न चावल-सा चबा॥
काल तो है उस बली से भी बली।
जिस बली की काँख में दसमुख दबा॥ ७॥

हाँ बुरे पर कब सगे छोड़े गये।
देख ले जो देखने को आँख हो॥
तन उसे छन भर अलग करता नहीं।
क्यों न मैली ही कुचैली काँख हो॥ ८॥

कर न मिट्टी पलीद लें अपनी।
गंदगी से न गंद दें फैला॥
हो न मैलान मानवालों का।
काँख के मैल से कभी मैला॥ ९॥

अंग है तन तजे उसे कैसे।
कब लगी ही रही न सीने से॥
क्यों न बदतर बने नरक से भी।
तर-बतर काँख हो पसीने से॥१०॥

छाती

अपने दुखड़े

झक झक्झक बकवाद औ उसकी बहँक।
है नहीं किसको बहुत ही खल रही॥
देख उजबकपन जले-तन की जलन।
आज है किसकी न छाती जल रही॥ १॥

राजमुकुटों पर लगी मोती-लड़ी।
जोत जिसका पाँव छू पाती रही॥
देख दर-दर दीन बन फिरते उसे।
कब नहीं छाती दरक जाती रही॥ २॥

जब कि तन-बल साथ मन-बल भी घटा।
तब गला कैसे न कोई घोंटता॥
जो न लटती थी लटी वह जाति जब।
साँप छाती पर न तब क्यों लोटता॥ ३॥

क्या कहें कुछ बस नहीं है चल रहा।
हैं न लेने दे रहे बेपीर कल॥
दिल हमारा मल मसल कर बेतरह।
लोग छाती पर रहे हैं मूँग दल॥ ४॥

मन हमारा मरा मसोसों से।
तन हमारा हुआ दुखों से सर॥
तो बनें क्यों न आप पत्थर हम।
कर न छाती सके अगर पत्थर॥ ५॥

मार-मन तन-कस गँवा सारी कसर।
कर जतन कितने बचें कैसे न हम॥
भूत बन वह कब नहीं सिर पर चढ़ा।
कब रहा है पाप छाती का न यम॥ ६॥

सब तरह से हम बुरे हैं बन गये।
पर बुरा तब भी न अनभल का हुआ॥
आप हम हलके बहुत ही हो गये।
बोझ छाती का नहीं हलका हुआ॥ ७॥

चाहते हैं हम करोड़ों लें कमा।
क्या करें जो दैव ने कौड़ी न दी॥
किस तरह चौड़ी बना लेवें उसे।
दैव ने छाती अगर चौड़ी न दी॥८॥

हितगुटके

खीज कर जो रह न आपे में सका।
पाठ दुख का आप ही उसने पढ़ा॥
जो बढ़ा रिस-वेग अपने आप तो।
भूत सिर पर पाप छाती पर चढ़ा॥९॥

किस तरह कायर दिखाये वीरता।
किस तरह नामर्द मारे औ मरे॥
है बुरा रन-आग के धधके अगर।
वीर की छाती हिले धकधक करे॥१०॥

जो भले भाव हों भरे जी में।
तो रहेगी न नीचता भाती॥
जो लगे काम का न कोड़ा तो।
क्या करेगी कड़ी कड़ी छाती॥११॥

शंभु की है लुभावनी मूरत।
हित-भरी प्रेम-भाव में माती॥
है लड़ी पूत प्रीति-माला की।
है मनुज-जीवनी जड़ी छाती॥१२॥

है भरी गूढ़ गूढ़ भावों से।
है बड़ी ठोस प्रीति की थाती॥
पूत-हित के कठोर पत्तर से।
है मढ़ी माँ कड़ी कड़ी छाती॥१३॥

फल-भरे पेड़ जल-भरे बादल ।
हैं झुके प्यार-गोद में पलते ॥
पास जिनके कमाल कोई है ।
वे न छाती निकाल हैं चलते ॥१४॥

क्यों सितम पर सितम न तब होते ।
क्यों बला पर नहीं बला आती ॥
जब दबे हम रहे मुसीबत से ।
जब दुखों से दबी रही छाती ॥१५॥

जाति को वह उबार देवेगा ।
बीसियों बार बन करामाती ॥
है अगर 'वीर' बुद्धि बल-वाला ।
है अगर वीरता-भरी छाती ॥१६॥

हाथ अपना क्यों लहू से हम भरें ।
लत बुरी से ही बुरी गति है बनी ॥
किस लिये हम तीर मारें ताक कर ।
जो तनी है तो रहे छाती तनी ॥१७॥

लताड़

तब भला क्या खड़े हुए रण में ।
है अगर कँपकँपी हमें आती ॥
सिर कटे सिर अगर गया चकरा ।
देख धड़ जो धड़क उठी छाती ॥१८॥

तो निगाहें हो सकीं सुथरी नहीं ।
और रुचि भी है नहीं सुथरी हुई ॥
जो उभरते भाव हैं जी में बुरे ।
देख कर के छातियाँ उभरी हुई ॥१९॥

हैं बड़े पाक दूध की कलसी।
हैं बहुत ही पुनीत हित-थाती ॥
जो न हो पाकपन-भरी आँखें।
तो न देखें उठी उठी छाती ॥२०॥

रस के छींटे

कौन है बे-बिसात वह जिसकी।
बन सकी बात बे-बिसाती से ॥
किस तरह से लगें गले तब हम।
जब लगाये गये न छाती से ॥२१॥

दूसरी कुछ छातियों में भी हमें।
मिल न पाई प्यार-धारा की कमी ॥
जान आई पी जिसे बेजान में।
मिल सकी माँ-छातियों में वह अमी ॥२२॥

बेबसी से बेतरह बेहाथ हो।
हार किसने है न खोया नौलखा ॥
हाथ मलमल कब न रह जाना पड़ा।
कब गया पत्थर न छाती पर रखा ॥२३॥

देख हम जिसकी झलक हैं जी रहे।
क्यों उसीकी है नहीं उठती पलक ॥
छीलने से क्यों उसीके दिल छिला।
दिल दुखे जिसके गई छाती दलक ॥२४॥

पा जिसे अठखेलियाँ करती हुई।
चाव-धारायें उफन करके बहीं ॥
उस जवानी की उमंगों से उभर।
कौन सी छाती हुई ऊँची नहीं ॥२५॥

मुँह बना तो क्या बुराई हो गई।
आप ही जब हैं बनाने से बने॥
बे-तरह जब आप ही हैं तन गये।
तब भला कैसे नहीं छाती तने॥२६॥

जलती छाती

वह हमारी आँख का तारा रहा।
देख उसको भूल दुख जाती रही॥
कौन सुख पाती नहीं थी प्यार कर।
चूम मुख छाती उमड़ आती रही॥२७॥

आँख जल-धारा गिराती ही रही।
पर जलन उसकी हुई कुछ भी न कम॥
दुख-अगिन उसमें दहकती ही रहा।
कर सके छाती कभी ठंढी न हम॥२८॥

क्या करेंगे लेप हम ठंढे लगा।
मुख कमल-जैसा खिला देखा न जब॥
वह मिली ठंढक न जिसकी चाह थी।
ठंढ से छाती हुई ठंढी न कब॥२९॥

प्यार-जल छिड़कें वचन प्यारे कहें।
और पहुँचाते रहें ठंढक सभी॥
है जलन की आग जिसमें जल रही।
हो सकी ठंढी न वह छाती कभी॥३०॥

तरह तरह की बातें

वे समझती हैं पराई पीर कब।
हैं बड़ी बे-पीर जितनी जातियाँ॥
मूँग भी दलते वही उन पर रहे।
जो रहे मलते मसलते छातियाँ॥३१॥

जाति-मुखड़ा देख फूलों-सा खिला।
कौन सुन्दर रुचि न चौगूनी हुई॥
भर गया आनंद किस जी में नहीं;
कौन-सी छाती हुई दूनी नहीं॥३२॥

चल गये दाँव हल हुए मसले।
टल गये सब बुरी बला सर की॥
न खिला कौन दिल गिरह खोले।
कौन छाती हुई न गज भर की॥३३॥

वह बड़ा कायर बड़ा डरपोक है।
जो जिया जग में इरादे रोक कर॥
दूसरा चाहे कहे या मत कहे।
हम कहें यह क्यों न छाती ठोंक कर॥३४॥

सब तरह का पा सका आनंद जो।
है वही आनंद को पहचानता॥
जो नहीं फूला समाता फूल फल।
है वही छाती फुलाना जानता॥३५॥

उस पुलक से पुर हुई भर पूर जब।
जो भुलाने से नहीं है भूलती॥
जब उमंगों से उमग कर भर गई।
तब भला कैसे न छाती फूलती॥३६॥

नारि नर छाती बताती है हमें।
प्यार थाती है अधिक किसमें धरी॥
एक से है दूध की धारा बही।
दूसरी है दूध से बिल्कुल बरी॥३७॥

एक-सी है नारि नर छाती नहीं।
एक है खर दूसरी में है तरी ॥
है सजीवन एक बालक के लिये।
दूसरी है बाल से पूरी भरी ॥३८॥

खोल मुँह बार बार क्या न कहा।
घट गये प्यार जाति थाती के ॥
कब खुला कान आँख भी न खुली।
खुल किवाड़े सके न छाती के ॥३९॥

बीज बोते ही नहीं मरुभूमि में।
है जहाँ जल की न धारायें बहीं ॥
पूत-सी थाती मिले क्यों बाँझ को।
छातियों में दूध होता ही नहीं ॥४०॥

दूध की धारा बहाती किस तरह।
है अगर वह प्रेम में माती नहीं ॥
किस तरह से तो जिलाती जीव को।
है अगर छाती करामाती नहीं ॥४१॥

बात लगती बे-लगामों की सुने।
औ जलन के बे-तरह पाले पड़े ॥
दिल भला किसका नहीं है छिल गया।
कौन छाती में नहीं छाले पड़े ॥४२।

सर हुआ ऊँचा असर ऊँचा हुआ।
हो उमग ऊँची अघा पाती नहीं ॥
बैठ ऊँची ठौर ऊँचा पद मिले।
क्यों भला ऊँची बने छाती नहीं ॥४३॥

काम उसका है तरस खाना नहीं।
चाहिये वह हो लहू से तरबतर॥
वह उतर चित से न पायेगी तभी।
जाय जब तलवार छाती में उतर॥४४॥

कलेजा

अपने दुखड़े

जब बचा अपनी न मिलकीयत सकी।
मिल गये जब धूल में सब मामले॥
किस तरह तब जाति मालामाल हो।
है अगर मलता कलेजा तो मले॥ १॥

दुख मिले जिससे करें वह काम क्यों।
दुख उठाते जी अगर है डर रहा॥
कूदते हैं क्यों धधकती आग में।
है अगर धक-धक कलेजा कर रहा॥ २॥

आँख अब तक खुल नहीं मेरी सकी।
दिन बदिन गुल है निराला खिल रहा॥
बे-तरह है जाति की जड़ हिल रही।
है कहाँ मेरा कलेजा हिल रहा॥ ३॥

चाव को भाव को उमंगों को।
है जिन्होंने तमाम दिल घेरा॥
चोट पर चोट देख कर खाते।
है कलेजा कचोटता मेरा॥ ४॥

चैन उसको तब भला कैसे मिले।
जब किसीका पेट होवे ऐंठता॥
बैठ सुख से किस तरह कोई सके।
जब कलेजा जा रहा हो बैठता॥ ५॥

भाग बिगड़े कब न हित मोटें लुटीं।
कब बुरी चोटें नहीं हमने सहीं॥
कब हमें मुँह की नहीं खानी पड़ी।
कब कलेजा आ गया मुँह को नहीं॥६॥

चित्त बेचैन बन गया इतना।
एक दम चैन ही नहीं पाता॥
बे-तरह भर गये मसोसों से।
है कलेजा मसक मसक जाता॥७॥

जो लगे दीया बुझाने तेल ही।
जगमगाती जोत तो कैसे जगे॥
तब भला कैसे कलेजा पोढ़ हो।
जब कलेजे में किसी पानी लगे॥८॥

मतलबों से सभी हुए अंधे।
बन गया पेट के लिये जग यम॥
है कलेजा भग हुआ दुख से।
पर दिखायें किसे कलेजा हम॥९॥

वे बड़े दुख-दरद-भरे दुखड़े।
सुन जिन्हें उर अनार-सा दरका॥
किस तरह से कहे सुने कोई।
जो कलेजा करे न पत्थर का॥१०॥

हितगुटके

वह किसी जीभ में बसे कैसे।
है बुरी बान जो कि नेजे में॥
बात से छेद छेद कर क्यों हम।
छेद कर दें किसी कलेजे में॥११॥

तो भला किस तरह रहा जाता।
देख कर बारहा उजड़ते घर॥
जो समझ पर पड़ा न पत्थर है।
है कलेजा अगर नहीं पत्थर॥१२॥

जो कढ़े तो ढंग से कढ़ती रहे।
है बहँक कर बात का कढ़ना बुरा॥
जो बढ़े तो ढंग से बढ़ता रहे।
है कलेजे का बहुत बढ़ना बुरा॥१३॥

है यही वह बहुत भला थाला।
प्यार पौधा जहाँ कि पल पाया॥
जो करें तर उसे न हित-जल से।
तो कलेजा न जाय कलपाया॥१४॥

लग सकी जिसकी लपट पहले हमें।
बैर की वह क्यों जगावें आग हम॥
बे-तरह जल भुन लगाई लाग से।
क्यों कलेजे में लगावें आग हम॥१५॥

किसलिये दिल हैं किसीका छेदते।
जो समाई है नहीं दिल में दुई॥
जो लुभा करके लुभाते हैं नहीं।
क्यों चुभाते हैं कलेजे में सुई॥१६॥

तरह तरह की बातें

दिल दुखे क्यों दुखी बने कोई।
जाय क्यों आँख आँसुओं से भर॥
बात यह पूछना अगर होवे।
पूछिये हाथ रख कलेजे पर॥१७॥

जाय लट क्यों न चोट खा खा कर।
जो लट्टू है लुनाइयों ऊपर॥
क्यों न हो लोट-पोट लट देखे।
साँप है लोटता कलेजे पर॥१८॥

दूध से घर भरा रहा जिसका।
जो कि खोया रहा सदा खाना॥
खुरचते देख कर उसे खुरचन।
क्यों कलेजा खुरच नहीं जाता॥१९॥

आप माँग जीती थी जिससें माँग खा।
जिसका धन देखे धनेश-मद खो गया॥
उसे ललाते देखे टुकड़े के लिये।
आज कलेजा टुकड़े टुकड़े हो गया॥२०॥

क्यों न पहनने को हमको टुकड़े मिलें।
क्या अचरज जो मुँह का टुकड़ा खो गया॥
टुकड़े टुकड़े होते लख कर जाति को।
जो न कलेजा टुकड़े टुकड़े हो गया॥२१॥

भीतर भीतर तर होने का भाव ही।
बहु अनहोनी बातों का बानी हुआ॥
सारे झरने पानी पानी हो गये।
देख कलेजा पत्थर का पानी हुआ॥२२॥

बड़े सोच में पड़े कड़े दुखड़े सहे।
घड़ों बहा आँसू लोहू चख से चुआ॥
रेजा रेजा सिर का भेजा हो गया।
देख कलेजा पत्थर का पानी हुआ॥२३॥

जिस तरह वह सब रसों में सन सका।
कौन वैसा ही रसों में है सना॥
प्यार उसका है उसीके प्यार-सा।
है कलेजे सा कलेजा ही बना॥२४॥

दिल

हितगुटके

जो कि है बात बात में चिढ़ता।
वह चिढ़ेगा न क्यों चिढ़ाने से॥
क्यों करे खाज कोढ़ में पैदा।
दिल कुढ़ेगा न क्यों कुढ़ाने से॥ १॥

रंग उन पर कब चढ़ा करतूत का।
रंगरलियाँ रङ्ग में ही जो रँगे॥
दिल लगावे किस तरह तब काम में।
जब किसीका दिल्लगी में दिल लगे॥ २॥

चाहिये जो कुछ कहे खुल कर कहे।
बात दिल की क्यों नहीं जाती कही॥
तब किवाड़े किस तरह दिल के खुलें।
बात दिल की जब किसी दिल में रही॥ ३॥

जो बुराई के लिये ही है बना।
क्या अजब उसमें बुराई जो ठने॥
जब छोटाई बाँट में उसके पड़ी।
किस तरह छोटा न छोटा दिल करे॥ ४॥

पेड़-सा फल न दे सकी डाली।
बेलियों-सी मिली कली न खिली॥
दूसरे तंग हो रहे हैं क्यों।
क्यों करे तंग दिल न तंगदिली॥ ५॥

वे हिला लेते उन्हें देखे गये।
जो न औरों के हिलाने से हिले॥
दाल उनकी है कहाँ गलती नहीं।
क्या दिलाते हैं नहीं दो दिल मिले॥ ६॥

दूसरे दिल खोल कर कैसे मिलें।
जब सगे भाई नहीं होंगे हिले॥
तब मिलेंगे लाखहा दिल किस तरह।
जब मिलाने से नहीं दो दिल मिले॥ ७॥

बात सब समझे करे हित-ब्योंत सब।
जो कहे उसको सँभल करके कहे॥
बे-ठिकाने है बहुत दिन रह चुका।
दिल ठिकाने है ठिकाने से रहे॥ ८॥

काम में सर गरम रहें कैसे।
जब भरम का हुआ किया फेरा॥
क्यों न तो हम भटक भटक जाते।
दिल भटकता रहा अगर मेरा॥ ६॥

डाल कर रस नीम का, बेकार हम।
किस लिये रस से भरा गड़वा करें॥
हम किसीसे किस लिये कड़वे बनें।
बात कड़वी कह न दिल कड़वा करें॥१०॥

रंग तब परतीत का कैसे चढ़े।
दूर हो पाई न जब रङ्गत दुई॥
क्यों जमे तब पाँव जब पाया न जम।
क्यों जमे दिल जब दिलजमई हुई॥११॥

तो धमा-चौकड़ी मचावेगा।
जो बना धूम-धाम से धिंगड़ा॥
अब बिगड़ने न हम उसे देंगे।
दिल अगर है बिगड़-बिगड़ बिगड़ा॥१२॥

किस तरह तब वह कसर से बच सके।
जब किसीका रह सका कस में न दिल॥
तो बढ़ेगी बे-बसी कैसे नहीं।
रख सकेंगे हम अगर बस में न दिल॥१३॥

क्या नहीं दिल दूसरों के पास है।
बात लगती चाहिये कहना नहीं॥
क्यों भरा सौदा किसी दिल में रहे।
चाहिये दिल में कसर रहना नहीं॥१४॥

भेद अपना ही नहीं जब पा सके।
क्यों सके तब दूसरों का भेद मिल॥
किस तरह बस में करें दिल औरका।
कर सके बस में अगर अपना न दिल॥१५॥

किस तरह तब आँख हित की हो सुखी।
प्यार का मुखड़ा न जब होवे खिला॥
मेल-रंगत मेलियों पर क्यो चढ़े।
जब न होवे दिल किसी दिल से मिला॥१६॥

अपने दुखड़े

बात सुनता न बेहतरी की है।
है बहकता बहुत बहाने से॥
थक गये हम मना मना करके।
मानता दिल नहीं मनाने से॥१७॥

देस ने एकता-गले पर जब।
आँख को मूँद कर छुरा फेरा॥
रह गये हम तड़प तड़प करके।
देख कर दिल तड़प गया मेरा॥१८॥

है सुझाने से न जिसको सूझता।
हम भला उसको सुझावें किस तरह॥
क्या बुझाना ही नहीं हम चाहते।
पर बुझे दिल को बुझावें किस तरह॥१९॥

है नहीं ताब साँस लेने की।
जाय छिल, है अगर गया दिल छिल॥
आस पर ओस पड़ भले ही ले।
क्या करेगा मसोस करके दिल॥२०॥

आबरू किस तरह बचायें हम।
कुछ बचाये सका न बच मेरा॥
दिल लचकदार भी लचक न सका।
रह गया दिल ललच ललच मेरा॥२१॥

दिल के फफोले

जो हमारे ही बनाये बन सके।
देख करके बे-तरह उनको तने॥
जब हमी हैं आज दीवाने हुए।
दिल भला तब क्यों न दीवाना बने॥२२॥

दुख पड़े बदरंग बन कुँभला गया।
रह गया मुखड़ा न अब मेरा हरा॥
जो कि फूले फूल-सा फूला रहा।
अब वही दिल है फफोलों से भरा॥२३॥

अब वही भाव है हमें भाता।
जो बड़ों को न भूल कर भाया॥
आँख भर देख जाति की भूलें।
दिल भला कौन-सा न भर आया॥२४॥

है बहकता, है बिगड़ करता बदी।
प्यार का उसको सहारा है नहीं॥
दूसरे तब हों हमारे किस तरह।
दिल हमारा जब हमारा है नहीं॥२५॥

जाति के, चाव से भरे चित को।
रंज पा बार बार बहुतेरा॥
देख कर चूर-चूर हो जाते।
हो गया चूर-चूर दिल मेरा॥२६॥

देख कर दुख दुखी हुए जन का।
बेतरह है मसल मसल जाता॥
तब भला कल हमें पड़े कैसे।
दिल बिकल कल अगर नहीं पाता॥२७॥

नोक झोंक

तमकनत इतनी भरी है किस लिये।
जो सितम कर भी सके उकता नहीं॥
काठपन-से काम मत लो काठ बन।
क्यों दुखी-दुख देख दिल दुखता नहीं॥२८॥

हम न दिल आपका दुखायेंगे।
आप करते रहें हमें बेदिल॥
आप आँखें बदल भले ही लें।
हम भला किस तरह बदल लें दिल॥२९॥

पट सके किस तरह सचाई से।
छल कपट से हुई न सेरी है॥
तब भला क्यों न दम दिलासा दें।
जब कि दिल में नहीं दिलेरी है।।३०॥

मानता ही वह नहीं मेरा कहा।
कब भला उसने न मन-माना किया॥
तब हमारा दिल हमारा क्यों रहे।
जब हमारा दिल किसीने ले लिया॥३१॥

और का पचड़ा बखेड़ा और का।
देखता हूँ और के ही सिर गया॥
चाहिये तो फेर लेवें फिर उसे।
फेरने से दिल अगर है फिर गया॥३२॥

कब वही तब दूसरे दिल में नहीं।
एक दिल में प्यार-धारा जब वही॥
कौन अनहित हित नहीं पहचानता।
राह दिल से कब नहीं दिल को रही॥३३॥

रख सका जो रंगतें अपनी सदा।
रंग लाकर के समय पर ही नया॥
आज उसका रंग बिगड़ा देखकर।
रंग चेहरे का हमारे उड़ गया॥३४॥

प्यार ही जब रहा नहीं दिल में।
प्यार के साथ बोलते क्या हो॥
क्यों नहीं दिल टटोलते अपना।
दिल हमारा टटोलते क्या हो॥३५॥

आस पर मेरी न जाये ओस पड़।
टूटने पाये न प्यारी प्यार कल॥
फल मिलेगा कौन सुख फल के दले।
देखिये जाये न दिल-सा फूल मल॥३६॥

है जगह उसमें न कीने के लिये।
हैं बदी-धारें वहाँ बहती नहीं॥
कर सकें तो साफ दिल अपना करें।
साफ दिल में है कसर रहती नहीं॥३७॥

किस लिये प्यार तो करे कोई।
प्यार से प्यार जो न दिल को हो॥
क्यों न तो रार ही मचा देवे।
रार से जो करार दिल को हो॥३८॥

तब उमंगें रीझती कैसे रहें।
जो न मुखड़ा प्यार का होवे खिला॥
तब भला कैसे किसीसे मेल हो।
जब किसीका दिल न हो दिल से मिला॥३९॥

तो घटा मोल हम न दें उसका।
और का माल यों गया मिल जो॥
तो उसे प्यार साथ ही पालें।
पा लिया प्यार से पला दिल जो॥४०॥

खिला रहे हैं किसी फूल को।
किसी फूल को नोंच रहे हैं॥
दिखा दिखा कर लोच निराला।
दिल ही दिल में सोच रहे हैं॥४१॥

किसलिये दिल उठे किसीका खिल।
और क्यों जाय दिल किसीका हिल॥
हम किसीकी करें गवाही क्यों।
जब गवाही न दे हमारा दिल॥४२॥

लग गई और ही लगन उसको।
तज गया काम सौ बहाने से॥
थक गये हम लगा लगा करके।
लग सका दिल नहीं लगाने से॥४३॥

प्यार की आँच लग अगर पाती।
किस तरह मोम तो न बन जाता॥
हम पिघलने उसे नहीं देते।
दिल पिघलता अगर पिघल पाता॥४४॥

बात टालें न सच बता देवें।
कर गया काम कौन-सा लटका॥
देख करके खुटाइयाँ कितनी।
दिल खटक कर अगर नहीं खटका॥४५॥

प्यार-बंधन जो अधूरा ही बँधा।
क्यों न जाता टूट तो टोटका हुए॥
दिल हमारा ही खटकता है नहीं।
कौन दिल खटका नहीं खटका हुए॥४६॥

है जहाँ नीरस सभी रस के बिना।
क्यों वहाँ रस की न धाराएँ बहें॥
दम-दिलासा दे दुखा देवें न दिल।
दिल करे तो बात दिल की ही कहें॥४७॥

है भला वह अगर नहीं भूला।
खुल गया भाग, जो नहीं भटका ॥
तो किसीका गया लटक मुँह क्यों।
दिल अटक कर अगर नहीं अटका ॥४८॥

मुँह बनाते देख कर आँखें बदल।
दुख दुगूना दुख-भरे जी का हुआ ॥
बात फीकी सुन पड़े, फीके हुए।
रंग फीका देख दिल फीका हुआ ॥४९॥

बात बात में बात

बात बेढंगी उठाते जो न तुम।
जी कभी झुँझला न जाता इस तरह ॥
जो न होती बात उठती बैठती।
बात दिल में बैठ जाती किस तरह ॥५०॥

जब जगाई न जायगी ढब से।
जम सकेगी न बात तब दिल में ॥
तब भला बात बैठती कैसे।
बैठ पाई न बात जब दिल में ॥५१॥

एक है सुख-तरंग में बहता।
एक दुख के समुद्र में पैठा ॥
दिल भरा एक, एक दिल उमगा।
दिल उठा एक, एक दिल बैठा ॥५२॥

जी

हितगुटके

बात जिसको बिगाड़ देना है।
किस तरह बात वह बनायेगा ॥
किस तरह काम-चोर काम करे।
क्यों न जी-चोर जी चुरायेगा ॥ १ ॥

काम में लग सका नहीं जो जी।
क्यों उसे काम में लगा पाता॥
तब भला ऊबता नहीं कैसे।
जी अगर ऊब ऊब है जाता॥ २॥

क्यों नहीं हैं सँभालते उसको।
जी अगर है सँभल नहीं पाता॥
तो बहँक जाँयगे न हम कैसे।
जी अगर है बहँक बहँक जाता॥ ३॥

सुख वहाँ पर किस तरह से मिल सके।
जिस जगह दुख की सदा धारा बहे॥
जब न अच्छापन हमें अच्छा लगा।
तब भला जी किस तरह अच्छा रहे॥ ४॥

आज तक जो फल न कोई चख सका।
हम बड़े ही चाव से वह फल चखें॥
वह करें जो कर नहीं कोई सका।
जी करे तो हाथ में जी को रखें॥ ५॥

कब बला कौन-सी नहीं टलती।
सूरमापन सँभल दिखाने से॥
कँपकँपी जायगी न लग कैसे।
कँप गया जी अगर कँपाने से॥ ६॥

चाहिये जाँय बन न खोटे हम।
भूल में पड़ सभी भटकता है॥
देख कर खोट खोटवालों की।
कौन-सा जी नहीं खटकता है॥ ७॥

खुल कहैं औ खोल कर बातें कहें।
सच कहे पर है किसीका कौन डर॥
तब हमारी बात क्या रह जायगी।
बात जी की रह गई जी में अगर॥८॥

हैं अगर दुख झेलते तो झेल लें।
पर पराया दिल दुखाने से डरें॥
चिढ़ गये जी हम चिढ़ा देवें न जी।
जी हुए खट्टा न खट्टा जी करें॥९॥

क्यों करेंगे न ऊधमी ऊधम।
बे-दहल क्यों न जी कँपायेंगे॥
मन-चले क्यों न चाल चल देंगे।
जी-जले क्यों न जी जलायेंगे॥१०॥

किस तरह ठीक ठीक वह होगा।
ध्यान उसका अगर सदा न धरें॥
किस तरह काम हो सके कोई।
लोग जी जान से अगर न करें॥११॥

है न जिस पर काम की रंगत चढ़ी।
बात मुँह से वह न काढ़े भी कढ़े॥
कर दिखायें काम बढ़-बढ़ कर न क्यों।
बात बढ़-बढ़ कर करें क्यों जी-बढ़े॥१२॥

कह सकें बातें अछूती तो कहें।
चख सकें तो फल बड़े सुन्दर चखें॥
दे सकें तो साथ देते ही रहें।
रख सकें तो हाथ में जी को रखें॥१३॥

रह सका वह अगर नहीं बस में।
तो हमें किस तरह बसा पाता ॥
तो मचलने न हम उसे देवें।
जी अगर है मचल मचल जाता ॥१४॥

है बदी की बात बद देती बना।
छल भलाई के गले का है छुरा ॥
हैं बुरी रुचियाँ बुराई से भरी।
जी बुरा करना बहुत ही है बुरा ॥१५॥

कब भलाई भले नहीं करते।
ऊधमी को पसंद है ऊधम ॥
दूसरा जी बुरा करे कर ले।
किस लिये जी बुरा बनायें हम ॥१६॥

क्यों सतायेंगी न बे-उनवानियाँ।
है हमें यह बात ही बतला रहा ॥
दे रहा है मत असंयम मत करो।
जी हमारा है अगर मतला रहा ॥१७॥

बोल कर कड़वा न कड़वे जाँय बन।
मैल की जी में रहे बैठी न तह ॥
कर बुराई क्यों बुरे जी के बनें।
जी करें फीका न फीकी बात कह ॥१८॥

जी जमा काम पर नहीं जिसका।
काम वह कर कभी नहीं पाता ॥
जाय कैसे नहीं फिसल कोई।
जी अगर है फिसल फिसल जाता ॥१९॥

अपने दुखड़े

नित सितम हैं नये नये होते।
है समय सब मुसीबतें ढाता॥
आज ताँता लगा दुखों का है।
किस तरह जी भला न उकताता॥२०॥

पड़ गई जब कि बाँट में चिन्ता।
तब भला किस तरह न बँट जाता॥
यह हमारी उचाट का है फल।
जी अगर है उचट उचट जाता॥२१॥

लुट गया सुख हुआ दुगूता दुख।
पत गई आ बिपत्ति ने घेरा॥
चोट खा चाव चूर चूर हुआ।
क्यों नहीं जी कचोटता मेरा॥२२॥

है बदी बात बात में होती।
क्यों न जी बदहवास हो जाता॥
बन गये दास, दास के भी हम।
जी न कैसे उदास हो जाता॥२३॥

किस तरह बात हम कहें अपनी।
कुछ पता पा सके न तन-कल का॥
आप हम हो गये बहुत हलके।
बोझ जी का हुआ नहीं हलका॥२४॥

कब उसे हम रहे न बहलाते।
जी हमारा नहीं बहलता है॥
आज तक दुख-सवाल हल न हुआ।
जी दहल ले अगर दहलता है॥२५॥

धन गया, धुन बाँध मन-माना हुआ।
मिल रहा है आज दाना तक नहीं॥
धाक सारी धूल में है मिल रही।
जी हमारा क्यों करे धकधक नहीं॥२६॥

हो बसर या बसर न हो सुख से।
पर न बरबाद हो किसीका घर॥
बन सके काम या न काम बने।
पर कभी आ बने नहीं जी पर॥२७॥

बढ़ गई चिढ़ कुढ़न हुई दूनी।
रुचि हुई नीच मति गई मारी॥
दुख मिले मन हुआ दुखी मेरा।
तन हुआ भार जी हुए भारी॥२८॥

है बहुत ही बुरा अधूरापन।
है न बेहतर बिना बँधा जूरा॥
जब कि है पड़ सकी नहीं पूरी।
जी भला किस तरह रहे पूरा॥२९॥

सोचते थे कि दम निकलने तक।
नेक दम खम न हो सकेगा कम॥
रो उठे ढाल ढाल कर आँसू।
देख जी का निढाल होना हम॥३०॥

तो बसर क्यों बुरी तरह होती।
बे-तरह जो न घूम सर जाता॥
दूर होती तमाम कोर कसर।
सर हुए जो न जी बिखर जाता॥३१॥

आँख पर छापा पड़ा चाहें छिनीं।
सब सुखों पर दे दिया दुख-पुट गया ॥
पर लुटेरे हैं तरस खाते नहीं।
लूट में जी तक हमारा लुट गया ॥३२॥

बे-तरह जी मल मसल कर लाखहा।
है बुरी चालें बहुत-सी चल चुका ॥
थक गये सौ सौ तरह से रोक कर।
रोकने से जी कहाँ मेरा रुका ॥३३॥

थालियाँ छीन ली गईं सुख की।
और दुख-डालियाँ गईं भेजी ॥
जौर से जी निकल गया मेरा।
आज भी आ सका न जी में जी ॥३४॥

कब नहीं सारी बला सिर पर पड़ी।
कब नहीं चाँटा हमें खाना पड़ा ॥
जो रहा है बीत जी है जानता।
क्या कहें जी से हमें जाना पड़ा ॥३५॥

भय-भरा भाग हो भला न सका।
है कुदिन में सुदिन न दिखलाता ॥
जी दुखी हो सका सुखी न कभी।
चैन बे-चैन जी नहीं पाता ॥३६॥

जी यही बार बार कहता है।
क्या किसीको मिला हमें पीसे ॥
आज रोना पड़ा गँवा सरबस।
हाथ धोना पड़ा हमें जी से ॥३७॥

नोकझोंक

बात जी में चाहिये रखना नहीं।
चाहते जी में अगर हैं पैठना॥
जी हमारा किसलिये रखते नहीं।
चाहते जी में अगर हैं बैठना॥३८॥

चैन की बंसी बजाते आप हैं।
चैन मेरा जी नहीं है पा रहा॥
बात जी में आपके धँसती नहीं।
पर हमारा जी धँसा है जा रहा॥३९॥

आपका बे-पीर बन खुल खेलना।
दिन-ब-दिन जी को बहुत है खल रहा॥
आपका जी तो मिला जी से नहीं।
बे-तरह जी है हमारा जल रहा॥४०॥

बात तकरार की पसंद रही।
पा सके प्यार हम न मर-मर कर॥
भर सका जी अगर नहीं अब भी।
कोस लें क्यों न आप जी भर कर॥४१॥

बरतरी तब किस तरह उसको मिले।
जब बुराई से न जी होवे बरी॥
आप जी में घर करें तब किस तरह।
जब कसर जी में हमारे हो भरी॥४२॥

दुख हमारा कान तब कैसे करें।
कान ही जब हो नहीं पाता खड़ा॥
बात जी में आपके आई नहीं।
दूसरे को खेलना जी पर पड़ा॥४३॥

क्या कहें है जी हमारा जानता।
आज तक जो कुछ हमें सहना पड़ा॥
भेद सारे खुल गये तो क्या करें।
जी खुले जी खोल कर कहना पड़ा॥४४॥

है हमें जलते बहुत दिन हो गये।
बन गया है आँख का जल भी बला॥
आज वे हैं किसलिये जल-भुन रहे।
जी जलाना चाहते हैं, ले जला॥४५॥

क्यों न हम आहें गरम भरते रहें।
रस, बहुत प्यारा न सीने पर चुआ॥
आँख ठंढी हो न पाई देख मुख।
बात ठंढी सुन न जी ठंढा हुआ॥४६॥

क्यों बसे जीभ में मिठाई तब।
जब कि जी में न प्यार बसता है॥
बात रस से भरी कहें कैसे।
जी तरस ले अगर तरसता है॥४७॥

लोच क्यों हो न लोचवालों में।
जी लचकदार किसलिये न लचे॥
क्यों न ललका करें ललकवाले।
लालची जी न किसलिये ललचे॥४८॥

साँसतें छेड़ छेड़ होती हैं।
वह नमक घाव पर छिड़कता है॥
हैं सितम आज बे-धड़क होते।
जी हमारा बहुत धड़कता है॥४९॥

काठ से भी वह कठिन है बन गया।
अब गया है ढंग ही उसका बदल ।।
सर-गरम बन मत उसे पिघलाइये।
घी नहीं है, जायगा क्यों जी पिघल ।।५०।।

देखने देवें, न आँखें मूँद दें।
खोलते ही मुँह नहीं मेरा सिले ।।
आप मेरे मान ही को मान दें।
दान हमको जी हमारा ही मिले ।।५१।।

माल का मोल जो घटाते हैं।
हैं किसी का काम के न वे बीमे ।।
किसलिये गाँठते रहें मतलब।
गाँठ पड़ जाय क्यों किसी जी में ।।५२।।

बात बात में बात

है सभी प्यारा पराया कौन है।
भेद यह कोई नहीं बतला गया ।।
क्यों किसीसे जी किसीका फिर गया।
क्यों किसीपर जी किसीका आ गया ।।५३।।

क्या बुरा है, जान की नौबत हुए।
जान देने की अगर जी में ठनी ।।
तो न कैसे जाय जी पर खेल वह।
है अगर जी पर किसीके आ बनी ।।५४।।

जी हिलाने से हिले किसके नहीं।
छीलने से जी नहीं किसके छिले ।।
कब न कीं चालाकियाँ चालाक ने।
जी चलाते कब नहीं जी-चल मिले ।।५५।।

बाल दीया किस तरह कोई सके।
बालने से जब कि वह बलता नहीं॥
चाल चलना भूल अब हमको गया।
क्यों चलायें जी अगर चलता नहीं॥५६॥

बाँट में बेचारगी जब है पड़ी।
तब भला हम क्यों बचायेंगे न जी॥
खप नहीं सकती खपाये बे-दिली।
सिर खपाया अब खपायेंगे न जी॥५७॥

बीरता को धता बता करके।
हाथ पर के न बीर बिकता है॥
हम हिचिकते नहीं बला में पड़।
जी हिचिक ले अगर हिचिकता है॥५८॥

तो बता दें भेद उसका किस तरह।
जो भड़क करके कभी भड़के न जी॥
क्यों तड़प पाये न तड़पाये गये।
सुन फड़कती बात क्यों फड़के न जी॥५९॥

कब मुसीबत टालने से टल सकी।
कब किसीका भाग फूटा जुड़ गया॥
देख भुट्टे की तरह गरदन उड़ी।
हाथ का तोता उड़ा जी उड़ गया॥६०॥

मन

तब गले मिल किस तरह हिल-मिल रहें।
गाड़ियों जी में भरे हों जब गिले॥
तब मिले क्यों मेल-सा अनमोल धन।
जब मिलाने से नहीं मन ही मिले॥१॥

जब हवा अनुकूल लग पाई नहीं।
तब भला जी की कली कैसे खिले ॥
जो हिलायें क्यों न तो हिल मिल चले।
मन मिलायें क्यों न हम जो मन मिले ॥ २ ॥

तब भला मुँह की न खाते किस तरह।
सूझ-बूझों से रहा जब मुँह मुड़ा ॥
धूल उड़ती तब भला कैसे नहीं।
है अगर रहता हमारा मन उड़ा ॥ ३ ॥

रह सकेगी आन क्यों धन-मान की।
हो न पाया दिल धनी जो धन रखे ॥
रख सका तो दूसरों का मन नहीं।
तो रहेगा मान कैसे मन रखे ॥ ४ ॥

हित-भरी तरकीब बतलाई बहुत।
बेहतरी की बात बहुतेरी कही ॥
जान लें जो जान लेना हो उन्हें।
मन कहे तो मान लें मेरी कही ॥ ५ ॥

वह करें जिससे भले फल मिल सकें।
हैं बुरे से भी बुरे फल पा चुके ॥
चाहिये सचमुच मिठाई खाँय अब।
मुद्दतों मन की मिठाई खा चुके ॥ ६ ॥

मानता है वह मनाने से नहीं।
'पास' के सामान सारे ही चुके ॥
तब भला हम किस तरह रोकें उसे।
जब न रोके से हमारा मन रुके ॥ ७ ॥

मन रहे हाथ मान रहता है।
मन-बहँक सूझ-बूझ खोती है॥
मन गये हार हार होवेगी।
मन गये जीत जीत होती है॥ ८॥

पास सुख-सामान सब रहते हुए।
तब सुखी किस भाँत कोई जन रहे॥
जब कि तन बस में पड़ा हो औरके।
दूसरों के हाथ में जब मन रहे॥ ९॥

छोड़ देवे न साथ साहस का।
तू बला देख बावला न बने॥
यह बुरा है उतावलेपन से।
मन कभी तू उतावला न बने॥१०॥

पस्त तो हम आप हो जावें नहीं।
जब कभी पस्ती दिखावे पस्त मन॥
भूल कर बदमस्त बन जायें न हम।
क्यों करे मस्ती हमारा मस्त मन॥११॥

धुन उन्हें है और ही होती लगी।
बन गये जो दास तन के धन के हैं॥
आपने माना न, खोया मान अब।
मानते क्यों जब कि अपने मन के हैं॥१२॥

हम गये हैं बैठ बनकर आलसी।
छल रही है 'पालिसी' हमको नई॥
प्यास मृगजल से किसीकी कब बुझी।
भूख मन के मोदकों से कब गई॥१३॥

चल सके हाथ पाँव तब कैसे।
जब कि हामी रहा न मन भरता॥
काम में तब न क्यों कसर होगी।
जब रहा मन कसर-मसर करता॥१४॥

बोल सीधे अगर नहीं सकते।
बोलियाँ लोग बोलते क्यों हैं॥
क्यों न लेवें टटोल अपने को।
औरका मन टटोलते क्यों हैं॥१५॥

बस चलाये चल नहीं सकता जहाँ।
जायगी कैसे न बढ़ वाँ वेबसी॥
मन करे कैसे कि कह कुछ और लें।
बात मन की जब नहीं मन में बसी॥१६॥

अपने दुखड़े

दुख दुगूना दिन-ब-दिन है हो रहा।
उठ सका अदबार का देरा नहीं॥
छिन गया धन सूख सारा तन गया।
रह गया मन हाथ में मेरा नहीं॥१७॥

क्या सहारा देस को हम दे सके।
जाति-हित-धारा नहीं जी में बही॥
चाह कर भी कर न चित-चाही सके।
आह! मन की बात मन में ही रही॥१८॥

याद कर देस की दसा बिगड़ी।
एक पल भी न चैन आता है॥
देख कर मान धूल में मिलता।
मन हमारा मसोस जाता है॥१९॥

कब जगह पर हम जमे ही रह सके।
कब भला पूरी हुईं बातें कही ॥
मान कब अरमान निकले पा सके।
कब भला मन की न मन में ही रही ॥२०॥

बात सुलझाये अगर सुलझी नहीं।
लोग तो जायें उलझ क्यों इस तरह ॥
जब न सूझा तब सुझायें क्यों उसे।
हम बुझे मन को बुझायें किस तरह ॥२१॥

ठोकरें खा पाँव चूमें किस तरह।
नाक में दम हो गये क्यों दम भरें ॥
मार पर है मार पड़ती तो पड़े।
काम मर-मर क्यों मरें-मन से करें ॥२२॥

तब अबस है लालसा धनलाभ की।
जब न कौड़ी का हमारा तन रहा ॥
औरका मन किस तरह लें हाथ में।
हाथ में अपने न अपना मन रहा ॥२३॥

लालसा सुख की हमें है कम नहीं।
पर सुखी अब तक नहीं कहला सके ॥
हम बहलते तो बहलते किस तरह।
मन न बे-बहला हुआ बहला सके ॥२४॥

रंग उसपर चढ़ा न साहस का।
बन सका वह उमंग का न सगा ॥
बीरता क्या थके सहारा दे।
मन उमग कर भी जो नहीं उमगा ॥२५॥

तो किसी काम के नहीं हैं हम।
बन सकें जाति के अगर न सगे॥
तन अगर जाति-हित-वतन न बने।
मन अगर जाति-मान में न लगे॥२६॥

तो दिखायें मुख न, देखे देस-दुख।
जो न दुख-धारें कलेजे में बहीं॥
जाति-मुखड़ा देख कुम्हलाया हुआ।
जो हमारा मन गया कुम्हला नहीं॥२७॥

नोकझोंक

बात मानी एक भी मेरी नहीं।
वह मकर के काम कर घेरा गया॥
ताकता तक मोहनेवाला नहीं।
मोह में पड़ मोह मन मेरा गया॥२८॥

आपको चाहिये अगर तन धन।
आप तो तन समेत धन ले लें॥
माँग लें माँग जो सकें हमसे।
आपका मन करे तो मन ले लें॥२९॥

बात ताने-भरी सुनाते ही।
ताड़ना औ लताड़ना देखा॥
मुँह बहुत ही बिगड़ बनाते हो।
मन बिगड़ना बिगाड़ना देखा॥३०॥

बात बात में बात

है सही मानी गयी वह बात कब।
हो सकी जिसपर नहीं उसकी सही॥
तब किसीकी मान मन कैसे सके।
जब जगत है मानता मन की कही॥३१॥

धज्जियाँ सुख की धड़ल्ले से उड़ा।
धाँधली-धुन में बँधे उसमें धँसा॥
धूम से अंधेर अंधा-धुंध कर।
ऊधमी मन ऊधमों में है फँसा॥३२॥

है कुपथ में पाँव वैसे ही जमा।
हाट में हठ की हठी बन हैं डटे॥
जब हमीं हैं चाहते हटना नहीं।
तब भला कैसे हटाये मन हटे॥३३॥

तब भला कैसे न वह खिल जायगा।
फूल जैसा जब किसीका दिल खिले॥
क्यों न होगा ओज होकर ओज में।
क्यों न होगा मौज मनमौजी मिले॥३४॥

जान-गाहक जहान में सारे।
देखने को नहीं मिला जन-सा॥
है उसीमें भरा कसाई-पन।
है कसाई न दूसरा मन-सा॥३५॥

कौन-सी तदबीर हमने की नहीं।
और उससे क्या नहीं हमने कहा॥
कम कमीनापन हुआ उसका नहीं।
यह कमीना मन कमीना ही रहा॥३६॥

कब न रङ्गत एक थी उनपर चढ़ी।
कब न दोनों साथ कुम्हलाये खिले॥
एक मिलकर हो सके दो तन नहीं।
एक होते हैं मगर दो मन मिले॥३७॥

तो खलों की तरह सताता क्यों।
'पालिसी' का अगर न दम भरता॥
किस तरह बे-इमान तो बनता।
मान ईमान मन अगर करता॥३८॥

क्यों गँवा पानी न दे धन के लिये।
क्यों न मेहमानी किये नानी मरे॥
पाँव मतलब का करे पोंछा न क्यों।
क्यों न ओछा काम ओछा मन करे॥३९॥

पेट

हित गुटके

सब तुझे क्यों कहें छली कपटी।
किसलिये जोग तू इसीके हो॥
है जहाँ पाँव पाँव है ही वाँ।
पेट में पाँव क्यों किसीके हो॥१॥

है अगर कुछ दाल में काला नहीं।
भेद अपना क्यों नहीं तो भूलता॥
दूसरे का पेट फूला देख कर।
दूसरे का पेट क्यों है फूलता॥२॥

छोड़ ओछे सके न ओछापन।
रह भले ही न जाय पतपानी॥
पेट में बात पच सके कैसे।
पच सका पेट का नहीं पानी॥३॥

जो समय पर है सँभल सकता नहीं।
तो किये का क्यों न फल पाता रहे॥
ऐंठता है ऐंठता ही तो रहे।
आ रहा है पेट तो आता रहे॥ ४॥

तो पराये रह हितू कैसे सकें।
जो 'बहँक' संग, कर नहीं सकता भला॥
तो बिगड़ हित क्यों करेंगे दूसरे।
पेट अपना जो बिगड़ लाये बला॥ ५॥

तू न घर-घर घूम कुत्ते की तरह।
लात खाकर रोटियाँ खाया न कर॥
मत हिलाया पूँछ कर पूछे बिना।
लेट करके पेट दिखलाया न कर॥ ६॥

क्यों न वह फूल फल फबीले दे।
बेलि विष की न जायगी बोई॥
क्यों छुरी मिल न जाय सोने की।
पेट है मारता नहीं कोई॥ ७॥

क्यों न अंधेर से रहें बचते।
ऊधमी क्यों बनें हलाकू से॥
चोर का, चार कौड़ियों के ही।
पेट कर दें न चाक चाकू से॥ ८॥

था कहा जो रस-भँवर हो बन रहे।
ध्यान तो हर एक काँटे का रखो॥
जो कमाया पाप तो पापी बनो।
जो फुलाया पेट तो फल भी चखो॥ ९॥

तन रहेगा दुरुस्त तब कैसे।
तनदुरुस्ती न जब कि प्यारी हो॥
जब भरे पर भरा गया है वह।
तब भला क्यों न पेट भारी हो॥१०॥

जब कि अवसर जायगा दुख का दिया।
तब किसी पर दुख पड़ेगा क्यों नहीं॥
काम गड़ने का किया जब जायगा।
पेट कोई तब गड़ेगा क्यों नहीं॥११॥

सिर मुड़ाते ही अगर ओले पड़े।
तो कहें कैसे कि वह पड़ता रहे॥
क्या बड़ी गड़बड़ नहीं हो जायगी।
गुड़गुड़ाता पेट जो गड़ता रहे॥१२॥

जब हटा तब हटा दवा से ही।
रोग हटता नहीं हटाने से॥
जब छँटा तब छँटा कसे काया।
पेट छँटता नहीं छँटाने से॥१३॥

आँख निकली किसे लगी न बुरी।
दाँत निकला कभी नहीं भाया॥
जीभ निकली भली नहीं लगती।
पेट निकला पसंद कब आया॥१४॥

हित-भरा कारबार 'नेचर' का।
कब नहीं तन-बिकार को खोता॥
हम कसर की चपेट में पड़ते।
पेट जारी अगर नहीं होता॥१५॥

भेद घर का बिना घुसे घर में।
लोग हैं जान ही नहीं पाते ॥
पेट की बात जानना है तो।
पेट में पैठ क्यों नहीं जाते ॥१६॥

हिचकियाँ लग जाँय यों रोवें न हम।
है बुरा, बहुतायतों में क्यों फँसें ॥
जो हँसें हँसते ठिकाने से रहें।
पेट जाये फूल इतना क्यों हँसें ॥१७॥

कौन है ऐसी बला जैसी कि भूख।
है भयों से ही भरा उसका उभार ॥
मार लो आँखें 'जमा' लो मार क्यों न।
पेट मत मारो मरेगा पेट मार ॥१८॥

हैं कुदिन में मिले किसे मेवे।
जो मिले आँख मूँद कर खा लें ॥
भूख में साग पात क्यों देखें।
जो सकें डाल पेट में डालें ॥१९॥

क्यों बने बेसमय उबल ओछा।
क्यों समझदार भूल कर भूले ॥
फूल करके सभी न फलता है।
क्यों गये फूल पेट के फूले ॥२०॥

काम छिपने का किये ही सब छिपे।
कब भला कोई छिपाने से छिपा ॥
क्यों न अपना मुँह छिपाते हम फिरें।
कब छिपाये पेट दाई से छिपा ॥२१॥

कर सकें तो सदा करें हित हम।
कील नख में कभी नहीं ठोकें॥
भर सकें पेट तो रहें भरते।
किसलिये पेट में छुरी भोंकें॥२२॥

अपने दुखड़े

हैं रहे बीत दिन दुखों में ही।
स्वाद सुख का हमें नहीं आया॥
रात में नींद भर नहीं सोते।
है कभी पेट भर नहीं खाया॥२३॥

बल नहीं है, क्यों बलाओं से बचें।
पेट में है आग बलती तो बले॥
है न वह जल दूर कर दे जो जलन।
पेट जलता है हमारा तो जले॥२४॥

क्या कहें चलती हमारी कुछ नहीं।
कब न यह चाहा कि वह पलता रहे॥
छूटतीं उसकी बुरी चालें नहीं।
चल रहा है पेट तो चलता रहे॥२५॥

सब दिनों जिन पर निछावर सुख हुआ।
बन गये वे लोग दुखिया दुख भिने॥
डालते थे जान जो बे-जान में।
आज वे हैं जानवर जाते गिने॥२६॥

कौर मुँह का किसी छिने कैसे।
काल की जो कराल टेक न हो॥
पाट हम पेट भी नहीं पाते।
किस तरह पेट पीठ एक न हो॥२७॥

मिल रहा है हमें नहीं टुकड़ा।
पेटुओं साथ पट नहीं पाता॥
आज है जा रही दुही पोटी।
पेट है पीठ से लगा जाता॥२८॥

है बड़ा दुख फिर सके फेरे नहीं।
राह तज हैं बीहड़ों में फिर रहे॥
बात गुर की बन सकी अब भी न गुर।
हैं गिरा कर पेट दिन दिन गिर रहे॥२९॥

क्या हमें टोना किसीका है लगा।
या अभागे भाग ही की टेक है॥
जब उसे हर बार खोना ही पड़ा।
पेट से होना न होना एक है॥३०॥

लान तान

क्या उन्हें परवा पिसें जो दूसरे।
चाहिये पेटू रहें फूले फले॥
पेट उनका भाड़ हो पर जाय भर।
पेट जलता हो किसीका तो जले॥३१॥

सब तरह की साँसतें हमने सहीं।
लात बद-लत की बदौलत खा गये॥
तौर बिगड़े कौर मुँह का छिन गया।
पेट भर पाया न, मुँह भर पा गये॥३२॥

बीरता जा बसी रसातल में।
बन गये हैं बिलास के दूहे॥
क्यों न तो नाम सुन लड़ाई का।
पेट में दौड़ने लगें चूहे॥३३॥

तब कुदिन-दर बन्द करने क्या गये।
जब लगे आँखें सहम कर मूँदने॥
फाँदने दीवार दुख की क्या चले।
पेट में चूहे लगे जब कूदने॥३४॥

चाब ले माल बात झूठी कह।
है तुझे ज्ञान ही नहीं सच का॥
पेट भर ले अगर रहा है भर।
पेट तू ने लखा नहीं पचका॥३५॥

मोल मिट्टी के बिकेगा क्यों न वह।
साख ही जिसने कि मटियामेट की॥
मुँह पिटाये भी पिटा उसका नहीं।
क्यों न पेटू को पड़ेगी पेट की॥३६॥

बात की बात में पचेंगी वे।
रोटियाँ क्यों न खाँय ईंटे की॥
किसलिए खाँय चींटियों इतना।
है गिरह पेट में न चींटे की॥३७॥

सजीवन जड़ी

काम से मोड़ें न मुँह तोड़ें न दम।
चाम तन का क्यों न छन छन पर छिले॥
हिल गये दिल भी न हिलना चाहिये।
जाँय हिल क्यों पेट का पानी हिले॥३८॥

धीरता धीर बीर लोगों की।
कब भला फूट फूट कर रोई॥
भार है पड़ रही, रहे पड़ती।
क्यों मरे पेट मार कर कोई॥३९॥

चाहते हैं अगर भलाई तो।
चाव के साथ प्रेम रस चखिये ॥
काटिये पेट मत किसीका भी।
पेट की बात पेट में रखिये ॥४०॥

छेड़ लोगों को कहवालें सभी।
पर करें संजीदगी अपनी न कम ॥
भेद खोलें पर न खुलने भेद दें।
पेट लेवें पर न देवें पेट हम ॥४१॥

जो उचित है वह करें चित को लगा।
बात में आ क्यों लबड़-धौंधौं करें ॥
आ, न बुत्ते में किसीके भी सकें।
पेट के कुत्ते किया पों पों करें ॥४२॥

बात बात में बात

हाथ में जो कि आ नहीं सकता।
हम उसे हाथ में करें कैसे ॥
क्यों भरा घर न दूध घी से हो।
हम भरे पेट को भरें कैसे ॥४३॥

मौत सिर पर नाचने जब लग गई।
तन दुखों का किस तरह बानी न हो ॥
हो गया पानी किसीका जब लहू।
पेट कैसे तब भला पानी न हो ॥४४॥

बात कोई बना भले ही ले।
है जहाँ मिल सकी वहाँ दाढ़ी ॥
कब कढ़ी, कब भला भाई काढ़ी।
है किसी पेट में कहाँ दाढ़ी ॥४५॥

आबरू की निकल पड़ीं आँखें।
कट कलेजा गया सुचाली का॥
लाज सिर पीट पीट कर रोई।
गिर गये पेट पेटवाली का॥४६॥

आज है मन में उमंग कुछ और ही।
है समा मुँह पर अजब छाया हुआ॥
भूल गदराया हुआ जोबन गया।
देख कर के पेट गदराया हुआ॥४७॥

ठाट से भलमंसियों की हाट में।
मुँह बना काला फिराता है हमें॥
नाक कटवा है बनाता नक-कटा।
पेट गिरवाना गिराता है हमें॥४८॥

टूट सुख-खेत का गया अंकुर।
झड़ पड़ा फूल चाह-डाली का॥
सिर पटक आस पेट भर रोई।
गिर गये पेट पेटवाली का॥४९॥

हैं रसातल को चले हम जा रहे।
बेहयापन मुँह चिढ़ाता है हमें॥
हैं गिरे जाते जगत की आँख से।
पेट गिरवाना गिराता है हमें॥५०॥

एक फूले नहीं समाती है।
रह गये पेट क्यों न हो साँसत॥
एक है सोचती बिपत आई।
क्यों रहे पेट रह सकेगी पत॥५१॥

जब कि है हो रही बहुत गड़बड़।
किसलिये हो अगड़-बगड़ खाते॥
तो अपच दूर क्यों करे पाचक।
पेट जब तुम पचा नहीं पाते॥५२॥

आँत

हित गुटके

आज दिन है अगर बढ़ी अनबन।
तो किसीके लिये बने क्यों यम॥
रंज हमको निकालना है तो।
अँतड़ियाँ क्यों निकाल लेवें हम॥१॥

बल पड़े रह गये सगे न सगे।
बल पड़े खल गईं भली बातें॥
बल पड़े दूसरे न क्यों बिगड़ें।
बल पड़े जब बला बनी आँतें॥२॥

टूट पाता है भला उपवास कब।
हाथ से परसी हुई थाली छुला॥
जब खुला तब खुल खिलाने से सका।
खोलने से बल न आँतों का खुला॥३॥

दुख-नदी पार जिस तरह पहुँचे।
उस तरह देह-नाव खेते हैं॥
पेट भरता न देख कर अपना।
लोग आँतें समेट लेते हैं॥४॥

तो कहें कैसे कि तुममें जान है।
क्यों रगों में तो लहू-धारें बहीं॥
जाति की आँतें उलटती देख कर;
आ गईं मुँह में अगर आतें नहीं॥ ५॥

हो भले तो न, प्यार-धारा से।
मैल दिल का सके न जो धुलवा॥
है कहाँ दान में तुमारे बल।
आँत का बल सके न जो खुलवा॥ ६॥

हों भले ही हाथ में भाला लिये।
पर किसीकी छीन क्यों लेवें सुई॥
जब कि लंबे मतलबों से पुर रही।
तब किसीकी आँत लंबी क्या हुई॥ ७॥

अपने दुखड़े

हर तरह की चाहतें मेरी उचित।
बेतरह अब ठोकरें हैं खा रही॥
हैं सुनी जाती नहीं बातें भली।
आज आँतें हैं गले में आ रही॥ ८॥

पेट ही जब कि पल नहीं पाता।
क्यों करें औज मौज की बातें॥
है यही चाह सुख मिले न मिले।
तन सुखायें न सूखती आँतें॥ ९॥

तरह तरह की बातें

दूर अब भी हुआ न मन का मोह।
चाह अब भी लगा रही है लात॥
देह में बल न आँख में है जोत।
पेट में आँत है, न मुँह में दाँत॥१०॥

पेट के फेर में पड़े जब हैं।
तब भला किसलिये न दें फेरी॥
दाँत कैसे नहीं निकालें हम।
आँत है कुलबुला रही मेरी॥११॥

रात दिन जो रही भला करती।
दिन फिरे वह फिरी दिखाती है॥
जो न चित्त से कभी उतर पाई।
अब उतर आँत वह सताती है॥१२॥

है अमर कौन, जायगा सब मर।
है बढ़ाये उमर नहीं बढ़ती॥
क्यों कुढ़ें और हम कुढ़ें किसपर।
कढ़ गई आँत तो रहे कढ़ती॥१३॥

कोख

दुखड़े

किसलिये सुख हुआ हमें सपना।
क्यों गई दुख-समुद्र में गेरी॥
तो मरी क्यों न मैं जनमते ही।
कोख मारी गई अगर मेरी॥१४॥

किस तरह दूर हो जलन उसकी।
चित्त में जब कि सोग-आग बली॥
भाग में ही लिखा गया जलना।
क्यों जले सब दिनों न कोख-जली॥१५॥

बोझ-सा जाति के लिये जो है।
बोझ उस नीच का कभी न सहे॥
जो लहे बे-कहे कपूतों को।
क्यों न तो बन्द कोख बन्द रहे॥ ३॥

तरह तरह की बातें

हो बहुत साँवली अधिक गोरी।
क्यों न होवे सपेद या भूरी॥
है बड़ी भागवान वह, जो हो।
कोख औ माँग से भरी पूरी॥ ४॥

क्यों न सुख चैन दूर कर सारा।
नींद औ भूख प्यास वह खोती॥
क्यों बने तन न काँच की भट्ठी।
कोख की आँच है बुरी होती॥ ५॥

यह बना घर बिगाड़ देती है।
पौध की जड़ उखाड़ देती है॥
मिल न इसकी सकी जड़ी कोई।
कोख उजड़ी उजाड़ देती है॥ ६॥

सामने आ बड़े-बड़े पचड़े।
भाग की देख-भाल देख भगे॥
है बड़ी वह अभागिनी जिसकी।
कोख हो बन्द जोड़ बंद लगे॥ ७॥

बंस-बैरी कलंक नरकुल का।
बात बनती बिगाड़नेवाला॥
कोख उजड़ी सदा रहे उजड़ी।
जो जने घर उजाड़नेवाला॥ ८॥

गोखले-सा खुले हुए दिल का।
प्रेम में मस्त राम के ऐसा ॥
कोख खुल के कमाल कर देगी।
जो जने लाल मालवी जैसा ॥ ९ ॥

पसली

तरह तरह की बातें

जातिहित देसहित जगतहित की।
बात सुन बार बार बहु तेरी ॥
तो रहे हम बहुत फड़कते क्या।
जो न पसली फड़क उठी मेरी ॥ १ ॥

तो कही बात क्यों उमंग-भरी।
तो भला किसलिये कमर कस ली ॥
बात करते समय पिसे जन का।
है फड़कती अगर नहीं पसली ॥ २ ॥

कौन होगा औरके दुख से दुखी।
क्यों कलेजे में न चुभता तीर हो ॥
पीर है बेपीर को होती नहीं।
क्यों न पसली में किसीकी पीर हो ॥ ३ ॥

सीखते हैं क्यों दया करना नहीं।
क्यों सितम से हैं नहीं मुँह मोड़ते ॥
तोड़नेवाले कलेजा तोड़ कर।
पसलियाँ क्यों हैं किसीकी तोड़ते ॥ ४ ॥

बान जिसकी मार खाने की पड़ी।
मानता है वह बिना मारे कहीं ?
तो भला हो नीच ढीला किस तरह।
की गई पसली अगर ढीली नहीं ॥ ५ ॥

पीठ

हितगुटके

आम कच्चा है न होता रस-भरा।
ओल कच्चा काट खाता है गला ॥
काम का है कान का कच्चा नहीं।
है न घोड़ा पीठ का कच्चा भला ॥ १ ॥

दे सकेगा वह कभी धोखा नहीं।
बात सच्ची जो सचाई से कहे ॥
तो गिरेगा एक बच्चा भी नहीं।
पीठ का सच्चा अगर घोड़ा रहे ॥ २ ॥

पेट अपना जो हमें देता नहीं।
पेट में उसके भला क्यों पैठते ?
पास उनके बैठते हम किस तरह ?
फेर कर जो पीठ हैं फिर बैठते ॥ ३ ॥

कह सके तो हम कहें मुँह पर उसे।
बात कोई किसलिये पीछे कहें ॥
पीठ दिखलावें भले ही दूसरे।
हम भला क्यों पीठ दिखलाते रहे ॥ ४ ॥

जो भली बात कान कर न सका।
क्यों न तो कान ही उखेड़ें हम ॥
खीज करके उधेड़बुन में पड़।
पीठ की खाल क्यों उधेड़ें हम ॥ ५ ॥

सुनहली सीख

वे अगर हैं मोरियों-सा बह रहे।
क्यों न दरिया की तरह तो हम बहें॥
चाहिये पीछे न हम उनके पड़ें।
बात ओछी पीठ-पीछे जो कहें॥ ६॥

देस की प्रीति से न मुँह मोड़ें।
प्यार के साथ जाति-पग सेवें॥
पीठ देवें न प्रेमपथ में पड़।
चाहिये पीठ तक नपा देवें॥ ७॥

पते की बातें

तोंद ही जायगी पचक उनकी।
औरको प्यार कर न क्यों घेरें॥
तोंद पर हाथ फेरते कैसे।
पीठ पर हाथ जो न वे फेरें॥ ८॥

मुँह दिखाते लाज लगती है उसे।
पद-बढ़े मुँह फेर कर ऐंठे न क्यों॥
मुद्दतों वह पीठ मल मल था पला।
पीठ मेरी ओर कर, बैठे न क्यों॥ ९॥

बच न पाये बुरी पकड़ से हम।
ब्योंत कर बार बार बहुतेरी॥
लाग है हो गई बलाओं से।
क्यों लगायें न पीठ वे मेरी॥१०॥

अपने दुखड़े

दुख कहें किस तरह कहें किससे।
दिन हमारे कभी रहे न भले॥
हैं कभी हाथ मींज मींज जिये।
हैं कभी पीठ मींज मींज पले॥११॥

थक गये रोक रोक करके हम।
काल-गति जा सकी नहीं रोकी॥
दूसरे पीठ ठोंकते क्या हैं।
दैव ने पीठ तो नहीं ठोंकी॥१२॥

लताड़

जब कि चल-फिर काम कर सकते रहे।
की गई है रात दिन तब तो ठगी॥
तब चले हैं लौ लगाने राम से।
पीठ जब है चारपाई से लगी॥१३॥

जो बहुत ही ऐंठनेवाले रहे।
हैं वही देखे गये उलटे टँगे॥
क्या रही तब हैकड़ों की हैकड़ी।
पीठ पर जब सैकड़ों कोड़े लगे॥१४॥

बेंचते नाम निज बड़ों का हैं।
या कि शिर पर कलंक हैं लेते॥
पेट अपना कभी खलाते हैं।
या कभी पीठ हैं दिखा देते॥१५॥

कब भला मार सँत-मँत पड़ी।
कौन है पापफल नहीं पाता॥
जो करे काम बेंत खाने का।
पीठ पर बेंत है वही खाता॥१६॥

कमर

हितगुटके

साहसी देख औरका साहस।
आप भी हैं उमंग में भरते॥
तो कमरबन्द क्यों हुआ ढीला।
हैं कबूतर अगर कमर करते॥१॥

मार दे क्यों न मारनेवाला।
मार से क्यों न जाय कोई मर॥
बात मुँह-तोड़ क्यों न मुँह तोड़े।
क्यों कमर-तोड़ तोड़ दे न कमर॥२॥

पा सके भाग वह कहाँ साबित।
है जिसे भाग मिल गया फूटा॥
कर सके काम कम भले ही वह।
क्या कमर कस करे कमर-टूटा॥३॥

अपने दुखड़े

तो फिरें किस तरह हमारे दिन।
दैव ने आँख है अगर फेरी॥
साध पूरी हुई न काम सधा।
हो न सीधी सकी कमर मेरी॥४॥

भाग-कपड़ा बेतरह है फट गया।
सी सके कैसे उसे करनी-सुई॥
थी कमर मेरी कभी टेढ़ी नहीं।
दैव के टेढ़े हुए टेढ़ी हुई॥५॥

क्यों हमें मिल सकें न चार चने।
आप क्यों खाँय खीर ही रींधी॥
कर सकें आप क्यों टके सीधे।
कर सकें क्यों न हम कमर सीधी॥६॥

जाँघ

तरह तरह की बातें

बाँह के बल को बँधी पूँजी बना।
पड़ सका है पेट का लाला किसे॥
भाग को उसने कभी कोसा नहीं।
जाँघ का अपनी भरोसा है जिसे॥ १॥

तन भला तब किस तरह मोटा रहे।
पेट को मिलती न जब रोटी रही॥
फल उसे खोटी कमाई का मिला।
जाँघ मोटी जो नहीं मोटी रही॥ २॥

तन कँपा, डर समा गया जी में।
चौकसी, चूक की बनी चेरी॥
मैं सका नाँघ दुख-समुद्र नहीं।
बेतरह जाँघ हिल गई मेरी॥ ३॥

तू भला बीरता करेगा क्या।
जो सुने एक बार रन-भेरी॥
कँप उठा बेंत की तरह सब तन।
जो हिली जाँघ बेतरह तेरी॥ ४॥

—:&:—

घुटना

सजीवन जड़ी

सूर जो तलवार की ही आँच में।
तन रहे साहस दिखा कर सेंकते॥
लट गये भी लटपटाते वे नहीं।
दम घुटे भी हैं न घुटने टेकते॥ १॥

दुध-मुँहे जिसकी बदौलत हैं बने।
क्या नहीं वह ढङ्ग खलना चाहिये॥
चल चुके हम लोग घुटनों मुद्दतों।
अब हमें घुटनों न चलना चाहिये॥ २॥

बल जिसके पाँवों में है वह।
जगत पालने में पलता है॥
वही घूमता है घर में ही।
जो घुटनों के बल चलता है॥ ३॥

चेतावनी

घटा दुखों की घिर आवेगी।
घटे मान डूबेगा डोंगा॥
घोंट घोंट कर गला जाति का।
घुटनों में सिर देना होगा॥ ४॥

गली गली वह क्यों घूमेगा।
अभी गोद में जो है पलता॥
क्यों टट्टी वह फाँद सकेगा।
जो है घुटनों के बल चलता॥ ५॥

दिल के फफोले

जिसे लगा छाती से पाला।
वह क्यों चढ़ छाती पर बैठा॥
वही तोड़ता है क्यों घुटने।
जो घुटनों से लगकर बैठा॥ ६॥

वह पेट पालने हमें नहीं है देता।
था बड़े प्यार से जिसको पोसा-पाला॥
क्यों नहीं बैठने देता है वह घर में।
था जिसे लगाकर घुटनों से बैठाला॥ ७॥

एड़ी

हितगुटके

जाति के रगड़े बढ़ाते जो रहे।
मान उनका क्यों रगड़ चन्दन करें॥
हम रगड़ते ही रहेंगे नित उन्हें।
हैं रगड़ते तो रगड़ एड़ी मरें॥ १॥

प्यास हमको पास करने की नहीं।
दूसरे जो पिस रहे हैं तो पिसें॥
है भली लगती हमें घिसपिस नहीं।
लोग एड़ी घिस रहे हैं तो घिसें॥ २॥

रुक सका वह खेत के रोके नहीं।
जब सकी तब रोक जल-मेंड़ी सकी॥
कुछ न सिर सिरमार कर भी कर सका।
एड़ घोड़े को लगा एड़ी सकी॥ ३॥

क्यों न होवे भली धुली सुथरी।
हो सकेगी न पैंजनी बेड़ी॥
बन सकेगी न लाल लाख जनम।
क्यों किसीकी न लाल हो एड़ी॥ ४॥

हो सकेगा चूर मोती का नहीं।
क्यों न चूना चौगुना सब दिन पिसे॥
मान मिलता है बिना जौहर नहीं।
कौन एड़ी हो सकी कौहर घिसे॥ ५॥

हो सकेगा कुछ नहीं एका बिना।
मेहनतें बेढंग करके क्यों मरें॥
लोग चोटी और एड़ी का अगर।
एक करते हैं पसीना तो करें॥ ६॥

तरह तरह की बातें

मुँह-देखी बातें जिसमें हैं।
लगे न उसका मुखड़ा प्यारा॥
वार जाँय क्यों उसपर जिसने।
एड़ी चोटी पर से वारा॥ ७॥

बने हुए मुखड़े पर उसके।
खिँची बनावट की है रेखा॥
उसमें दिखला पड़ी दिखावट।
एड़ी से चोटी तक देखा॥ ८॥

चोट चलाती हो जो चोरी।
कहा चाव से तो क्यों प्यारे॥
लगी चमोटी-सी चित को है।
एड़ी चोटी पर से वारे॥ ९॥

लात

हित गुटके

वह करेगा किस तरह बातें समझ।
जब कि ना-समझी बनी उसकी सगी॥
वह सकेगा मान कैसे बात से।
लात खाने की जिसे है लत लगी॥ १॥

मानता है अगर नहीं गदहा।
किसलिये तो न हम खबर लेवें॥
झाड़ता है अगर दुलत्ती तो।
क्यों न दो लात हम उसे देवें॥ २॥

है बुरा, काम जो बुरा कर के।
मूँछ हम बार बार हैं टेते॥
लात का आदमी नहीं है तो।
क्यों उसे लात हैं लगा देते॥ ३॥

है न अरमान मान का मन में।
बीरता है बहक भगी जाती॥
आज भी है लगी नहीं जी से।
लात पर लात है लगी जाती॥ ४॥

काम यह तो कमीनपन का है।
क्यों छिड़कता नमक कटे पर है॥
तो तुझे लाख बार लानत है।
लात चलती अगर लटे पर है॥ ५॥

पाँव

हित गुटके

जो सदा पेट हैं दिखाते वे।
किस तरह बीरता दिखावेंगे॥
सब दिनों हाथ रोपनेवाले।
किस तरह पाँव रोप पावेंगे॥ १॥

जो सुभीता न कर सकें कोई।
तो बखेड़ा न कर खड़ा देवें॥
आ सकें हम अगर नहीं आड़े।
तो कहीं पाँव क्यों अड़ा देवें॥ २॥

देख बल-बूता करें जो कुछ करें।
काम मनमाना करेगा मान कम ॥
हो पसरने के लिये जितनी जगह।
क्यों न उतना ही पसारें पाँव हम ॥ ३ ॥

तंग बलि की तरह न हो कोई।
हम न बामन समान बन जावें ॥
फैलने के लिये जगह न रहे।
पाँव इतना कभी न फैलावें ॥ ४ ॥

क्यों पड़ा सूझ-बूझ का लाला।
बे-तरह रञ्ज हो रहे हो क्या ॥
ठेस दिल में न चाहिये लगनी।
पाँव में ठेस लग गई तो क्या ॥ ५ ॥

जो सगों का बना रहा न सगा।
वह रहा देश-गीत क्यों गाता ॥
वह सकेगा उठा पहाड़ नहीं।
पाँव भी जो उठा नहीं पाता ॥ ६ ॥

बे-ठिकाने बनें वहाँ जा क्यों।
है जहाँ कुछ नहीं ठिकाने से ॥
क्यों उठें और क्या करें उठ कर।
पाँव उठता नहीं उठाने से ॥ ७ ॥

किसलिये तो लोक-हित करने चले।
जो सहज संकट नहीं जाता सहा ॥
क्यों सराहे राह के राही बने।
बेतरह जो पाँव है थर्रा रहा ॥ ८ ॥

चाहिये जिस जगह जिसे रखना।
क्यों नहीं हम उसे वहीं रखते॥
किस तरह पाँव तो ठहर पावें।
हैं कहीं के कहीं अगर रखते॥ ९ ॥

चाह के क्यों उसे लगे चसके।
जो पड़े पेंच पाच में खिसका॥
क्यों बना प्यार-पंथ-राही वह।
राह में पाँव रह गया जिसका॥१०॥

जाय जी जल अगर जलाये जी।
जाय जल आँख जो सदैव खले॥
वह जले हाथ हो जलन जिसमें।
वह जले पाँव जो न फूल फले॥११॥

अपने दुखड़े

नह गड़ाये वहाँ गड़े कैसे।
सींग मेरा सका जहाँ न समा॥
हम वहाँ आप जाँय जम कैसे।
है जमाये जहाँ न पाँव जमा॥१२॥

बल भली-रुचि-वायु का पाये बिना।
फरहरा हित का फहरता ही नहीं॥
हम भले पथ में ठहरते किस तरह।
पाँव ठहराये ठहरता ही नहीं॥१३॥

जब कि बेताब हो रहा है दिल।
गात तब ताब किस तरह लाता॥
जब कि है काँपता कलेजा ही।
पाँव कैसे न काँप तब जाता॥१४॥

किस तरह चल फिर सकें कुछ कर सकें।
बन गई है काहिली हिलमिल लगी॥
हाथ में मेरे जमाया है दही।
है हमारे पाँव में मेंहदी लगी॥१५॥

कर सकें नाँव-गाँव हम कैसे।
दाँव हैं मिल रहे नहीं वैसे॥
कुछ नहीं काँव-काँव से होगा।
पाँव हैं कुछ उखड़ गये ऐसे॥१६॥

कौन है चापलूस हम जैसा।
हैं हमीं मोह के पिये प्याले॥
हैं हमीं चाटते सदा तलवे।
हैं हमीं पाँव चूमनेवाले॥१७॥

किस तरह और पर बला लावें।
हो बला ने अगर हमें घेरा॥
किस तरह लड़ खड़े किसीसे हों।
पाँव जब लड़खड़ा गया मेरा॥१८॥

बात जी में एक भी धँसती नहीं।
जा रहा है और दलदल में धँसा॥
काम लीचड़ चित्त से है पड़ गया।
पाँव कीचड़ में हमारा है फँसा॥१९॥

किस तरह राह तो न तै होती।
राह के ढंग में अगर ढलते॥
क्यों ठिकाने न चाल पहुँचाती।
पाँव जो हम उठा उठा चलते॥२०॥

अब तनिक ताब है नहीं तन में।
मुँह चला कुछ कभी नहीं खाते॥
हाथ सकता नहीं उठा सूई।
दो कदम पाँव चल नहीं पाते॥२१॥

तब कहें कैसे सुदिन हैं आ रहे।
भाग मेरे दिन-बदिन हैं जग रहे॥
जब भले पत पर लगाकर लौ चले।
पाँव से हैं पाँव मेरे लग रहे॥२२॥

लोग क्यों लान तान करते हैं।
मान पाना किसे नहीं भाता॥
लट गई देह राह है अटपट।
पाँव कैसे न लटपटा जाता॥२३॥

अंग जो जाति-हित न कर पाये।
किसलिये तो न हम तुरंत मुए॥
रह गये हाथ पथ न रह पाई।
हो गये सुन्न पाँव सुन्न हुए॥२४॥

लिया कलेजा थाम न किसने।
बिगड़े बने बनाये घर के॥
देख कुलों का लोप न कैसे।
पाँव तले की धरती सरके॥२५॥

सजीवन जड़ी

बावले हों उतावले बन क्यों।
पास वे हैं बिचार-बल रखते॥
जो भले चाहते भलाई हैं।
पाँव वे हैं सँभल सँभल रखते॥२६॥

दाँत निकले न दाँत टूटे भी।
गिड़गिड़ायें न गड़बड़ों से डर॥
बँध गये भी न हाथ बाधें हम।
सिर गिरे भी गिरें न पाँवों पर॥२७॥

कर सकें जो भली तरह न उसे।
काम को तो न छोड़ कर बैठें॥
जो न सिर-तोड़ कर सकें कोशिश।
तो न हम पाँव तोड़ कर बैठें॥२८॥

लोक-हित के किये जिन्हें न खलीं।
सब नखों में गड़ी हुई कीलें॥
पाँव की धूल झाड़ पलकों से।
पाँव उनका पखार कर पी लें॥२९॥

रम सका राम में नहीं जो मन।
तो भला क्यों रमे न अनरथ में॥
जो न जी में थमीं भली बातें।
पाँव कैसे थमे भले पथ में॥३०॥

क्यों न हो धूम-धाम से ऊधम।
क्यों करें जाति-हित उमंगें कम॥
टूट सिर पर पड़े बलायें सब।
किसलिये हाथ पाँव डालें हम॥३१॥

चाटते क्यों औरका तलवे रहें।
मरतबा चाहे बहुत ही कम रखें॥
सिर रहे, चाहे चला ही जाय सिर।
पाँव पर सिर क्यों किसीके हम रखें॥३२॥

जीवन सोत

किसलिये जाय टूट जी मेरा।
जाय विष-घूँट किसलिये घूँटा॥
टूट मेरी नहीं गई बाहें।
है हमारा न पाँव ही टूटा॥३३॥

जग दहल जाय तो दहल जावे।
है दहलता नहीं हमारा दिल॥
हिल गये तो पहाड़ हिल जावें।
पाँव सकता नहीं हमारा हिल॥३४॥

वह अटल है पहाड़-सा बनता।
है किसी ठौर जब कि जम जाता॥
क्यों न टल जाँय चाँद औ सूरज।
सूर का पाँव टल नहीं पाता॥३५॥

शेर को देख जो नहीं दहले।
वे डरेंगे न देख खिजलाहट॥
हैं दहाड़ें जिन्हें हटा न सकीं।
वे हटे सुन न पाँव की आहट॥३६॥

है हमीं में कमाल अंगद का।
क्यों दबें दैव के दबाने से॥
पाँव भी जब डिगा नहीं मेरा।
हम डिगेंगे न तब डिगाने से॥३७॥

काम कर क्या कमा नहीं सकते।
डाल देंगे जहान में डेरे॥
किसलिये पाँव औरका पकड़ें।
पाँव क्या पास है नहीं मेरे॥३८॥

कौन है दौड़-धूप में हम-सा।
काम हमने न कौन कर डाला॥
किस तरह कान काटता कोई।
पाँव हमने नहीं कटा डाला॥३९॥

क्यों बुरे फल नहीं चखेगा वह।
है जिसे फल बुरे-बुरे चखना॥
जो रखे वह रखे हमें न जचा।
पाँव से पाँव बाँध कर रखना॥४०॥

क्यों बलायें न घेर लें हमको।
क्यों न हो नाक में हमारा दम॥
मौत सिर पर सवार हो जावे।
पाँव में सिर कभी न देंगे हम॥४१॥

चल पड़े तो चल पड़े अब क्यों अड़ें।
क्यों न ओले बेतरह पथ में पड़ें॥
सैकड़ों आयें बलायें सामने।
क्यों न काँटे पाँव में लाखों गड़े॥४२॥

सुनहली सीख

जो भँवर जन-हित-कमल का बन जिये।
राम-रस पीकर रहे जो गूँजते॥
हैं जगत में पूजने के जोग वे।
पाँव पूजा-जोग जो हैं पूजते॥४३॥

जो भले, कर के भलाई बन सके।
दूसरों को जो नहीं हैं भूँजते॥
पुज रहे हैं औ पुजेंगे भी वही।
पाँव जो माँ बाप का हैं पूजते॥४४॥

काढ़ने से साँप में से मणि कढ़ा।
मूढ़ वे हैं काढ़ते जो खीस हैं॥
रीस औरों की करें हम किसलिये।
दूसरों के पाँव क्या दस बीस हैं॥४५॥

आप अपना न बाल बिनवा दें।
आप अपना लहू न हम गारें॥
चाहिये यह कि हाथ से अपने।
हम कुल्हाड़ी न पाँव में मारें॥४६॥

पूजने जोग जो नहीं हैं तो।
भूल कर भी न पाँव पुजवावें॥
धो सके हैं अगर न मन का मल।
चाहिये तो न पाँव धुलवावें॥४७॥

जो न हैं मान-जोग मान उन्हें।
मान मरजाद किसलिये खोयें॥
मल-भरा मन धुला नहीं जिनका।
पाँव उनका कभी न हम धोयें॥४८॥

क्यों बुरे ढंग हैं पसंद पड़े।
क्यों भले ढंग हैं नहीं भाते॥
पाँव तब तोड़ क्यों किसीका दें।
पाँव जब जोड़ हम नहीं पाते॥४९॥

जब सँभल पाँव रख नहीं सकते।
क्यों बुरा फल न हाथ तब आता॥
जब बुरी राह पर उतर आये।
पाँव कैसे न तब उतर जाता॥५०॥

औरतों का बिगड़ गये परदा।
रह सका आन-बान कब किसका॥
लोग बाहर उसे निकाल चुके।
पाँव बाहर निकल गया जिसका॥५१॥

डाह से जल बुराइयाँ न करो।
जो न करके भलाइयाँ जस लो॥
बन सको फूल-सा बनो कोमल।
पाँव मत-फूल को कभी मसलो॥५२॥

तरह तरह की बातें

लोग जिनका पाँव सहला सब दिनों।
माल सुख से सब तरह का चाबते॥
दाबनी दाँतों तले उँगली पड़ी।
देख उनको पाँव दुख में दाबते॥५३॥

राज-सा आज कर रहे हैं वे।
नाज जिनको न मिल सके रींधे॥
फिर कहें बात किस तरह सीधी।
किस तरह पाँव रख सकें सीधे॥५४॥

किस तरह तब कटे सुखों से दिन।
घर अगर काट काट है खाता॥
जब उसे काटने लगे जूते।
किस तरह पाँव तब न कट जाता॥५५॥

हितभरी गुनभरी सुहागभरी।
रसभरी छबिभरी बहू प्यारी॥
बहु पुलक भर गये उभर आई।
पाँव भारी हुए हुई भारी॥५६॥

आँख खोले खुल न मूढ़ों की सकी।
सीटते हैं आप तो सीटा करें॥
पीटनेवाले न माने लीक के।
पीटते हैं पाँव तो पीटा करें॥५७॥

हौसले के बहुत भले पौधे।
हैं फबन साथ फूलते फलते॥
माँ, ललक सौगुनी ललकती है।
लाल हैं पाँव पाँव जब चलते॥५८॥

जो रही माँ, मकान की फिरकी।
वह मिले कुछ अजीब बहलावे॥
हो गई सास-गेह पर लट्टू।
पाँव कैसे न फेरने जावे॥५९॥

जान बेजान में नहीं होती।
हैं न तोते, बने हुए तोते॥
नाम है काम है कहाँ वैसा।
काठ के पाँव पाँव क्यों होते॥६०॥

कौन-सा लाभ वाँ गये होगा।
हैं जहाँ लोग बे-तरह अड़ते॥
पाँव पड़ते नहीं चलें कैसे।
पाँव क्यों बार बार हो पड़ते॥६१॥

अन्योक्ति

दैव ने जो दिया दया करके।
पा उसीको बहुत निहाल बनो॥
जो नहीं लाल आप ही हो तो।
पाँव! मेंहदी लगा न लाल बनो॥६२॥

हंस-सी चाल चल नहीं सकता।
रात दिन मंद-मंद क्यों न चले॥
वह कमल-सा अमल बना न कभी।
पाँव को क्यों न लाख बार मले॥६३॥

है बिपत पर बिपत सदा आती।
दुख दुखी को न कब रहे घेरे॥
धूल से तो रहे भरे ही वे।
कीच से पाँव भर गये मेरे॥६४॥

जब मिला तो फल बुरा उससे मिला।
फल फलाने का बुरा ही तौर है॥
फूल जैसा फूल वह पाता नहीं।
फूल जाना पाँव का कुछ और है॥६५॥

राह बेड़ी है बुरे काँटों भरी।
जो परग दो चार चलते ही गड़ें॥
बेतरह वे कोस काले चल छिले।
पाँव में कैसे नहीं छाले पड़ें॥६६॥

है बदी का बुरा बहाव जहाँ।
हैं निबहते वहाँ न हम जैसे॥
है कपट-पथ अगर नहीं अटपट।
पाँव तो फिर रपट गया कैसे॥६७॥

फूल-सा है नरम न पर-हित-पथ।
क्यों सँभाले भला सँभल पाता॥
कम न फिसलन वहाँ मिली उसको।
पाँव कैसे नहीं फिसल जाता॥६८॥

हों गरम, उनका गरम होना मगर।
जब खला तब साथवालों को खला॥
दूसरों को हैं जला सकते नहीं।
पाँव जलते, हाथ को लेवें जला॥६६॥

हैं कमल से कहीं अनूठा वह।
कौन पापी उसे परस न तरा॥
पाप को धूल में मिलाता है।
संत का पाक पाँव धूल-भरा॥७०॥

जो रही सब दिनों पसंद उसे।
चाल वह छोड़ किस तरह पाता॥
चल सका जब न जाति-हित-पथ पर।
पाँव कैसे न तब बिचल जाता॥७१॥

तलवे

सजीवन जड़ी

जो नहीं बढ़ती हमारी सह सकें।
चाहिये उनकी न हम चोटें सहें॥
जो अँगूठा हैं चटाते रात दिन।
हम न उनके चाटते तलवे रहें॥ १ ॥

तो कहाँ पर-हित कठिन पथ पर चले।
जो न उसकी साँसतें सारी सहीं॥
छिल गये छाले पड़े छिद-छिद गये।
बन गये तलवे अगर छलनी नहीं॥ २ ॥

तरह तरह की बातें

हम जहाँ जायें मिले वह मति वहाँ।
हित-बसन जिससे सदा उजला रहे॥
खोज में हैं, जाँयगे किस खोज में।
आज तलवे हैं बहुत खुजला रहे॥ ३॥

बे-तरह जल उठे न कैसे जी।
देस को देख तंग ठलवों से॥
चिनगियाँ क्यों न आँख से छिटकें।
आग लग जाय क्यों न तलवों से॥ ४॥

रात दिन हम आप ही हैं जल रहे।
बेतरह तुम क्यों जलाते हो मुझे॥
आग है वह क्यों लगाई जा रही।
जो कि तलवों से लगे सिर में बुझे॥ ५॥

क्यों न छिल-छिल जाँय छिद छलनी बनें।
क्यों न पर-हित-रंग में रँग दुख सहें॥
गुर उन्हें है प्यार रंगत का मिला।
क्यों न तलवे लाल इंगुर से रहें॥ ६॥

काल-करतूत ही निराली है।
बन रहे थे कभी कमल-दल वे॥
तर अतर से कभी उन्हें पाया।
भर गये धूल से कभी तलवे॥ ७॥

है उन्हें लाभ से नहीं मतलब।
क्यों न खल जाँय जब कि हैं खल वे॥
छेदते चूकते नहीं काँटे।
क्या मिला छेद छेद कर तलवे॥ ८॥

कब बुरी सुधरी बिना साँसत सहे।
जब तनी तब चाँदनी ताने तनी॥
ठीक धुनिये के धुने रूई हुई।
चोख तलबों के मले चीनी बनी॥१९॥

रात दिन दल लालसाओं का लिये।
चल रहे थे चार सालों से ललक॥
तंग तलबेली हमें थी कर रही।
आज पहुँचे बाल से तलवों तलक॥२०॥